नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी'
—व्यक्तित्व और कृतित्व

लेखक
विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'

वितरक बंसल एण्ड कम्पनी
२४, दरियागज, दिल्ली–६

प्रकाशक
रघुवीरशरण बसल
सचालक
साहित्य सस्थान, दिल्ली

प्रथम सस्करण
जून १९६०

मूल्य ६ ५०

आवरणकार
ओमप्रकाश शर्मा

मुद्रक
नूतन प्रेस
चाँदनी चौक, दिल्ली

दो शब्द

श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' लिखित 'नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी व्यक्तित्व और कृतित्व' पुस्तक पढकर मुझे सन्तोष हुआ है। आजकल अधिकतर लिखी जाने-वाली कुञ्जीनुमा अध्ययनो और आलोचनात्मक परिचयो से यह पुस्तक बिल्कुल भिन्न है। बटुकजी हिन्दी के पुराने आचार्य और साहित्य-सेवी है। सुलेखक और सुकवि है। प्रेमीजी के समान सुविख्यात नाटककार को उन्ही जैसे कुशल अध्येता और आलोचक की अपेक्षा थी। प्रेमीजी की नाट्य-कला पर विविध दृष्टियो से विचार करते हुए लेखक ने विस्तार के साथ उनके नाटको पर गहरा आलोचनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया है। प्रेमीजी के सामाजिक, ऐतिहासिक और एकाकी नाटको पर भारतीय और आधुनिक कला की दृष्टि से प्रकाश डालते हुए बटुकजी ने इतनी जानकारी और छात्रोपयोगी सामग्री इकट्ठी कर दी है कि पाठक को फिर अन्य किसी विवेचन की आवश्यकता नही रह जाती। प्रेमीजी के काव्य का सौदर्य उद्घाटित करते हुए लेखक ने उनके व्यक्तित्व के विविध स्वरूप का भी चित्राकन किया है। प्रेमीजी का स्थान हिन्दी-साहित्य मे निर्धारित करते हुए उनकी देन को भी भली प्रकार स्पष्ट किया गया है। मुझे आशा है, बटुकजी इसी प्रकार की आलोचनात्मक कृतियाँ अन्य नाटककारो पर भी प्रस्तुत करेंगे। उनके अध्ययन और आलोचनात्मक निरूपण का लाभ हिन्दी के पाठको को मिलना चाहिए। मैं उन्हे इस कृति के लिए बधाई देता हूँ और प्रेमीजी के नाटको के प्रेमी पाठको से इस पुस्तक को पढने का अनुरोध करता हूँ। इसे पढकर वे लाभ उठायेगे, ऐसा मुझे विश्वास है।

—रामेश्वर शुक्ल 'अचल'

जबलपुर
२८-६-६०

धन्यवाद

लेखक स्वय अपनी रचना का निष्पक्ष आलोचक नही हो सकता। इसलिए वह उसकी अच्छाइयो और कमियो को भली-भाँति नही जान पाता। मुझे साहित्य-सृजन करते हुए लगभग तीस वर्ष व्यतीत हो चुके है। मेरी आतरिक इच्छा रही है कि हिदी भाषा के विद्वान् आलोचक मेरी कृतियो की निष्पक्ष आलोचना कर मुझे मार्ग-दर्शन प्रदान करे। हिदी के नाटक-साहित्य पर लिखते हुए अनेक विद्वानो ने हिदी के अन्य नाटको की चर्चा करते हुए मेरे नाटको पर भी प्रकाश डाला है, ऐसे विद्वानो मे सबसे पहले व्यक्ति श्री रामचद्र शुक्ल थे और उन्होने जो मेरी अप्रत्याशित प्रशसा की उससे मुझे काफी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उनके जीवनकाल मे, कम-से-कम जब उन्होने हिदी साहित्य का इतिहास लिखा तबतक तो मेरे केवल दो ही नाटक—'रक्षाबन्धन' और 'शिवा-साधना' ही प्रकाशित हुए थे, केवल इन दो नाटको पर ही जो ऊँची राय उन्होने मेरे सम्बन्ध मे बनाई वह हिन्दी भाषा के कुछ विद्वानो को उचित नही जान पडी और कुछ विद्वानो को उसने चकाचौध मे डालकर उनसे सहमत रहने को वाध्य किया। मैं चाहता रहा कि शुक्लजी की सम्मति से प्रभावित न होकर आलोचक-जन मेरे इन नाटको के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करे। ऐसा सुप्रयास सर्वप्रथम श्री जयनाथ 'नलिन' ने अपनी 'हिंदी नाटककार' पुस्तक मे किया। श्री सुरेशचद्र गुप्त ने भी एक लेख मेरे नाटको के सबध मे 'सेठ गोविददास अभिनन्दनग्रथ' मे काफी विस्तृत लिखा और ऐसा जान पडता है कि दूसरे आलोचको के प्रभाव मे न आकर ही लिखा है। सर्वश्री नगेन्द्र, सोमनाथ गुप्त, रामचरण महेन्द्र और दशरथ ओझा आदि दिग्गज आलोचको ने भी प्रसगवश मेरी रचनाओ पर अपनी विविध पुस्तको मे चर्चा की है। सुश्री सरला जौहरी ने मेरे ऐतिहासिक नाटको पर एक 'थीसिस' भी लिखा जो प्रकाशित हो चुका है। काका कालेलकर ने मेरे 'रक्षाबन्धन' नाटक के गुजराती अनुवाद पर जो भूमिका लिखी है वह भी काफी विस्तृत, स्वतत्र और विचारोत्तेजक है। उर्दू के श्रेष्ठ कवि 'सीमाब' ने मेरे छाया नाटक के उर्दू अनुवाद की मुक्तकठ से प्रशसा करते हुए जो आलोचना अपने पत्र मे की थी उसने भी मेरा हौसला बढाया था। फिर भी मैं अनुभव करता रहा कि मेरी कृतियो के प्रति आज के आलोचको ने ध्यान देने की कम ही कृपा की है। मेरे नाटक भारत के विभिन्न विश्व-विद्यालयो मे तथा हिंदी प्रसार के लिए स्थापित सस्थाओ मे पाठ्य-पुस्तक के रूप मे रहते चले आए है और इसलिए भी आवश्यक जान पडता था कि मेरी रचनाओ पर अधिक विस्तार और बारीकी से लिखा जावे। इस आवश्यकता की पूर्ति श्री विश्वप्रकाश 'बटुक' ने की है।

श्री विश्वप्रकाश 'बटुक' को मैं वर्षों से जानता हूँ। इसका यह भी अर्थ निकलता है कि वह मुझे जानते है किंतु जानकारी होने का अर्थ यह नही कि उन्होने इस पुस्तक मे मेरी तरफदारी की है। तरफदारी करना उनके स्वभाव मे नही है। वह सत्य के पुजारी है, अपने मन से वह जिसे सत्य समझते है, चाहे वह अप्रिय हो, उसे कहने या लिखने मे उन्हे सकोच नही होता इसलिए मैं उनकी सम्मति को ईमानदार सम्मति मानता हूँ। उनका हिंदी साहित्य का ज्ञान विस्तृत है और आलोचना के कौशल मे वह निपुण है इसलिए मै उनकी इस कृति को अनधिकार चेष्टा भी नही मानता। उन्होने मेरी एक-एक रचना को पढा है, उन पर विचार किया है और स्वतत्र मस्तिष्क से अपने निष्कर्ष निकाले है, यह उनकी विशेषता है। अभी तक प्राय होता यह आया कि कुछ आलोचको ने जब मुझ पर कुछ लिखा, मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि पिछली आलोचनाओ के प्रभाव से वे अपने आपको मुक्त न रख सके, दूसरी बात यह कि एक-दो व्यक्तियो को छोडकर शेष ने पूरी पुस्तके पढकर मेरी कृतियो के सम्बन्ध मे नही लिखा। ऐसा इलज़ाम मैं बटुकजी पर नही लगा सकता।

इस पुस्तक मे बटुकजी ने जो भी निष्कर्ष व्यक्त किए है उनसे मै सोलहो आने सहमत हूँ, ऐसा भी नही माना जाना चाहिए। कही कही मैं उनकी अति प्रशसात्मक सम्मति से सहमत नही हूँ। स्वभावत मै अपना अच्छा आलोचक नहीं हूँ फिर भी मैं अपनी कुछ कमज़ोरियो से परिचित हूँ और उन्हे दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहता हूँ। मेरी इस प्रकार की प्रयत्नशीलता के चिह्न मेरे एक के बाद एक आनेवाले नाटको मे पाठक और आलोचक खोज सकते है। नाटक लिखने की किसी एक शैली को पकडकर मैं नही रहा। जिन बातो को स्पष्टत मैं अपनी कमज़ोरी मानता हूँ उनमे भी यदि बटुकजी ने सौदर्य पाया है तो मै उसे उनकी ईमानदार सम्मति मानते हुए भी उनसे चिपटे रहने का दुराग्रह नही करूँगा। इसी प्रकार इस पुस्तक मे कुछ स्थल ऐसे भी है जहाँ उन्होने मेरे किसी नाटक या उसके अश की निंदात्मक आलोचना की है उनमे से कुछ स्थलो पर मैं उनसे सहमत नही हूँ। मैं चाहता तो उनसे बहस करके उनको अपनी सम्मति मे सशोधन करने का आग्रह करता किंतु ऐसा मैंने नही चाहा। आलोचक ने निष्पक्ष होकर जो सोचा है वह पाठको के सामने जाना चाहिए। मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरे सम्बन्ध मे विस्तार से सोचने का यह पुस्तक श्रीगणेश है और यह श्रीगणेश करने के लिए मैं बटुकजी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

प्राक्कथन

नाटककार श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर अभी तक विस्तृत विचार नही हुआ। यत्र-तत्र जो सामग्री निकली है, वह पूर्ण नही कही जा सकती। इस दृष्टि से आचार्य श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' की यह रचना एक बडे अभाव की पूर्ति करती है।

प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य प्रेमीजी के व्यक्तित्व एव कृतित्व का सम्यक् परिचय देना है। यह परिचय ऐसे पाठको की आवश्यकता को ध्यान मे रखकर प्रस्तुत किया गया है, जो साहित्य की अत्यत गम्भीरतायुक्त उलझनो से मुक्त साहित्य के समुचित आस्वादन के लिए उसका सहज रूप हृदयगम करना चाहते है। इसीलिए लेखक ने विवरणात्मकता की ओर अधिक आग्रह दिखाया है। इस रीति से नाटककार प्रेमी का बडा ही सरल एव सजीव अध्ययन सामने आ गया है।

साहित्य एव उसके कृतित्व के अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली हिन्दी आलोचना-क्षेत्र मे जिस सर्वमान्य रूप मे स्थिर हो गई है, लेखक ने उसका अवलम्ब लेकर अपना यह अध्ययन तैयार किया है। प्रारम्भ और अन्त मे प्रेमीजी के व्यक्तित्व की चर्चा है, जिससे उन प्रेरणाओ पर प्रकाश मिलता है, जो प्रेमीजी के साहित्यिक व्यक्तित्व को बल देती है। बीच के पृष्ठो मे विभिन्न दृष्टियो से उनके साहित्य का परिचय दिया गया है। उनकी कृतियो का अलग-अलग परिचय भी दिया गया है और वर्गीकृत ढग से सामूहिक रूप मे भी। प्रेमीजी की रचनाएँ तीन वर्गों मे विभाज्य है १—नाटक, २—एकाकी नाटक। और फिर नाटक दो प्रकार के है। यद्यपि प्रेमीजी प्रधानत ऐतिहासिक नाटककार है, किन्तु उनके सामाजिक नाटको का भी अपना महत्व है। लेखक ने इन तीनो प्रकार की कृतियो का अलग-अलग विस्तृत अध्ययन किया है।

अन्तत प्रेमीजी की साहित्यिक देन का उल्लेख करते हुए उनका मूल्याकन भी लेखक ने दिया है। मूल्याकन के प्रसग मे लेखक ने प्रेमीजी के नाटको को अन्य नाटककारो की कृतियो के साथ रखकर उनकी विशेषताओ पर प्रकाश डाला है। यह ठीक है कि लेखक ने वैज्ञानिक प्रणाली का अवलम्ब लिया है किन्तु वैज्ञानिक प्रणाली की बोझिलता से वह बचकर चला है। साहित्य के अध्ययन के लिए साहित्य-विधा के प्रतिमान स्थिर करने होते है, और फिर उनकी कसौटी पर साहित्य को कसना होता है। नाटकी के अध्ययन के क्रम मे आवश्यक होता है कि नाटक-सम्बन्धी प्राच्य सिद्धात एव पाश्चात्य सिद्धान्तो के आधार पर नाटक के प्रतिमान स्थिर किये जायँ, आज के नाटक का आदर्श स्वरूप स्थिर किया जाय। सामाजिक एव ऐतिहासिक नाटको के

सम्बन्ध मे विवेचन दिया जाय, एकांकी नाटको की कला पर विषद प्रकाश डाला जाय। जान पडता है कि लेखक ने अपने लिए सीमाएँ निर्धारित करली हैं। वह विवेचन-विश्लेषण की पद्धति को उसी सीमा तक स्वीकार करके चला है, जहाँ तक यह पद्धति सामान्य पाठक के बोध के लिए दुरूह नही हो जाती।

यह सीमा होते हुए भी प्रेमीजी के नाटककार रूप का यह अध्ययन हिन्दी मे पहला है, जिसमे लेखक ने पूर्ववर्ती आलोचको के कथनो को सामने रखकर प्रेमीजी पर मौलिक ढग से विचार किया है। जहाँ-कही वह इन कथनो को स्वीकार नही कर पाता है वहाँ उसने अपने मौलिक विवेचन-निष्कर्ष दिये हैं। आगे आनेवाले अध्ययन को इस पुस्तक से बडी सहायता मिलेगी। यह पुस्तक छात्रो, अध्यापको एव प्रेमीजी का अध्ययन करनेवालो के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

—राजेश्वर गुरु,
एम० ए०, पी-एच० डी०

जहाँगीरबाद,
भोपाल
२८-६-६

पुस्तक आपके सामने है

'प्रेमी'जी को मै व्यक्तिगत रूप से सन् १९३८ ई० से जानता हूँ। तब से आज तक मै अनेक बार उनके निकट रहने के अवसर पाता रहा हूँ। इस प्रकार मै उनका 'अति परिचय प्राप्त कर सका हूँ, किन्तु इस 'अति परिचय' मे मैने कही भी किसी प्रकार का अनादर का भाव नही पाया। यो अनेक प्रसग ऐसे भी आये कि मुझमे और प्रेमीजी मे कुछ मनमुटाव हुआ, मैने अपने स्वभाव के अनुसार उनकी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कटुतम आलोचना की। उनके व्यक्तित्व का पर्दा फाश करने वाली एक कहानी 'प्रूफरीडर' मैंने लाहौर की एक साहित्यिक गोष्ठी मे सब भद्रजनो और सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवियो के बीच पढी। यह सब हुआ किन्तु उनके साहित्य का मै सदा ही प्रशसक रहा। मै समझता हूँ साहित्यकार के निजी जीवन को बालाएताक रखकर ही साहित्य की परख करनी चाहिए। विरोधी के उत्तम साहित्य की निन्दा और अपने गुट के व्यक्ति के निकृष्टतम साहित्य की भी प्रशसा करना शिवम् नही है। आज तो ऐसा बहुत होता है। इतना ही नही, आज का समालोचक केवल उसीके साहित्य की भटैती करता है, जिससे किसी भी प्रकार के स्वार्थ की आशा है। खेद है कि मै इतना व्यावहारिक नही बन पाता हूँ।

कुछ बडे लोगो के मुख से मैने प्रेमीजी के व्यक्तिगत जीवन और उसके साथ ही उनके साहित्य की भी घोरतम निन्दा सुनी है। कई महानुभावो ने जब यह सुना कि मैं प्रेमीजी पर एक पुस्तक लिख रहा हूँ तो उन्होने नाक-भौ सिकोडी और मेरे इस कदम को शका-सन्देह और घृणा की दृष्टि से देखा। मुझे इस पर न तब कुछ कहना था न अब कुछ कहना है, केवल इतना ही पूछता हूँ कि यदि प्रेमीजी का साहित्य निकृष्ट है तो वह क्या कारण है कि उनकी रचनाओ के सस्करण पर-सस्करण होते है, किसी पुस्तक के छत्तीस सस्करण यो ही नही हो जाया करते और एक लाख रुपये के लगभग रायल्टी भी यो ही नही मिल जाया करती। यदि उनकी रचनाएँ अच्छी नही है तो क्यो सभी प्रकाशक उन्हे प्रकाशित करने को आतुर रहते है और क्यो उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक के पाठ्य क्रमो मे उनकी पुस्तके नियत होती चली जाती है ? प्रेमीजी किसी गुट मे भी नही हे, किसी को किसी प्रकार का लाभ पहुँचने की स्थिति मे भी नही हैं, फिर क्या बात है ?

जो भी बात हो, मुझे उनका साहित्य भाया है, और उस पर मैने अपना दृष्टिकोण दिया है, ईमानदारी से विचार किया है। हाँ, जहाँ मुझे त्रुटियाँ दिखाई दी है, उन पर मैंने खूब कसकर लिखा है। दो-दो पृष्ठो तक निरन्तर उनकी त्रुटियो पर

प्रहार करता चला गया हूँ। फिर भी कीचड मैने नही उछाला, वह काम दूसरो के लिए छोड दिया है।

आज प्रेमीजी साहित्य-जगत् मे बहुत चर्चा का विषय है, यह पुस्तक भी उस चर्चा मे शामिल हो, इस आशा से मैने उसे नही लिखा, मुझे उन पर और उनके ही जैसे अन्य लोगो पर लिखना था, लिखना है, इसलिए लिख दिया है। स्वस्थ आलोचना की एक प्रणाली (जो आज खो गई है) चले, इसलिए यह पुस्तक मैंने लिखी है, और पुस्तक आपके सामने है, इसकी हर अच्छाई बुराई के लिए मै जिम्मेदार हूँ। पुस्तक आपके सामने है, उपयोगी होगी या अनुपयोगी यह तो समय बतायेगा। इसकी चिन्ता मैंने नही की। इसकी चिन्ता तो वे लोग कर ही रहे है, जो इस पुस्तक के अस्तित्व मे आने से पूर्व ही मेरी अल्प-बुद्धि का मजाक उडाने लगे है।

पुस्तक आपके सामने है। इसके लिए पहले तो श्रेय मिलना चाहिए प्रकाशक श्री रघुवीरशरण बसल को, जिन्होने बडे मनोयोग से, लगन से इसे छाप दिया है। फिर श्रेय मिलना चाहिए उन कम्पोजीटर्स को जो मेरी लेखनी को पढ सके। उसे पढना तो स्वय मेरे लिए भी कठिन हो जाता है।

अन्त मे मैं उन सभी विद्वानो का आभारी हूँ, जिनके ग्रन्थो से प्रत्यक्ष और परोक्ष सभी प्रकार की सहायता मुझे इस पुस्तक के लिखने मे मिली है। प्रेमीजी को भी धन्यवाद देता हूँ कि उन्होने आदि से अन्त तक पुस्तक को पढ लिया और कही भी परिवर्तन करने के लिए कुछ न कहा। पढा, पसन्द किया और दो शब्द लिखना भी स्वीकार कर लिया।

जालन्धर,
ज्येष्ठ पूर्णिमा '६० ई०

—विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'

अनुक्रम

एक

प्रेमीजी के नाटकों की मूल प्रेरणा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसकी यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपने भावो तथा विचारो को दूसरो पर प्रकट करे तथा दूसरे के भावो और विचारो को सुने। वह अपनी इसी प्रवृत्ति से विवश हुआ अपनी भावनाओ, अनुभूतियो तथा कल्पनाओ को अपने आपमे नही रख सकता, वह उनकी अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल हो उठता है, साहित्य के विविध अग उसकी इस अभिव्यक्ति के ही साधन है। शब्द-रूप मे आत्माभिव्यक्ति की इच्छा ही साहित्य कहलाती है। साहित्य आत्मा की झकार है। मनुष्य की आत्मा जब परिस्थितियो के आघात से अनुरणन कर उठती है तो साहित्य का जन्म होता है।

साहित्य-सर्जना मे जहाँ एक ओर प्रणेता का निजी जीवन कारण होता है, वहाँ उसको साहित्य-निर्माण मे समकालीन परिस्थितियाँ भी प्रेरक होती है। प्रेमीजी के नाटको की प्रेरणा-भूमि दोनो छोरो को छूती है। प्रेमीजी का व्यक्तिगत जीवन बडा ही सघर्ष पूर्ण रहा है। एक महावृक्ष की डाल से टूटे पत्ते की भाँति वे सदा समय-पवन के पखो पर जहाँ-तहाँ उडे-उडे फिरते रहे है, वे कभी उठे है, कभी गिरे है, कभी धीमी गति से चले हैं, कभी अधड और तूफान के वेग से दौड लगाई है। श्री जयनाथ 'नलिन' के शब्दो मे—'प्रेमी' का व्यक्तिगत जीवन अनेक विषम परिस्थितियो की दम घोटनेवाली तग घाटियो से होकर कभी समतल मे आया है, कभी अचानक फिर बहुत नीचे ढाल पर ढुलक पडा है। ऐसी विपरीत परिस्थितियो मे, जहाँ निश्चय का अवलम्ब न हो, समतल पर चलते रहने का भरोसा न हो, और न हो जीवन-यात्रा से थके मन को क्षण-भर विश्राम।'[1]

प्रेमीजी जब केवल दो वर्ष के थे तो उनकी माता का देहान्त हो गया। मा के आँचल की जगह मिला ऊपर का विराट् आकाश और गोद की जगह मिली विस्तृत वसुन्धरा। बडे होते-होते पिता से उनकी पटी नही, भाइयो का अनुशासन कभी उन्होने माना नही। स्कूली बाधाओ को कभी स्वीकार नही किया। अध्यापक कक्षा मे सूर, तुलसी, कबीर की कविता पढाते तो प्रेमीजी उनके भावार्थो के स्थान पर कक्षा को अपनी ही कविता सुनाते। घर का निवास छोडा, सुख-सुविधा और आराम

---

१ हिन्दी के नाटककार (श्री जयनाथ 'नलिन') पृष्ठ १२३

छोडा, अपना कविता-प्रेम नही छोडा। जब कभी ऐसी परिस्थिति आई भी कि वे साहित्य सर्जन नही कर पाये तो उनकी आत्मा कराह उठी। अपने नाटको मे जहाँ-तहाँ उन्होने अपनी इस व्यथा को व्यक्त भी किया है। 'उद्धार' की भूमिका मे आप लिखते है—'एक सुदीर्घ विछोह के पश्चात् फिर 'प्रेमी' एक पुष्प लेकर सरस्वती के मन्दिर मे आया है। प्रेमी' की हृदय-वाटिका मे जब वसन्त का आशीर्वाद था, अनेक कलियाँ सुमनवती थी और चयन करके थाल सजाकर देवी के चरणो मे चढाने वह आ ही रहा था कि भयानक आँधी आई और उस आँधी मे वे पुष्प उड गये।'

अपने निजी जीवन को गला-जलाकर और तपा-ढलाकर ही 'प्रेमी' जी ने साहित्य का सर्जन किया है। 'शिवा-साधना' की भूमिका मे आपने लिखा है—'लोग कहते हैं, स्वर्ग और नरक दोनो इसी जगत् मे है—जो आज सुख शान्ति और वैभव का उपयोग कर रहे है वे स्वर्ग मे रहते है और जो दु ख, दारिद्रय और चिन्ता-ज्वाला मे जल रहे है, नरक मे निवास कर रहे है। स्वर्ग की बात मै नही कह सकता, किन्तु जब अपनी वर्तमान परिस्थितियो को देखता हूँ तो ज्ञात होता है कि नरक यही है। वतमान परिस्थितियो मे भी मै मा-हिन्दी के मन्दिर मे यह नवीन नाटक लेकर उपस्थित हो रहा हूँ—यह आश्चर्य की बात है। जिस स्थिति मे दिमाग के पुर्जो को ठीक रखना भी असभव है—मैं कैसे यह पुस्तक लिख सका, यह मेरे लिए भी आश्चर्य की बात है।'

'बन्धन' की भूमिका मे भी यही विचार व्यक्त किये गये है—'मै तो अपने ही प्राणो मे से साहित्य की किरणे निकालता हूँ। मै स्वय अपने साहित्य का विषय हूँ। और ससार क्या है ? यह भी 'मै' ही है। ससार की अनुभूतियाँ मेरी है, मेरी अनुभूतियाँ ससार की। इसलिए अपनी तसवीर खीचकर भी मैं ससार की और ससार की खीचकर अपनी खीचता हूँ।'

इस प्रकार 'प्रेमी' जी को अपने ही भीतर से नाटक लिखने की प्रेरणा मिली है, उनका व्यक्तिगत जीवन ही उनके नाटको का प्रेरक है। दूसरी ओर बाह्य परिस्थितियो से भी उन्हे प्रेरणा मिली। 'जब 'प्रेमी' की लेखनी कला-सृजन के लिए सजग हुई तब महान् भारतीय राष्ट्र दासता की शृखला तोडने के लिए सघष कर रहा था। उसकी कल्पना ने ज्योही जीवन के रग पहचानने की चेष्टा की, उसने देखा देश के दीवाने सिर पर कफन बाँधकर खून की रगीनी से राष्ट्र के आँगन मे बलिदान के महान् यज्ञ के लिए चौक पूर रहे है। देश का आकाश राष्ट्रीय आन्दोलन के उमग-भरे कोलाहल से गूँज रहा है। गाँधीजी के नेतृत्व मे भारत का बूढ़ा और जवान रक्त अपने जन्म-सिद्ध अधिकार के लिए आकुल हो रहा है। अधिकार की माँग मे अपने को अधिकारी प्रमाणित करने का निर्माणकारी कार्य देश को

करना है—सम्मिलित सघर्ष । और हिन्दू-मुस्लिम एकता उस सम्मिलित सघर्ष की शक्ति है । जिस देश-भक्ति ने हिन्दुत्व का रूप धारण करके भारतेन्दु को प्रेरित किया, जो आर्य-सास्कृतिक चेतना के रूप मे प्रसाद की राष्ट्रीय प्रेरणा बनी, उसी राष्ट्रीय उत्थान की भावना ने 'प्रेमी' को हिन्दू मुस्लिम ऐकता का चोला पहनकर प्रकाश दिखाया ।'[१]

'प्रेमी की अपनी परिस्थितियो ने भी उसको एक आदर्श की ओर मोड दिया । वह राष्ट्रीय आदर्श उसके लिए अवलम्बन बन गया । अपने जीवन की बेबसी मे प्रेमी ने समस्त राष्ट्र की बेबसी और पीडा की झाँकी पाई । अपने को उसने सम्पूर्ण समाज का सजग, स्पष्ट और सम्पूर्ण प्रतिनिधि मानकर उन भीषण अभावो और विवशताओ, आर्थिक विषमताओ और किसी विशेष वर्ग को दी गई शोषण की रियायतो का निराकरण राष्ट्रीय स्वाधीनता मे पाने का प्रयत्न किया । प्रेमी के घायल मन को एक आदर्श का अवलम्ब मिल गया । उसी अवलम्ब को लेकर वह नाटकीय क्षेत्र मे बहुत स्वस्थ लेखनी लेकर आगे बढे ।'[२]

'प्रेमी' जी के जीवन की करुणा ने ही उन्हे मातृभूमि की ममता की ओर उन्मुख किया । 'स्वर्ण-विहान' की भूमिका मे उन्होने लिखा— जिस मातृभूमि ने अपने प्रेम और ममता से नवजीवन दान दिया उसे प्रेमाजलि अर्पण करने को ही इस नाटिका की रचना हुई है ।' सच तो यह है कि प्रेमीजी के सभी ऐतिहासिक नाटक भारत की राष्ट्रीय-भावना को व्यक्त करने के लिए लिखे गये । राष्ट्रीय एकता और देश-स्वातत्र्य की भावना ने सदा ही प्रेमीजी को सजग रखा । 'रक्षा-बन्धन', 'शिवा-साधना', 'विषपान', 'उद्धार', 'प्रतिशोध', 'आहुति', 'स्वप्न भग' आदि भारत मे राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के उद्देश्य से ही लिखे गये । अपने ऐतिहासिक नाटक लिखने के कारणो पर प्रकाश डालते हुए 'प्रेमी'जी ने लिखा है—" 'उद्धार की घटनाएँ ऐतिहासिक हैं— किन्तु वर्तमान राजनीति और समाजनीति की अनेक उलझनो का समाधान इसमे है । मेरा देश स्वतन्त्र हो गया, किन्तु देशवासियो ने अभी तक राष्ट्रीयता के महत्त्व को समझा नही, इसलिए राष्ट्रीयता की भावनाओ को उत्साहित करनेवाले साहित्य की आज आवश्यकता है ।" ('उद्धार') 'राजस्थान की एकता के के लिए 'विषपान' की नायिका 'कृष्णा' ने विषपान किया था—और कल ही महात्मा गाँधी ने भारतीय एकता के लिए अपने प्राण दिये है । इतना बडा बलिदान लेकर भी हिन्दुस्तानियो ने राष्ट्रीय एकता का महत्व नही समझा । इसीलिए मुझे सास्कृतिक और राष्ट्रीय एकता का राग बार-बार गाना पड रहा है ।' ('विषपान') ।

'मैंने नाटको की रचना निरुद्देश्य नही की है । भारत सदियो की पराधीनता के पश्चात् स्वतन्त्र हुआ है और अब इसे नवार्जित स्वतन्त्रता की रक्षा भी करनी है ।

१ और २ हिन्दी के नाटककार (श्री जयनाथ 'नलिन') पृष्ठ १२२ और १२३

एव राष्ट्र को सुखी, समृद्ध और शक्तिशाली भी बनाना है। प्राचीन इतिहास हमारी शक्ति और दुर्बलता का दर्पण है। मैंने बार-बार यह दर्पण अपने देशवासियो के सन्मुख रखा है ताकि हम अपने देश के अतीत को देखकर व्यक्तिगत, सामाजिक एव राजनीतिक जीवन से उन दुर्बलताओ को दूर करे, जिन्होने हमे पराधीनता के पाश मे बाँधा, उन गुणो को ग्रहण करे, जिन्होने हमे अभी तक जीवित रखा और फिर स्वतन्त्र किया तथा उन गुणो का विकास करे, जिनकी राष्ट्र के नव-निर्माण मे अपेक्षा है।' ('कीर्तिस्तम्भ')

'भारत अति प्राचीन और अति विस्तृत देश है, जिसमे अनेक धर्मों के माननेवाले लोग रहते चले आये है और रह रहे है। धर्म और जाति के नाम पर नासमझ लोग पारस्परिक सघर्ष मे जूझकर राष्ट्रीयता और एकता को खडित करते रहे है, फलत यह सुसस्कृत, समृद्ध, प्रतिभावान् और शक्तिशाली देश अनेक बार पराधीन हुआ है। इस तथ्य को देश के शुभचिन्तक देश-वासियो के सम्मुख बार-बार लाते रहे है, ताकि भविष्य मे इस प्रकार की भूले हम न करे। अब हम स्वतन्त्र है और हमे बहुत बलिदानो के पश्चात् प्राप्त की हुई इस स्वतन्त्रता की रक्षा करनी है, अपनी दुर्बलताओ को दूर करना है और देश को सुखी और समृद्ध बनाना है। यह तभी सभव है जब हम एकता के सूत्र मे बँधकर देश के उत्थान मे जुट पडे। महात्मा गाधी ने देश की एकता की रक्षा करने के लिए प्राण दे डाले। भारत सब वर्गों, जातियो और धर्मों का है। सबमे भाईचारा होना चाहिए, सबको समान सुविधाएँ और अधिकार प्राप्त होने चाहिएँ, और सब राष्ट्रीयता की भावना से एक सूत्र मे बँधे रहने चाहिएँ, यही गाधीजी की कामना थी। मैंने अपने कुछ नाटको के द्वारा उनकी इस कामना को सफल बनाने की दिशा मे थोडा-सा योगदान दिया है।' ('विदा')

स्पष्ट है कि प्रेमीजी की नाटकीय-प्रेरणा की पृष्ठभूमि है—राष्ट्रीय एकता। ऐतिहासिक कथाओ मे 'प्रेमी'जी ने गाधीवादी राष्ट्रीय आदर्श की प्राण-प्रतिष्ठा की है। गाधीवाद का प्रभाव प्राय उनके सभी नाटको मे स्पष्ट है—यही गाधीवादी राष्ट्रीयता का आदर्श 'प्रेमी'जी के नाटको की प्रेरणा है। गाधीवादी विचारधारा से प्रेरित होकर ही उन्होने सामाजिक नाटक 'बन्धन' की रचना की। हृदय-परिवर्तन पर गाधीवाद अधिक बल देता है। एक पूँजीपति का एक युवक ने किस तरह हृदय-परिवर्तन किया, यही 'बन्धन' मे बताया गया है। सत्य, अहिंसा, शान्ति और सहयोग की भावना से पूर्ण 'बन्धन' गाधीवादी भावना का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करता है।

अनेक विद्वानो ने प्रेम को भी साहित्य की मूल प्रेरणा माना है। 'प्रेमी'जी प्रेम को अपनाकर नाट्य-रचना करते है। उनके प्रत्येक नाटक मे प्रेम का पावन स्रोत बहता है। प्रेम के प्रति जो उनका आग्रह है, उसे 'स्वर्ण-विहान' की भूमिका मे इस

प्रकार व्यक्त किया है—'इस पुस्तक मे मैंने एक निश्चित आदर्श रखने का प्रयत्न केवल इसलिए किया है कि वह आदर्श 'प्रेम' है—मेरा प्राण है। राजनीति मुझे प्यारी नही, परन्तु आँसुओ से, आहो से, दु खो से, मानवता के अपमान से मेरे हृदय का सीधा सम्बन्ध है, इसीलिए यह तुतली-सी तान बरबस निकल पडी है। इस पुस्तक मे केवल राष्ट्रीयता ढूँढनेवाले जगह-जगह प्रेम के उच्छृङ्खल गीत सुनकर बिगड बैठेंगे, परन्तु मैं प्रेमहीन ससार को श्मशान से भी बुरा समझता हूँ।' इसी प्रेम-भावना ने उन्हे मानव-प्रेम और देश-प्रेमकी उत्कट विचारधारा की ओर उन्मुख किया और इसी प्रेरणा के कारण वे कला को कला के लिये मानते हुए भी सोद्देश्य नाटक रचना कर सके। 'प्रेमी'जी ने केवल लिखने के लिए नही लिखा, बल्कि अपने प्राणो का आसव पिलाकर मानवता, समाज और देश को नई स्फूर्ति देने का आयोजन किया है।

९

प्रेमीजी के ऐतिहासिक नाटक : इतिहास और कल्पना का समन्वय

किसी भी देश और जाति का साहित्य उसका इतिहास ही है। अत इतिहास को साहित्य से अलग करके नही देखा जा सकता। इतिहास सत्य का समूह है और साहित्य सत्य की अभिव्यक्ति। साहित्यकार सत्य की अभिव्यक्ति के लिए इतिहास का आश्रय लेता है, क्योंकि ऐतिहासिक कथानक, इस लोक के पात्रो द्वारा सत्य की अभिव्यक्ति दिखाकर उसके सजीव, स्वाभाविक, विश्वसनीय एवम् व्यावहारिक रूप को सिद्ध करता है। इतिहास के समिश्रण से साहित्य की कल्पना और अनुभूति इसी लोक की बन जाती है। पात्रो की ऐतिहासिकता, पाठको को बार-बार यह समझाती है कि वह सत्य इसी लोक का है। ऐतिहासिक कथानक एवम् पात्र, साहित्य-सिद्ध आदर्शों को सजीवता प्रदान करते है, साहित्यिक कल्पनाओ मे यथार्थ की चेतना भर देते है।

साहित्य का काय सत्य का स्वाभाविक, विश्वसनीय और सरलतम ढग से साक्षात्कार कराना है। इस साक्षात्कार के लिए तादात्म्य-सम्बन्ध-स्थापना की प्रक्रिया काम मे लाई जातो है। विशेषकर नाटककार को साधारणीकरण के लिए इतिहास से सहायता मिलती है। ऐतिहासिक पात्रो से पाठको का आत्मीय सम्बन्ध सस्कारवश जुडा रहता है, अत उनसे साधारणीकरण तथा तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित करने मे उ हे सरलता होती है। परिणामस्वरूप उनके हृदय मे रसोद्रेक सहज भाव से होता रहता है। इस प्रकार उनके रसयुत हृदय मे साकेतिक सत्य शीघ्रता से उदित हो जाता है। इतिहास के प्रकाश मे आभासित साहित्य वर्णित जीवन अधिक स्वाभाविक, विश्वसनीय एव बोधगम्य हो जाता है।

साहित्यगत जीवन को ऐतिहासिक पात्र, कथानक, परिस्थितिया एव वातावरण पग-पग पर यह ज्ञान कराते रहते है कि वह इसी लोक का और इसी लोक के प्राणियो का है। वास्तव मे कल्पनामूलक साहित्यगत जीवन को लोकसिद्ध करने का श्रेय ऐतिहासिक कथानक को है। सभवत इसी सिद्धान्त को ध्यान मे रखकर प्राचीन साहित्य-शास्त्रियो ने नाटक मे ऐतिहासिक भूमि के लिए विशेष मान्यता दी है। अत कोई भी रस-सिद्ध साहित्यकार इतिहास का आधार लेकर चलना अधिक पसन्द करेगा।

सोद्देश्य साहित्य-सर्जन करनेवाले व्यक्ति तो और भी अधिक इतिहास की ओर दृष्टि दौडाते है। प्रसादजी निस्सन्देह उच्चकोटि के ऐतिहासिक नाटककार थे, उन्होने अपने नाटक 'विशाख' की भूमिका मे लिखा है —'इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श सगठित करने के लिए अत्य त लाभदायक होता है क्योकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी सभ्यता है, उससे बढकर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नही, इसमे मुझे पूर्ण सन्देह है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अश से उन प्रकाड घटनाओ का दिग्दर्शन करने की है, जिन्होने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत प्रयत्न किया है।'

प्रसादजी के वक्तव्य से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक नाटक मे नाटककार इतिहास के गभीर अध्ययन और मनन से देश की सस्कृति के प्राचीन विकास की भूली हुई शृ खलाओ की कडियो को खोजने और उन्हे मिलाने का प्रयत्न करता है। अपनी खोज के आधार पर वह तत्कालीन प्रतिनिधि व्यक्तियो को लेकर नाटक की कथा-वस्तु का निर्माण करता है। इसीसे वह अपने देश के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम करता है। प्रेमीजी ऐसे ही प्रकाश-स्तम्भ है। उन्होने इतिहास के महत्त्व को समझा है, इसीलिए साहित्य मे उसका समावेश किया है।

प्रेमीजी ने इतिहास को अपने नाटको का आधार क्यो और किस सीमा तक बनाया, इसका उत्तर यद्यपि उपर्युक्त विवेचन से स्वत ही मिल जाता है, किन्तु इस प्रश्न का उत्तर उनके शब्दो मे इस प्रकार है —

'इतिहास—हमारा भूत—हमारा बीता हुआ काल हमारे आज की बुनियाद है। बिना दृढ आधार के हमारा समाज, हमारी सस्कृति, हमारी राष्ट्रीयता और हमारी मानवता खडी कैसे रह सकती है, मै तो अपने राष्ट्र के पैरो को इतिहास का बल देना चाहता हूँ। ('शतरज के खिलाडी' की भूमिका)

'हम अभी स्वतन्त्र हुए है और हमे अपनी स्वाधीनता की रक्षा करनी है, इसलिए हमे अपना इतिहास इस दृष्टिकोण से भी पढना है कि हम अपनी उन दुर्बलताओ को जान सके, जिनके कारण हम पराधीन हुए थे ताकि भविष्य मे उन भूलो को हम दुहरावे नही।' ('सरक्षक' की भूमिका)

'भारतीय इतिहास के उन कथानको पर जिनसे इस विशाल देश मे राष्ट्रीय एकता स्थापित करने की प्रेरणा प्राप्त हो, कुछ नाटक लिखने का प्रयास मैने किया है।' ('विदा' की भूमिका)

'इतिहास के अध्ययन का अर्थ तिथियो, घटनाओ और राजाओ के नामो को याद कर लेना भर नही है। इतिहास तो हमे बताता है कि हमे क्या करना चाहिए, क्या नही—किस तरफ जाने मे पतन है, किधर जाने मे उत्थान—कहाँ मरण है, कहाँ जीवन!' ('शपथ' की भूमिका)

'प्रेमी'जी के ये वक्तव्य बताते है कि ऐतिहासिक नाटक विस्मृति का धुँधला आँचल हटाकर हमारे सामने अतीत की झाँकी उपस्थित कर देते है। ये नाटक इतने प्रेरक होते है कि कभी-कभी तो पाठक महान् विभूतियो के आदर्श तथा कार्य-क्षमता से विस्मित हो उठते है और देश-प्रेम की भावना से भर आते है। ऐतिहासिक कथानक लेकर चलनेवाले नाटक जनता के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होते है। प्राचीन गौरव के चित्र हमारे हृदयो मे उत्साह की सृष्टि करते है और हमारे पूर्वजो की भूले हमे भविष्य के लिए सचेत करती है। प्रेमीजी ने इन्ही बातो को ध्यान मे रखकर ऐतिहासिक नाटको की सृष्टि की है। केवल इसलिए नही कि उन्हे नाटक लिखने मे सरलता हुई, क्योकि बने बनाये कथानक, घटनाएँ और पात्र मिल गये।

किसी महान् उद्देश्य को सामने रखकर चलनेवाले प्रसादजी ने ऐतिहासिक नाटको की जो धारा प्रवाहित की थी, उसे प्रेमीजी ने ही तीव्रता प्रदान की। अपनी नाटक कला द्वारा उन्होने ऐतिहासिक कथानको मे नये प्राण डाले है। प्रेमीजी ने अबतक जो ऐतिहासिक नाटक लिखे है, उनके नाम इस प्रकार है —रक्षाबन्धन, शिवासाधना, प्रतिशोध, स्वप्न-भग, आहुति, मित्र, विषपान, उद्धार, शपथ, विदा, सरक्षक, शतरज के खिलाडी, प्रकाश-स्तम्भ, कीर्त्तिस्तम्भ, सवत् प्रवर्त्तन और साँपो की सृष्टि।

सभी नाटको के लेखन मे प्रेमीजी ने इस बात का बराबर ध्यान रखा है कि इतिहास के औचित्य की भी रक्षा हो जाये और कल्पना का, जो कि साहित्य का उपयोगी तत्त्व है, भी समुचित समावेश हो। आखिरकार नाटक इतिहास तो नही है। ऐतिहासिक घटनाओ मे कल्पना का मिश्रण करके उसको नूतन रूप देना ही कुशल नाटककार का कर्त्तव्य है। उसे यह अधिकार नही कि वह घटनाओ की सत्यता या उसके क्रम को ही बदल डाले। पुरातन मे नूतन की स्थापना करने का अधिकार तो उसका होता है, किन्तु ढाँचा बदलने का नही। वास्तव मे ऐतिहासिक नाटक की रचना साधारण नाटक से कठिन होती है। ऐतिहासिक नाटककार को प्राचीन इतिहास का पूर्ण रूप से जानकार होने के साथ-साथ सफल और सहृदय कलाकार भी होना चाहिए, जिससे कि वह ऐतिहासिक तथ्यो मे कल्पना का समावेश कर कोरे तथ्य को सरस सत्य का रूप दे सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि लेखक का अध्ययन विस्तृत हो। ऐतिहासिक अन्वेषणो का वह अपने नाटको मे समाहार कर सके और इस ढग से कर सके जिससे कि कल्पना की और भाव-गरिमा की रक्षा भी हो जाये। प्रेमीजी ने इस विषय मे बडी सावधानी बरती है।

'कल्पना का उपयोग करते हुए भी प्रेमीजी ने अपने नाटको मे इतिहास की मर्यादा की पूरी रक्षा की है। कलाकार के अधिकार के उपयोग के अहम् मे आकर उन्होने इतिहास का न तो गला ही दबाया है, और न कल्पना के आतक को ही

इतिहास पर छाने दिया है। इतिहास के सत्य की रक्षा करते हुए प्रेमीजी ने नवीन जीवन-निर्माण का मार्ग दिखाया है और अपनी बात सफलतापूर्वक कह दी है।'[1]

इतिहास की पुस्तको मे मिलनेवाले विवरण ही इतिहास नही है, सभावित घटनाएँ भी इतिहास है, जनश्रुतियाँ और लोकवाणी भी इतिहास ही है। 'यदि हम केवल विदेशियो द्वारा स्वार्थ-प्रेरित मनगढन्त इतिहास की गवाही मे प्रेमीजी के नाटको की परीक्षा करेगे तो भारी भूल होगी। इतिहास केवल वह ही नही है, इतिहास राजस्थान की जनवाणी मे भी अपने यथाथ रूप मे बोल रहा है। जनवाणी और ऐतिहासिक पाडित्य दोनो के आधार पर प्रेमीजी ने अपने नाटको के लिए कथा-सामग्री और पात्र चुने है।'[2]

'रक्षा-बन्धन'—प्रेमीजी का यह पहला ऐतिहासिक नाटक है, जिसने इन्हे ख्याति के शिखर पर पहुँचाया। प्रेमी और रक्षा-बन्धन ये दो शब्द पर्यायवाची से हो गये। रक्षा-बन्धन मे मुगल-सम्राट् हुमायूँ और उदयपुर के स्वर्गीय महाराणा साँगा की पत्नी कर्मवती के भाई-बहिन के पवित्र सम्बन्ध की रक्षा का वर्णन है। नाटक मे दिखाया गया है कि महाराणा का विरोधी मुगल बादशाह कर्मवती को बहिन मान लेने पर अपने मन्त्रियो की मन्त्रणा के विरुद्ध, गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के उदयपुर पर आक्रमण का समाचार सुनकर, उसकी रक्षा के लिए उदयपुर पहुँचता है, किन्तु कर्मवती रक्षा की आशा न देखकर जौहर कर लेती है। हुमायूँ को दुःख होता है कि वह शक्तिभर युद्ध करने पर भी अपनी धर्म-बहिन की रक्षा न कर सका।

रक्षा-बन्धन की कथा मे चित्तौड पर बहादुरशाह का आक्रमण—इतिहास की आँखोदेखी घटना है। कर्मवती द्वारा हुमायूँ को राखी भेजना और उसका चित्तौड की रक्षा के लिए पहुँचना 'टाड के राजस्थान' मे भी वर्णित है। जौहर की कहानी भी जन-मन मे जीवित है। कर्मवती, जवाहरबाई, श्यामा, उदयसिंह, हुमायूँ, बहादुरशाह, विक्रमादित्य आदि सभी इतिहास-प्रसिद्ध पात्र है। नाटक मे वर्णित मेवाड के महाराणा विक्रमादित्य का बहादुरशाह के भाई चाँदखाँ को अपने यहाँ आश्रय देना भी इतिहास-सम्मत है। डा० ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है कि बहादुरशाह अपने राज्य को बढाना चाहता था और सन् १५३१ ई० मे उसने मालवा के राजा पर आक्रमण किया, जिन्होने बहादुरशाह के भाई चाँदखा को अपने यहाँ आश्रय दिया था। इस पर बहादुरशाह ने मालवा के राजा पर आक्रमण किया था।

ऐतिहासिक घटना को और अधिक प्रत्यक्ष करने के लिए इस नाटक मे कल्पना का भी सहारा लिया गया है। धनदास, मौजीराम, चारणी, माया कल्पित पात्र है। इन सभी पात्रो के चरित्रो और सम्वादो से इनके निर्माण का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। धनदास, मौजीराम, माया तो हास्यरस की सृष्टि के लिए

---

१ और २ हिन्दी नाटककार (श्री जयनाथ 'नलिन') पृष्ठ १२४

है। श्यामा और चारणी देशवासियो को जाग्रति का सन्देश देने के लिए है, किन्तु श्यामा भी ऐतिहासिक पात्र है, हाँ उसका चरित्र-विकास कल्पना के आधार पर हुआ है।

यदि कुछ आलोचको को हुमायूं का सहायता का वचन, परन्तु समय पर न पहुँच सकना, जौहर आदि की घटनाएँ इतिहास-सम्मत नही मालूम होती तो इसमे नाटककार का दोष नही, बल्कि ऐतिहासिक तथ्यो की ठीक से सगति न मिला पानेवालो का दोष है। एक बात यह भी है कि जिन घटनाओ पर इतिहासकार ही सहमत नही है, उनके लिए ऐतिहासिक या प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता की चर्चा करना ही व्यर्थ है।

शिवा-साधना मे छत्रपति शिवाजी के साहसपूर्ण आक्रमणो और सगठनो के प्रयत्नो का वर्णन है। शिवाजी न केवल महाराष्ट्र मे बल्कि सारे देश मे जनता का स्वराज्य स्थापित करना चाहते थे। इनके पिता शाहजी आदिलशाह के अधीन थे। शिवाजी के स्वतन्त्र रूप से राज्य स्थापित करने मे उन्हे आपत्ति थी। इसीलिए पुत्र को पिता का कहना न मानते देख वह (आदिलशाह) शाहजी को जीवित दीवार मे चुनवाना चाहता है, परन्तु अपनी बेगम के अनुरोध पर उन्हे कैद कर लेता है, जिससे कि उनकी रक्षा के लिए आनेवाले शिवाजी को कैद कर सके।

दूसरी ओर औरगजेब बीजापुर राज्य के साथ-साथ शिवाजी को भी बरबाद करना चाहता है। कूटनीति मे सफलता न पाकर औरगजेब धोखे से उन्हे बन्दी करता है। शिवाजी उसे धोखा देकर मिठाई के टोकरो मे बैठकर भाग जाते है। माता की मृत्यु से वे वैरागी होना चाहते है, परन्तु समथ गुरु रामदास द्वारा प्रोत्साहन पाकर वे एक बार फिर कर्त्तव्य पर आरूढ होते हे।

'शिवा-साधना' की घटनाए ऐतिहासिक है, कवि ने कल्पना से भी पर्याप्त सीमा तक काम लिया है। इस नाटक की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे 'शिवा-साधना' की भूमिका मे प्रेमीजी ने लिखा है—'मैंने नाटक मे जो घटनाएँ दी है, वे बिना ऐतिहासिक आधार के नही दी। यह ऐतिहासिक नाटक है। नाटक मे इतिहास की अक्षरश· रक्षा करना कठिन कार्य होता है, फिर भी सभी मूल घटनाएँ मैने अक्षरश इतिहास के अनुसार ही अकित की हैं, अपितु इतना भी कह सकता हूँ कि ऐतिहासिक घटनाओ के क्रम आदि का जितना ध्यान इस नाटक मे रखा गया है, उतना शायद अब तक किसी ऐतिहासिक नाटक मे न रखा गया होगा।'

कुछ पात्रो के चरित्र और घटनाओ के सम्बन्ध मे उनका वक्तव्य इस प्रकार है —'मैंने इस नाटक मे बताया है कि शिवाजी न केवल महाराष्ट्र मे बल्कि सम्पूर्ण भारत मे 'जनता का स्वराज्य' स्थापित करना चाहते थे, उनके हृदय मे मुसलमानो के प्रति कोई द्वेष न था। मेरी इस धारणा की इतिहास भी पुष्टि करता है। आधुनिक

इतिहासकारो ने इस बात को एक स्वर से माना है कि शिवाजी ने किसी व्यक्ति को केवल इसलिए नही दड दिया कि वह मुसलमान है।' श्री जी० स० सारदेसाई आदि इतिहासकारो के उल्लेख इस वक्तव्य के समर्थन मे दिये जा सकते है।

प्रेमीजी ने गुरु रामदास को शिवाजी का गुरु माना है। इस सम्बन्ध मे जब तक इतिहासकारो में मतभेद बना है, तब तक प्रेमीजी का ऐसा मानना इतिहास-सम्मत ही स्वीकार किया जाना चाहिए, फिर लोकवाणी भी समर्थ गुरु रामदास को शिवाजी का गुरु मानती आई है।

दादा जी कोडदेव द्वारा शिवाजी को स्वराज्य-साधना की प्रेरणा न मिलना और दादाजी का विष खा लेना आदि घटनाएँ भी इतिहास सम्मत ही है। 'इतिहास की साधारण पाठ्य-पुस्तको मे बताया जाता है कि शिवाजी ने स्वराज्य-साधना की प्रेरणा दादाजी कोडदेव से प्राप्त की थी। परन्तु मराठा इतिहास के विशेषज्ञ इस बात को स्वीकार नही करते। उनका कहना है कि दादाजी शिवाजी को हमेशा उस पथ पर जाने से निरुत्साहित करते रहे, शिवाजी को जो कुछ भी प्रेरणा मिली, वह अपनी वीरागना माता जीजाबाई से ही मिली थी।' जीजाबाई का चरित्र भी लेखक ने इतिहास-सम्मत ही रखा है। दादाजी के विषपान का समर्थन फारसीग्रन्थ तारीख-ए-शिवाजी और यदुनाथ सरकार की 'शिवाजी एड हिज़ टाइम्स' पुस्तक से होता है।

शाहजी को दीवार मे चुनवाने की घटना कल्पित है। यह केवल इतिहास की घटना मे नाटकीयता की वृद्धि के लिए रची गई है, किन्तु दीवार मे चुने जाने की अन्य घटनाओ को ध्यान मे रखा जाये तो लेखक की यह कल्पना सभावना मे बदल सकती है।

सोनदेव द्वारा कोकण के सूबेदार मौलाना अहमद की रूपवती पुत्र-वधू को शिवाजी के सामने प्रस्तुत करनेवाली घटना भी इतिहास-सम्मत है। डा० ईश्वरी-प्रसाद के ग्रन्थ 'भारत मे मुस्लिम शासन का सक्षिप्त इतिहास' से इसकी पुष्टि होती है। जीजाबाई ने शिवाजी की परीक्षा लेने के लिए सोनदेव को ऐसा करने को कहा था, यह लेखक की अपनी कल्पना है। इस कल्पना से सोनदेव के चरित्र की भी रक्षा हो गई है और शिवाजी के अनुशासन की भी।

नाटककार ने दिखाया है कि शिवाजी की पत्नी सईबाई ने औरगज़ेब से सहायता लेने की सलाह दी। कुछ इतिहासकार मुराद से सहायता ली गई बताते है। कुछ भी हो, सहायता लेने की घटना तो सत्य है, उसका स्वरूप अपनी कल्पना से जो बदला है, वह केवल इसलिए कि औरगजेब से सहायता लेने की घटना अधिक जिज्ञासा और कौतूहल को बढाती है। सईबाई की राजनैतिक कुशलता और चारित्रिक विकास पर भी इस कल्पना से प्रकाश पडता है।

अफज़लखाँ का अपनी बेगमो को जीवित तालाब मे फिकवाना कल्पित कहा

जा सकता है, किन्तु कुछ मुगल बादशाहो-द्वारा इस प्रकार की घटनाओ के उल्लेख डा० स्मिथ आदि के इतिहासो मे मिलते है। चाहे वे इस प्रकार की घटनाएँ जान-बूझकर करते थे और चाहे सनक मे आकर, अत इसे कोरी कल्पना न कहकर इतिहास की सभावना कहा जा सकता है।

बावजूद भारी विवाद के भी अफज़लखाँ और शिवाजी के मिलन की घटना भी ऐतिहासिक ही है। आधुनिक खोज के अनुसार पहला हमला अफजलखाँ ने ही किया था। अपने बचाव के लिए शिवाजी पहले से ही तैयार थे, क्योकि अफजलखाँ के षड्यन्त्र का पता उन्हे पहले ही लग गया था। डा० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार शिवाजी के बनाव-शृगार को देखकर अफजलखाँ ने ही प्रथम उनको उत्तेजित किया और अपने बचाव के लिए शिवाजी ने उसकी हत्या की। लोकवाणी इसी प्रकार इस घटना को कहती आई है। यहाँ प्रेमीजी का इतिहास-ज्ञान और निष्पक्षता दृष्टि-गोचर होती है।

अफज़लखाँ के बाद औरगजेब का शिवाजी पर हमला करने के लिए शाइस्ताखाँ को भेजना, चाकन-किला की विजय, उसका पूना के लाल किला मे ठहरना, शिवाजी और उनकी सेना का बारात बनाकर पूना मे प्रवेश तथा राग-रग के पश्चात् किले मे पडे शाइस्ताखाँ पर हमला करना, उसका अँगूठा कटना, उसके लडके द्वारा प्रतिशोध और उसका मारा जाना और इसी समय किसी बाँदी-द्वारा रोशनी बुझाना आदि घटनाएँ भी इतिहास-सम्मत है। डा० ईश्वरीप्रसाद और डा० सरकार ने इनका उल्लेख इसी प्रकार किया है। प्रेमीजी ने रोचकता के साथ सत्य की रक्षा की है, यह उनकी कला-कुशलता है।

शाइस्ताखाँ का जसवतसिह के प्रति यह व्यग्य—मैं तो समझता था कि राजा जसवन्तसिह रात को शिवाजी से लडते हुए मारे गये—भी ज्यो-का-त्यो इतिहास से लिया गया है। नाटक मे वर्णित शिवाजी का सूरत को लूटना और करोडो की धन-प्राप्ति भी इतिहास-सम्मत हे। जयसिह के अनुरोध पर शिवाजी का औरगज़ेब के दरबार मे जाना भी इतिहास के ही अनुसार है। औरगजेब के दरबार मे शिवाजी के अपमान की घटना भी इतिहास मे वर्णित है। शिवाजी के समकालीन भूषण कवि ने भी इस घटना का वर्णन किया है।

औरगज़ेब को नजर पेश करने के पश्चात् शिवाजी का रामसिह कछवाहा के के पास बैठाया जाना और इस पर उनका क्रोधित होकर मूर्च्छित हो जाना इतिहास मे वर्णित है, परन्तु प्रेमीजी ने मूर्च्छा की चर्चा नही की, नायक के चरित्र को दुर्बल होने से बचा लिया है। शिवाजी का मिठाई के टोकरो मे बैठकर निकल जाना, औरगज़ेब का जयसिह के पुत्र रामसिह पर सन्देह करना तथा शिवाजी का सूरत को फिर से लूटना आदि घटनाएँ भी इतिहास-सिद्ध है।

औरगज़ेब की पुत्री ज़ेबुन्निसा का शिवाजी के प्रति आकर्षण भी कोरी कल्पना नही है। इतिहास मे इसका भी स्रोत है। मराठा इतिहासकार श्री ए केलुसकर की मूल मराठी पुस्तक के आधार पर श्री एन एस तकाखव ने अपनी पुस्तक मे लिखा है—'शिवाजी के दरबार मे जाने पर कौतूहलवश दरबार की स्त्रियाँ उन्हे पर्दे के पीछे देखने आई। उनमे औरगजेब की अविवाहिता पुत्री जेबुन्निसा भी थी। शिवाजी की वीरता की कहानियाँ राजकुमारी को पहले ही आकर्षित कर चुकी थी और एक दृष्टि मे ही वह शिवाजी से प्रेम करने लगी थी। उसने प्रण किया था कि या तो वह शिवाजी से शादी करेगी या जन्मभर अविवाहित ही रहेगी।' इसके सम्बन्ध मे प्रेमीजी ने नाटक की भूमिका मे लिखा है—'किसी बादशाह की पुत्री के मन का चित्रण करने की इतिहासकारो को प्राय आवश्यकता ही नही जान पडती और फिर जो बात हृदय मे छिपाकर रखनी होती है, वह इतिहासकारो तक पहुँचे भी कैसे!' स्पष्ट है ज़ेबुन्निसा का आकर्षण प्रेमीजी के मस्तिष्क की सूझभर नही है, उनके इतिहास-प्रिय कुशल नाटककार की खोज है।

यमुना, अकाबाई, सलीमा, मसीदखा, तारासिह आदि कल्पित पात्र है, किन्तु ऐतिहासिक भावना का इनसे कही हनन नही होता है।

'प्रतिशोध' में वीर बुन्देला छत्रसाल की कहानी है। बुन्देलो की बिखरी हुई शक्ति को किस प्रकार उसने सुसगठित कर औरगज़ेब जैसे शक्तिशाली सम्राट् का सफल विरोध किया, यही प्रतिशोध का विषय है। इस नाटक की रचना कवि लाल-कृत 'छत्र-प्रकाश' पर आधारित है। प्रेमीजी का कहना है कि इस नाटक मे पात्र कल्पित हो, यह बात अलग है, किन्तु ऐतिहासिक घटनाओ मे ज़रा भी उलट-फेर नही हुआ। बुन्देलखड का प्रामाणिक इतिहास हिन्दी-भाषा-भाषियो के लिए अभी तक अपरि-चित है। जो कुछ प्रयत्न हुआ भी है वह ऐतिहासिक भूलो से पूर्ण है। 'प्रतिशोध' मे ऐतिहासिक भूले नही है, नाटककार ने इतिहास की रक्षा करने का पूरा यत्न किया है। नाटक के ऐतिहासिक आधार के लिए स्वय लेखक ने 'प्रतिशोध' की भूमिका मे लिखा है — 'बचपन से मै बुन्देलो की उद्दण्ड वीरता की कहानियाँ सुनता आया हूँ। इस युग मे भी अनेक बुन्देले ठाकुरो को तलवारो की कमाई खाते हुए मैंने देखा है। दारिद्रय से तग आकर नौकरी करने के स्थान पर डाके डालना स्वाभिमानी मन को ज्यादा भाता है। विपरीत परिस्थितियो के आगे सर झुका देने की कमज़ोरी आजतक इस जाति मे नही आ पाई है। इसका कारण इसका प्राचीन उज्ज्वल इतिहास ही है।

छत्रसाल के पिता चम्पतराय का जीवन जितना सघर्षमय, जितना कष्टमय और जितना तेजस्वी रहा है, उतना वीरतम जातियो के इतिहास मे थोडे ही व्यक्तियो का मिलेगा। उनके मरने के बाद अनाथ, दरिद्र, दाने-दाने को मोहताज, अल्पवयस्क छत्रसाल किस प्रकार केवल अपने वश के पूर्व गौरव को प्राप्त करने मे ही नही, बल्कि

बुन्देलखड से मुगल-साम्राज्य की सत्ता को निर्वासित करने मे सफल हुए, यह लगन, कष्ट-सहन और साहस का उच्चतम उदाहरण है। वास्तव मे 'प्रतिशोध' के पात्रो के चरित्र की महानता मे ही बुन्देलखड का इतिहास सुरक्षित है।

'आहुति' मे रणथभौर के हम्मीरसिंह और अलाउद्दीन के युद्ध का वर्णन है। अलाउद्दीन के कोप-भाजन मुस्लिम सरदार मीर महिमा को शरण देकर वे स्वय भी उसके कोप-पात्र बनते है। अलाउद्दीन बहाना पाकर चढाई कर देता है। युद्ध कई मास तक चलता है। कोषाध्यक्ष सुजानसिह धन का अभाव बताकर युद्ध समाप्त करना चाहता है। विजय की आशा न देखकर राजपूत केसरिया बाना पहन कर युद्ध करने निकलते है, स्त्रियो को कहा जाता है कि यदि हार जाये तो वे जौहर कर ले, किन्तु राजपूत-सेना जीत जाती है। हम्मीरदेव मुगलो के झडे उठाये हुए ही अन्दर जाते हैं। स्त्रियो को मुगलो के जीतने का भ्रम होता है और वे जौहर कर लेती है। हम्मीर को बडा क्लेश होता है, वे छोटे कुमार को गद्दी पर बिठा कर स्वय भी इस महायज्ञ मे अपने प्राणो की आहुति दे देते हैं।

प्रेमीजी ने इस नाटक मे कल्पना का प्रचुर प्रयोग किया है। नाटक की कथावस्तु, घटना-क्रम और भावनाएँ लेखक की कल्पना और अनुभूति के ताने-बाने से बनी हैं। फिर भी पात्रो के चरित्र की ऐतिहासिक महत्ता को कम नही होने दिया है। हम्मीर के चरित्र को उज्ज्वल इतिहास का चरित्र ही रखा है। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री विश्वेश्वरप्रसाद, डा० ईश्वरीप्रसाद और कर्नल टाड आदि ने तथा चन्द्रशेखर, ग्वाल और जोधराज जैसे कवियो ने हम्मीरदेव को वीर, साहसी और बुद्धिमान् ही लिखा है। आहुति का हम्मीर भी इसी प्रकार का है।

अलाउद्दीन की सेना का रणथभौर का दस मास तक घेरा डाले रखना, अन्त मे हम्मीरसिंह का किले से बाहर निकलकर युद्ध करना, सुरजनसिह का राणा को धोखा देना, चपला-द्वारा उसकी मृत्यु और अलाउद्दीन का कुत्तो के द्वारा उसकी लाश को फिकवाना आदि ऐतिहासिक घटनाएँ है।

मीर महिमा की रक्षा के लिए युद्ध लडा गया—यह घटना भी सत्य है। अन्तर केवल इतना ही है कि इतिहास मे मीर मुहम्मदशाह नाम आता है जबकि प्रेमजी ने मीर महिमा लिखा है। मीर मगरू और जमालखाँ भी ऐतिहासिक पात्र है, जबकि डा० ईश्वरीप्रसाद इनके नाम उल्हाखाँ और नशरतखाँ बताते है। नाटक के अनुसार अलाउद्दीन की सेना ने छाछागढ पर विजय पाई, जबकि इतिहास मे झायन नामक स्थान बताया है। प्रेमीजी ने जो नाम दिए है वह 'हम्मीररासो' काव्य के आधार पर है।

'स्वप्न-भग' मे दारा के अन्तिम दिनो मे औरगजेब के साथ हुए सघर्ष की कहानी है। दारा हिन्दू-मुस्लिम-एकता का समर्थक था। अपने विचारो और कार्यो-

द्वारा उसने इसी को सुदृढ रूप देने का प्रयत्न किया, किन्तु अपनी छोटी बहन रोशनआरा के षड्यन्त्र से उसका स्वप्न पूरा न हुआ।

शिवा-साधना की भाँति ही लेखक ने इतिहास के सत्य की इस नाटक मे भी रक्षा की है। इतिहास के अनुसार शाहजहाँ के चार पुत्र थे—दारा, शुजा, औरगजेब और मुराद। दो पुत्रियाँ थी—बडी लडकी जहानारा दारा से विशेष स्नेह करती थी, छोटी रोशनआरा औरगजेब को विशेष प्रिय थी। यही दरबार की सब घटनाएँ औरगजेब को बताया करती थी। थोडे-बहुत फेर-फार और कल्पना के सहारे यही कुछ प्रेमीजी ने भी इस नाटक मे व्यक्त किया है। रोशनआरा के चरित्र को रगीन बनाने के लिए कल्पना का अधिक आश्रय लिया गया है।

दारा का चरित्र तो इतिहास के बहुत ही अनुकूल है। दारा धर्म-प्रेमी था। हिन्दू-मुसलमान उसके लिए समान थे। वह सूफियो और वेदान्तियो से समान सम्बन्ध रखता था। कुरान और वेदो का एक-जैसा ही आदर करता था। ब्राह्मणो की सहायता से उसने उपनिषदो का फारसी भाषा मे भी अनुवाद किया था। पाश्चात्य इतिहासकारो के वर्णनो के अनुकूल ही दारा का चरित्र इस नाटक मे अकित है।

शाहजहाँ, औरगजेब, शुजा और मुराद के चरित्र भी इतिहास सम्मत हैं। युद्ध-वर्णन और उसकी मूल घटनाएँ भी इतिहास से मेल खाती हैं। शाहजहाँ की मृत्यु का गलत समाचार सुनकर औरगजेब और मुराद दक्षिण से और शुजा बगाल से युद्ध करने चले। इतिहास मे दारा की राजनैतिक भूल से ही शाहजहाँ की मृत्यु का भ्रम साधारण जनता को हुआ था, किन्तु नायक के चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए नाटककार ने शाहजहाँ की बीमारी का समाचार सुनकर ही युद्ध करना दिखाया है।

दारा और औरगजेब के प्रथम युद्ध मे नाटककार ने इतिहास की रक्षा करते हुए भी नाटक की रोचकता बनाये रखी है। दारा, महाराज जसवतसिंह तथा कासिमखाँ को मुराद और औरगजेब की सेना से युद्ध करने भेजता है। घमासान युद्ध होता है, राजपूत सेना हार जाती है और महाराज जसवतसिंह मारवाड भाग जाते है। वहाँ उनकी पत्नी हारे हुए पति को घर मे नही घुसने देती। जगदीशसिंह गहलौत के राजपूताने के इतिहास मे वर्णित ये घटनाएँ भी इसी प्रकार है।

राजपूतो की हार का कारण कल्पित है। शेरखाँ और रोशनआरा के षड्-यन्त्र को अपनी कल्पना से सजाकर कथानक को रोचकता दी है। इतिहासकार लेनपूल ने कासिमखाँ का और उसके साथ सेना का मैदान से हारकर भागना लिखा है। डा० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार दारा की हार का कारण उसके अफसरो का षड्यन्त्र भी था। इसी के अनुसार प्रेमीजी ने शेरखाँ और रोशनआरा के षड्यन्त्र की सृष्टि की है। जसवतसिंह के भाग जाने मे लेखक ने सरदारो की प्रेरणा लिखी है, इससे जसवतसिंह का चरित्र गिरने से बचा है।

दूसरा युद्ध ग्वालियर और आगरा के बीच सामूगढ मे हुआ। दारा को अपनी हार से क्लेश हुआ। शाहजहाँ भी आगरा की गर्मी बचाने के लिए दिल्ली चल चुका था, परन्तु युद्ध मे पराजय के कारण वह फिर आगरा ही आ गया। यहाँ तक की घटनाएँ तो इतिहास से मेल खाती है, लेकिन खलीतुल्लाह तथा रोशनआरा के षड्-यन्त्रो मे कल्पना का समावेश है। खलीतुल्लाह दारा का सेनापति था और इतिहास इस बात का साक्षी है कि धन-लोलुपता इसको विद्रोही बना सकती थी। इसी आधार को लेकर प्रेमीजी ने इतना विशद और रोचक चित्रण कर डाला है। दारा का युद्ध मे तत्परता से लडना और हाथी से उतरकर घोडे पर चढकर चलना तो इतिहास-सम्मत है, किन्तु खलीतुल्लाह का षड्यन्त्र कल्पित है। यह कल्पना नाटकीय कौतूहल लाने के लिए की गई है, किन्तु यह कल्पना भी सर्वथा निराधार नही है, क्योकि प्रथम श्रेणी के इतिहासकार मनूची और बर्नियर ने खलीतुल्लाह के छलपूर्ण व्यवहार का वर्णन किया है।

युद्ध मे हार जाने के बाद दारा ने शाहजहाँ को मुँह नही दिखाया, पर नाटक-कार ने युद्ध के पश्चात् शाहजहाँ के समक्ष दारा के द्वारा ही युद्ध का वर्णन करवा कर नाटक मे रोचकता का समावेश किया है। लेखक ने औरगजेब को स्वय क्षमा-प्रार्थी न दिखाकर जहाँनारा द्वारा उसे अपनी त्रुटियो का ज्ञान कराया है। औरगजेब स्वय मिलने आना चाहता था, पर रोशनआरा यह कहकर कि तुम मूर्ख हो, जहाँ-नारा ने तुम्हे गिरफ्तार करने का षड्यन्त्र किया है, उसको नही आने देती, जबकि ऐतिहासिक सचाई यह है कि शाहजहाँ का पत्र तथा मित्रो का आग्रह ही उसको वहाँ नही आने देता। यह नाटककार की अपनी कल्पना हे।

औरगजेब का किले मे पानी का प्रवेश रोकना और शाहजहाँ के पानी माँगने पर कुएँ का खारी पानी देना तथा शाहजहाँ का अपनी बेटी से व्यग्य-वचन कहना आदि 'शाहनामे' के अनुसार ही है। औरगजेब के ससुर शाहनवाजखाँ के द्वारा दारा को आश्रय दिलवाना, उसका अपने दामाद के विचारो से सहमत न होना आदि का इतिहास मे स्पष्ट उल्लेख है। यदुनाथ सरकार ने इस घटना की तारीख ९ जनवरी सन् १६५८ दी है। इस घटना को उभारकर दिखाने से नाटक मे सौदर्य की वृद्धि ही हुई है।

शिवाजी तथा मुस्लिम रियासतो का दारा को सहायता देने का वर्णन, जामनगर के महाराणा की पुत्री का दारा के पुत्र के विवाह के प्रस्ताव का वर्णन कल्पित है। जसवन्तसिह द्वारा सहायता न पाकर दारा अकेला ही युद्ध करता है, परन्तु हार जाता है, यह घटना सर वूलजले हेग के इतिहास से मेल खाती है, परन्तु नादिरा के साथ दारा का जगल मे भटकना तथा प्रकाश और वीणा द्वारा

आश्रय पाना कल्पित है। इतिहास के अनुसार दारा वहाँ से हारकर गुजरात की ओर गया, जहाँ गुजरात के नए शासक शाहनवाज़खा (औरगज़ेब के ससुर) ने उसका साथ दिया। दोराई के युद्ध मे शाहनवाज़खाँ दारा की ओर से युद्ध करता हुआ मारा गया था। दोराई के युद्ध मे हारकर दारा ने फिर गुजरात जाने का यत्न किया था तब उसे वहाँ घुसने की अनुमति नही मिली थी।

मलिक जीवन के यहाँ दारा का आश्रय लेना भी इतिहास-सम्मत है। बर्नर, जो उसकी रोग-ग्रस्त स्त्री नादिरा की सेवा के लिए उसके साथ था, इस बात का उल्लेख करता है कि दारा दर-दर की ठोकरे खाता हुआ दादर पहुँचा और बिलोची सरदार मलिक जीवन के यहाँ आश्रय लिया, जिसकी दारा ने राज-कोप से रक्षा की थी। उसकी स्त्री, पुत्री तथा पुत्र ने दारा के चरणो पर गिरकर इस पठान सरदार का आश्रय न लेने को कहा, परन्तु दारा नही माना। इसी मलिक जीवन ने दारा को औरगज़ेब के सरदारो के हवाले कर दिया था।

प्रेमीजी ने दारा की पत्नी नादिरा की मृत्यु मलिक जीवन के यहाँ कराई है जबकि उसकी मृत्यु दादर जाते समय रास्ते मे हुई थी। किन्तु नादिरा के मानसिक कष्ट का वर्णन इतिहास सम्मत ही है।

दारा के दु खद अन्त का वर्णन नाटक मे जिस प्रकार चित्रित है, उसी प्रकार बर्नर के इतिहास मे भी है। बर्नर ने अपनी आँखो से दारा की दयनीय दशा और जलूस देखा था।

दारा-द्वारा भिखारी को दान और दारा के कत्ल की आज्ञा भी इतिहास के समान है। अन्त मे एक बात और, सम्पूर्ण नाटक औरगज़ेब और दारा के युद्धो और राजनीतिक दाव-पेचो से भरा है। इस मन उबा देनेवाली एकरसता को भग करने के लिए प्रेमीजी ने प्रकाश, वीणा और सलीमा आदि पात्रो की सृष्टि की है। ये पात्र ही रोचकता बनाए रखते है।

'शतरज के खिलाडी' नाटक 'मित्र' नाटक का नवीन रूप है। इसमे जैसलमेर के महारावल तथा अलाउद्दीन के युद्ध का वर्णन है। युद्ध का कारण था, जैसलमेर के लोगो-द्वारा अलाउद्दीन के खजाने की लूट। इस युद्ध मे अलाउद्दीन की सेना नष्ट हो जाती है, किन्तु किसी देश-द्रोही ने छल से राजपूतो की युद्ध और खाद्य-सामग्री मे आग लगा दी। राजपूत केसरिया बाना धारण कर युद्ध करते हैं और स्त्रियाँ जौहर करती है। अलाउद्दीन के सेनापति महबूब को रत्नसिंह अपना पुत्र सौपकर मित्रता का प्रमाण देते है। रत्नसिंह और महबूब गले मिलते है। मित्रता और कर्त्तव्य की जय होती है।

इस नाटक की घटनाएँ राजपूताने की ख्यातो, टाड-राजस्थान, जगदीशसिंह

गहलोत के इतिहास और पडित विश्वेश्वरनाथ रेउ के इतिहासो से मेल खाती है। प्रेमीजी ने जैसलमेर के महारावल का नाम जीतसिंह लिखा है, इतिहास मे जैतसिंह मिलता है, परन्तु पुत्रो के नाम इतिहास के अनुसार मूलराज और रतनसिह ही है। जीतसिंह और जैतसिंह मे विशेष अन्तर भी नही है। इतिहास के अनुसार ही नाटक मे भी युद्ध का कारण जीतसिह के छोटे पुत्र रत्नसिह द्वारा अलाउद्दीन का खजाना लूटा जाना है। ख्यातो के अनुसार खजाना मूलराज ने लूटा था।

इस नाटक मे अलाउद्दीन के सेनापति और रत्नसिंह की मित्रता आरम्भ से ही लिखी है। इतिहास मे ऐसा नही है। ख्यातो मे मूलराज और कमालुद्दीन की मित्रता की चर्चा है। गहलोत और ख्यात के अनुसार अलाउद्दीन के सेनापति का नाम कमालुद्दीन था, किन्तु टाड के अनुसार उसका नाम महबूब था। प्रेमीजी ने टाड का ही आधार लिया है। रत्नसिह के पुत्र का नाम नाटक मे गिरिसिह बताया गया है, जब कि कुछ इतिहासकारो ने पुत्रो का नाम धडसी और कान्हड लिखा है। टाड ने रत्नसिंह के पुत्रो का नाम गरसी (Garsı) और कनूर (Kanur) लिखा है। प्रेमीजी ने गरसी को गिरिसिंह कर दिया है। मूलराज की पुत्री 'प्रभा' के नाम के सम्बन्ध मे भी इतिहास मौन है। अलबत्ता मूलराज की सन्तान का पता ज़रूर चलता है, ऐसी स्थिति मे यह पात्र कल्पित तो नही है।

युद्ध के लिए आये हुए दिल्ली के सेनापति महबूब और रत्नसिंह का आरम्भ मे गले मिलना और ताडवी का भैयादूज का टीका करना इतिहास से साम्य नही रखता, किन्तु लेखक की उद्देश्य-सिद्धि ने इसे सम्भावित घटना बना दिया है। महारावल जीतसिंह द्वारा किले मे पत्थरो के टुकडे इकट्ठे करना और शत्रुओ पर वर्षा करना श्री गहलोत के इतिहास के अनुसार है। उन्होने लिखा है —"रावल ने अपने किले मे अन्न सचय कर लिया था और परकोटो पर बडे-बडे पत्थर भी इकट्ठे किये थे, जिनसे आक्रमणकारियो का सहार किया जा सके।" युद्ध का आरम्भ होने पर किसी विश्वासघाती राजपूत द्वारा जीतसिंह को तीर से मारना राजपूत-चरित्र की ऐतिहासिक सच्चाई है, इतिहास-ग्रन्थो मे इस घटना का उल्लेख भले ही न किया हो। इस घटना से नाटक मे रोचकता भी आई है।

महबूबखाँ के भाई रहमानखाँ का प्रभा तथा गिरिसिंह द्वारा बन्दी होना और मूलराज की पत्नी किरणमयी द्वारा कैद, सुरजनसिह द्वारा विश्वासघात और रहमान को कैद से छुडाने का षड्यन्त्र, महारावल द्वारा सुरजनसिह को बन्दी करना इत्यादि बाते ऐतिहासिक भाव-धारा की सचाई तो है, किन्तु इतिहास-ग्रन्थो मे इनके प्रमाण नही मिलते।

मूलराज का राज्याभिषेक भी इतिहास-सम्मत है। हाँ, इसमे समय की दूरी का हेर-फेर अवश्य किया गया है। रहमान और सुरजनसिह का बन्दीगृह से भागना,

प्रभा का तीर से एक को मार गिराना, महबूब की पुत्री अख्तरी और रत्नसिंह के पुत्र गिरिसिंह का प्रेम भी कल्पना मात्र है। घमासान लडाई के बावजूद जब गढ नही जीता जा सका तो अलाउद्दीन उस वीर जाति से मित्रता करने का विचार करता है, परन्तु महबूबखाँ का भाई रहमान अलाउद्दीन से यह कहकर कि जैसलमेर तो बुझता हुआ चिराग है, आप उसकी अन्तिम लौ को देखकर विस्मित न हो, उसका जीवन समाप्त हो चुका है। इस दीप का तैल व्यतीत हो गया है। फिर उत्साह देता है और युद्ध के लिए उद्यत करता है। नाटक की यह घटना भी थोडे हेर-फेर के साथ ऐतिहासिक ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि इतिहास के अनुसार अलाउद्दीन तो चित्तौड की तरफ गया था। जैसलमेर के युद्ध पर महबूबखाँ और अलीखाँ को भेजा गया था। श्री जगदीशसिह गहलोत के अनुसार किले के अन्दर की दशा रहमान ने नही, जाति-द्रोही भीमदेव भाटी ने बताई थी। कोई आश्चर्य नही कि इसी देश द्रोही ने युद्ध-सामग्री और खाद्य-पदार्थो मे आग लगाई हो। जान पडता है कि प्रेमीजी ने सभावना और इतिहास का मेल करने के विचार से ही घटना-चक्र बदल दिया है।

नाटक के अन्त की घटनाएँ भी ऐतिहासिक है। कल्पना केवल वही है, जहाँ मित्रता के सिद्धान्त का और राजनैतिक चालो का प्रतिपादन किया है।

नाटक के काल्पनिक पात्र ताण्डवी और महाकाल अपने गीतो और सम्वादो से युद्ध को सजीवता देते है। प्रभा और गिरिसिह का भाई-बहिन का मधुर स्नेह दर्शको को प्रभावित करता है। अख्तरी और गिरिसिह का प्रणय युद्ध के भयानक वातावरण मे लीन पाठको के मस्तिष्क की एकरसता भग करता है। लेखक इस घटना द्वारा दिखाना चाहता है कि यदि मानव मे एक ओर युद्ध मे भयकर ताण्डव करने की कठोर भावनाएँ व्याप्त है तो उसीमे किसीसे प्रेम करने की कोमल भावनाएँ भी है। कल्पना का यह सामजस्य ऐतिहासिक घटनाओ की नीरसता को दूर कर रचना को सरस बनाता है।

।१५ 'विषपान' की भूमिका मे प्रेमीजी लिखते है —'मेवाड की राजकुमारी कृष्णा का विषपान बलिदान राजस्थान के इतिहास की अत्यन्त करुणाजनक घटना है। वह समय था जब राजपूत राजवश वशाभिमान के उन्माद मे देश के राजनीतिक भविष्य को भूल गये थे। छोटी-छोटी बातो पर ये लोग लाखो-करोडो रुपये और हजारो मस्तक लुटा देते थे। यही धन-जन देश को शक्तिमान् बनाने मे व्यय होता तो जमाने का नकशा ही बदल जाता। राजपूतो की जिस नासमझ उन्मत्तता ने कृष्णा को विषपान करने के लिए बाध्य किया वही अनेक रूपो मे देश के पतन का भी कारण हुई। इसने अपने हाथो से अपने देश की स्वाधीनता को जहर पिला दिया।' स्पष्ट है कि नाटक की कथा का आधार विषपान की घटना है। कथानक मे महाराज मानसिंह और महाराज जगतसिंह का भीमसिंह की पुत्री कृष्णा के लिए पारस्परिक मनमुटाव

ऐतिहासिक घटना है। जोधपुर के महाराज मानसिंह और जयपुर के महाराज जगतसिंह का आपस का सम्बन्ध कृष्णाकुमारी के टीकेवाली घटना से ही बिगड गया था और अन्त मे इसी मनमुटाव के कारण अनेक युद्ध हुए। खोज से तथा प० विश्वेश्वरनाथ रेउ, डा० ईश्वरीप्रसाद, श्री जगदीशसिह गहलोत और कर्नल टाड के इतिहासो से इसकी पुष्टि होती है। राजकुमारी कृष्णा के विवाह का आर्थिक-सकट भी इतिहास-सम्मत है।

विषपान की मूल घटनाएँ इतिहास से ली गई है। टाड व राजस्थान मे लिखा है—मेवाड की ऐसी दुदशा थी ही, उधर महाराणा को घरेलू मामलो से भी दु ख हुआ। उनकी पुत्री कृष्णाकुमारी के विवाह के लिए जोधपुर और जयपुर के नरेशो मे झगडा चला। अन्त मे इस झगडे को निपटाने के लिए अमीरखाँ के आग्रह से महाराणा ने कृष्णाकुमारी को ज़हर देकर मरवा डाला। ऐतिहासिक घटना को नाटकीय रोचकता और कौतूहल प्रदान करने के लिए लेखक ने जवानदास का छलपूर्वक महाराणा से कृष्णाकुमारी की हत्या के लिए लिखवाना तथा अमीरखाँ द्वारा महाराणा को महल मे बन्दी करके पहरा देना आदि की सृष्टि की है।

कृष्णाकुमारी के विवाह का टीका पहले जोधपुर के राणा के पास जाना, उस समय महाराजा मानसिह के द्वारा भीमसिह पर आक्रमण और विजय प्राप्त करना, भीमसिह की मृत्यु के पश्चात् कृष्णाकुमारी का टीका जयपुर के महाराजा जगतसिह के पास जाना, मानसिह द्वारा उसका विरोध और अमीरखाँ से षड्यन्त्र ऐतिहासिक घटनाएँ है। कलुआ, राधा, रमा आदि पात्र कल्पित है। चरित्र-चित्रण, सरसता, मनोरजन और देश-दशा का चित्रण करने के लिए इनकी सृष्टि की गई है।

'उद्धार' भी ऐतिहासिक नाटक है। मनुष्य की लम्पटता और स्वार्थ-परता ने चित्तौड-दुर्ग का विध्वस किया, अपनी आन-रक्षा के लिए राजपूत वीरो ने केसरिया बाना पहनकर रण भूमि मे प्राण दिए और वीरागना पद्मिनी ने अन्य वीरागनाओ सहित जौहर की ज्वाला मे प्रवेश किया। इस अमर साके मे सिसौदिया राजवश के सभी प्राणी काम आ गए—शेष रहे महाराणा लाखा के द्वितीय पुत्र अजयसिह जिन्हे मेवाड का पुन उद्धार करने के लिए जीवित रहने दिया गया था और युवराज अरिसिह का नवजात शिशु 'हमीर' जो एक झोपडी मे अपनी माँ की गोद मे पल रहा था। यही हमीर 'उद्धार' का नायक है। किस प्रकार हमीर ने जन-नायक बनकर मेवाड को स्वाधीन बनाया, यही इस नाटक का विषय है।

हमीर सिसौदिया सामन्त अरिसिह के पुत्र थे। श्री गहलोत ने अपने ग्रन्थ मे लिखा है—'अरिसिह चित्तौड की लडाई मे काम आये और उनके छोटे भाई अजयसिह घायल हुए। जब अजयसिह को पता लगा कि अरिसिंह का पुत्र हमीर अपनी ननिहाल में विद्यमान है तो उन्होने उसे अपने पास बुलवा लिया और उसकी शूरवीरता देखकर

अपना उत्तराधिकारी बनाया। नाटक का आरम्भ इसी ऐतिहासिक आधार पर है। आगे की कथा मे थोडा परिवर्तन है। लेखक ने किशोरावस्था मे हमीर का एक गाँव मे रहना इसलिए दिखाया है कि वह एक सफल जन-नायक बन सके। हमीर की बीसवी वर्षगाँठ पर उसके चाचा अजयसिह उन्हे युवराज-पद उपहारस्वरूप प्रदान करते है। यह परिवर्तन भी लेखक ने अपनी कल्पना के अनुसार किया है।

हमीर का वीर और साहसी चरित्र इतिहास के अनुसार ही है। मेवाड का महाराव मालदेव भी ऐतिहासिक पात्र है। गहलोत के अनुसार मालदेव को सुल्तान या मन्त्रियो ने चित्तौड दिया। डा० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार भी सुल्तान ने मालदेव को चित्तौड का महाराव बनाया। प्रेमीजी ने टाड का अधिक आधार लिया है। कमला को उन्होने टाड के अनुसार ही विधवा दिखाया है। गहलोत आदि इससे सहमत नही है। कमला का अपने पिता मालदेव के यहाँ जाने के सम्बन्ध मे गहलोत ने लिखा है—'जब इस सम्बन्ध से हमीर सिसौदिया के पुत्र हुआ तब मालदेव की पुत्री ने कुल-देवता की मानता के बहाने चित्तौड मे प्रवेश किया और वहाँ किले के द्वारपालो को अपनी ओर मिला लिया। हमीर भी सूचना मिलने पर सेना के साथ चित्तौडगढ पहुँच गया और उसने सहज ही किले पर अधिकार कर लिया।' डा० ईश्वरीप्रसाद ने भी चित्तौड को जीतने मे हमीर का ही षड्यत्र बताया है। इस समय हमीर को बन्दी बनाने के लिए मालदेव ने कोई षड्यत्र नही किया था। कमला और हमीर को निर्दोष बताकर लेखक ने उनके चरित्रो को ऊँचा उठाया है। पुत्री का अपने पिता से विद्रोह, चाहे वह बागी ही क्यो न हो, स्वाभाविक नही जान पडता। इसलिए नाटककार ने इस घटना को रँगने मे अपनी कल्पना का आधार लिया है और मालदेव की ही दुष्टता और षड्यत्र दिखाया है जिसके लिए उन्हे 'टाड' के वर्णन से सहायता मिली है।

लेखक ने कमला का अपने पुत्र के साथ चित्तौड जाने का उद्देश्य यह बताया है कि हो सकता था कि अपने पौत्र का मुख देखकर मालदेव मुसलमानो का साथ छोड दे और हमीर का साथ दे, लेकिन इतिहास मे उसका उल्लेख नही है। कमला तो अपने पिता मालदेव के विरुद्ध षड्यत्र करने वहाँ गई थी। मालदेव की पुत्री ने कुल-देवता की मानता के बहाने चित्तौड मे प्रवेश किया था। दलपति, दुर्गा आदि पात्रो की कल्पना राष्ट्रीय भावना के लिए की गई है। जाल और सुधीरा भी कुछ लोगो को कल्पित पात्र जान पडेगे लेकिन जाल का उल्लेख टाड ने किया है। सुधीरा हमीर की माँ का नाम कल्पित ही है—प्रेमीजी को ऐसा इसलिए करना पडा कि इतिहास हमीर की माँ के नाम के सम्बन्ध मे मौन है, यद्यपि हमीर की माँ जब कुमारी थी उस समय अरिसिह के उस पर मोहित होने की कथा इतिहास मे मिलती है।

'शपथ'—ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नाटक है। इसकी ऐतिहासिक

प्रामाणिकता के लिए लेखक का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—'दशपुर (मध्यभारत-स्थित वर्तमान मदसोर) मे आज भी एक प्रस्तर-स्तभ पडा हुआ है, जिस पर लिखा हुआ है—उसने उन प्रदेशो को भी जीता, जिन पर गुप्त सम्राटो का आधिपत्य नही था और न ही जहाँ राजाओ के मुकुटो को ध्वस्त करनेवाली हूणो की आज्ञा ही प्रवेश कर पाई थी। लौहित्य से लेकर महेन्द्र पर्वत तक और गगा से—स्पष्ट हिमालय से—लेकर पश्चिम पयोधि तक के प्रदेशो के सामत उसके चरणो पर लोटते थे। मिहिरकुल ने भी जिसने भगवान् शिव के अतिरिक्त और किसी के सामने सिर नही नवाया, अपने मुकुट के पुष्पो द्वारा युगल चरणो की अर्चना की।

यह प्रशस्ति वत्स भट्ट नामक कवि ने 'शपथ' के नायक यशोधर्मन के सम्बन्ध मे लिखी है। यशोधर्मन का मूल नाम विष्णुवर्धन था। उसके कही के वशानुगत राजा होने का इतिहास मे कोई प्रमाण नही है। वह साधारण व्यक्ति था, किन्तु उसने जनमत को उत्तेजिल कर एक सफल सशस्त्र राजनीतिक क्रान्ति की। यही इस नाटक का प्रधान विषय है।

हूणो के समय आतककारिणी, दुर्धर्ष शक्ति ससार के इतिहास मे दूसरी नही हुई। इन्होने सारे यूरोप को रौद डाला था और जब अपना मुख भारत की ओर फेरा तो इन्हे शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य से टक्कर लेनी पडी। महान् पराक्रमी सम्राट् स्कन्दगुप्त जीवनभर हूणो के टिड्डी दल को भारत मे न घुसने देने का प्रयास करता रहा, इसी प्रयास मे उसने वीर-गति पाई। स्कन्दगुप्त के पश्चात् कोई प्रबल व्यक्ति न हुआ जो हूण-शक्ति के तूफान के सामने खडा होता। हूणो ने, जो भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमात प्रदेश से ही टकरा-टकराकर रह जाते थे, अग्रसर होकर मालवा प्रदेश तक अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। गुप्त साम्राज्य अतिम श्वास ले रहा था। भारत के अन्य राजा अपने-अपने प्रदेशो मे मुँह छिपाये बैठे थे, उन्हे यह नही सूझता था कि अपने शत्रु को सगठित होकर पराजित कर भारत से निकाला जाय—तब जनता मे से एक वीर प्राण खडा होकर विश्व-विजयी हूणो की शक्ति को धूल मे मिलाकर देश को स्वतत्र करता है।

नाटक मे भारतीय इतिहास के आधार पर भारतीयो के उन गुणो और सस्कारो का उल्लेख है, जिनके कारण भारत तेजस्वी वीर और बलवान् बना तो उन निबलताओ और त्रुटियो का भी—जिनके कारण भारत को अनेक बार विदेशी शक्तियो से पराजित होना पडा। इस प्रकार पात्रो के चरित्र, गुण और सस्कारो की सरक्षा करता हुआ यह नाटक भी ऐतिहासिक तथ्यो से पूर्ण है।

'भग्न प्राचीर' मे लेखक ने मेवाड के इतिहास-प्रसिद्ध महाराणा सग्राम-सिंह के यशस्वी जीवन के उस अन्तिम परिच्छेद को चित्रित किया है, जिसमे वे

राजपूत शक्तियो का सगठन कर बाबर से सघर्ष करते है । सीकरी के युद्ध मे वे हार जाते है, फिर भी युद्ध के लिए तैयार रहते हैं। अन्त मे युद्ध से ऊबे हुए उनके ही सामन्त विष देकर उनका प्राणान्त कर देते है।

नाटक मे इतिहास को पूरा सरक्षण मिला है। सभी प्रमुख घटनाएँ इतिहास-सम्मत हैं। भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा पर बाबर का आक्रमण, दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी के विरुद्ध लाहौर के सूबेदार दौलतखाँ लोदी तथा इब्राहीम लोदी के चाचा अलाउद्दीन लोदी का बाबर का सहायक होना, बाबर के हाथो इब्राहीम लोदी का हारना, राजपूत राजाओ और पश्चिमी अफगानो के सरदार हसनखाँ मेवाती तथा पूर्वी अफगानो के सरदार बहारखाँ लोहानी, जिसने अपने-आपको सुलतान मुहम्मदखाँ के नाम से प्रसिद्ध कर लिया था, का इब्राहीम लोदी का साथ न देना, एक मास तक बाबर द्वारा महाराणा साँगा को सन्धि-चर्चा मे उलझाये रखना और इस बीच अपनी शक्ति को सुदृढ बनाना, खानवा के युद्ध से पूर्व एक छोटी-सी सैनिक मुठभेड मे बाबर की मुसलमान सेना का हारना और इससे बाबर की सेना मे भारी त्रास और आतक फैलना, उनका राजपूत सेना से युद्ध करने के लिए मना करना, बाबर की नैतिकता का चित्रण, राणा साँगा-सम्बन्धी घटना, शीलादित्य का युद्ध मे विश्वासघात करना, विष द्वारा सग्रामसिंह का प्राणान्त होना आदि सभी घटनाएँ इतिहास से मेल खाती हैं।

ऐतिहासिक तथा और घटनाएँ ही नही, नाटक के पात्र भी पूर्णतया ऐतिहासिक है। महाराणा सग्रामसिंह, बाबर, भोजराज, कर्मवती, मीरा, उज्ज्वलसिंह, मेदिनीराय, शीलादित्य आदि नामो से देश का मध्यकालीन इतिहास भलीभाँति परिचित है। पात्रो के चरित्र, व्यक्तित्त्व और क्रिया-कलाप से ऐतिहासिक मर्यादा की रक्षा हुई है।

कल्पना का भी समुचित आश्रय लिया गया है। ऐतिहासिक सचाई के अनुसार महाराणा संग्रामसिंह ने बाबर को दिल्ली के पठान बादशाह पर आक्रमण करने के लिए निमत्रित किया, लेकिन प्रेमीजी ने इस तथ्य को छिपाया है। इससे वे सग्रामसिंह के आदर्श चरित्र को प्रस्तुत कर सके है। मुहम्मदखाँ लोदी का चरित्र राष्ट्र-प्रेम और हिन्दू-मुस्लिम एकता की दृष्टि से कल्पना पर आश्रित है। शीलादित्य के हाथो उज्ज्वलसिंह झाला का प्राणान्त भी कल्पित है। राजपूत सरदारो के परस्परिक वैमनस्य और उसके दुष्परिणाम को प्रकट करने के लिए ही लेखक ने यह कल्पना की है। इस कल्पना के लिए उनके पास पर्याप्त आधार भी है, क्योकि इतिहास कहता है कि उज्ज्वलसिंह झाला बाबर और सग्रामसिह मे हुए इस युद्ध मे मारे गये थे और शीलादित्य ने इस समय विश्वासघात किया था।

'प्रकाश-स्तम्भ' बाप्पा रावल के प्रारमिक जीवन पर आधारित

ऐतिहासिक नाटक है बाप्पा रावल के जीवन के साथ अनेक दैवी और चमत्कारिक घटनाएँ जुडी हैं, जिनको इस बुद्धिवादी युग मे कोई मानने को तैयार नही होगा। लेखक ने उन घटनाओ को नाटक मे नही आने दिया है। नाटक का आधार टाड का राजस्थान है। प्रेमीजी ने लिखा है—'बाप्पा के जीवन की नागदा के सोलकी राजा की पुत्री से विवाह का खेल खेलने की घटना वर्षों पहले मैने टाड राजस्थान मे पढी थी। मुझे घटना नाटकीय लगी और उसी घटना से मैंने नाटक का प्रारम्भ कर डाला।'

श्री जयचन्द्र विद्यालकार और श्री भगवतशरण उपाध्याय के इतिहास-ग्रन्थो से भी लेखक ने सहायता ली है। 'हमारा राजस्थान' नामक ग्रन्थ मे लिखा है—'चित्तौड पर हुए एक अरब आक्रमण मे इसी मान मोरी ने राज्य की रक्षा करने मे कमजोरी दिखाई, जिस पर उसके सरदार नागदा के गुहिल-पुत्र बाप्पा (कालभोज) ने ७२८ ई० के करीब चित्तौड का दुर्ग उससे छीन लिया था।' इसी घटना के सहारे नाटक का कथानक आगे बढा है। इसी ग्रन्थ से यह भी सिद्ध होता है कि बाप्पा रावल स्वय राजा नही था, लेकिन अरबो की बाढ को रोकने के लिए उसे दुर्बल राजा से राज्य छीनना पड़ा। नाटक मे इसी घटना का आधार लेकर बाप्पा सम्बन्धी घटनाएँ अकित है। बाप्पा के विवाह की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे लेखक ने कहा है—'बाप्पा का विवाह आक्रमणकारी अरबो के एक सेनापति की कन्या से हुआ, यह घटना भी मेरे मस्तिष्क की कल्पना नही है। टाड ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।'

नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के लिए लेखक का कथन है—'नाटक के चरित्रो के कथोपकथन मे अनेक ऐतिहासिक घटनाओ और तथ्यो का उल्लेख मैने किया है, जिन्हे श्री जयचन्द विद्यालकार एव श्री भगवतशरण उपाध्याय की इतिहास पर लिखी पुस्तको से मैंने प्राप्त किया है।' इस प्रकार नाटक का वातावरण इतिहास की छाया मे ही प्रस्तुत किया गया है।

'**कीर्ति-स्तम्भ**' का आधार मेवाड के इतिहास मे महाराणा रायमल के पुत्रों मे मुकुट-मोह के कारण हुआ गृह-कलह है। मेवाड के इतिहास मे महाराणा कुभा के काल मे मेवाड राज्य की कीर्ति और शक्ति उत्कर्ष की चरमसीमा पर पहुँच गई थी। कुभा ने अनेक बार मालवा के सुलतान और गुजरात के बादशाह को पराजित किया एवम् दिल्ली की लोदी सल्तनत का भी गव चूर्ण किया। कुभा केवल तलवार के ही धनी नही थे, अपितु उन्होने अपने राज्यकाल मे साहित्य एवम् ललितकलाओ की अति वृद्धि भी की। ऐसे गुणी, वीर पुरष, सुशासक, कला-प्रेमी का प्राणान्त मुकुट के मोह मे विवेक और मनुष्यता को खो देनेवाले अपने ज्येष्ठ पुत्र ऊदाजी (उदयसिंह) द्वारा हुआ। इस घटना के बाद मेवाड के राजघराने मे कलह का ताडव प्रारम्भ हुआ, जिसने मेवाड राजबश के उज्ज्वल यश को धब्बा तो लगाया

ही, साथ ही मेवाड राज्य का विस्तार कम कर दिया, उसके हाथ से राजपूतो का नेतृत्व भी छिनवा दिया। महाराणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र सग्रामसिह (राणा सागा) की दूरदर्शिता, त्याग, वीरता एवम् साहस ने इस अन्त कलह की ज्वाला को शान्त कर दिया और मेवाड के गत गौरव को पुन प्राप्त ही नही किया बल्कि उसे भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य बना दिया।

महाराणा कु भा के ज्येष्ठ पुत्र ऊदाजी ने पिता की हत्या कर मेवाड का राजमुकुट अपने मस्तक पर धारण किया था। तब हत्यारे के अनुज रायमल सामन्तो एव प्रजा के सहयोग से अपने अग्रज को परास्त कर मेवाड के महाराणा बने। ऊदाजी शात होनेवाले जीव न थे, वह दिल्ली के लोदी बादशाह की शरण मे गये और अपनी पुत्री का विवाह उससे करने का वचन देकर, सहायता प्राप्त की। ऊदाजी की पुत्री ज्वाला एवम् पुत्र सूरजमल को अपने पिता का यह कार्य पसन्द नही आया और उन्होंने पिता के विरुद्ध रायमल का साथ दिया। दिल्ली की सेना पराजित हुई और ऊदाजी के जीवन का भी अन्त हो गया। मेवाड के राजकुल का सम्मान रखने के लिए पिता से भी विद्रोह करनेवाले सूरजमल के हृदय मे भी मेवाड के राजमुकुट का मोह जागा और महाराणा रायमल के तीनो पुत्रो—सग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल मे भी युवराज-पद पाने के लिए प्रतिस्पर्धा आरम्भ हुई। इस अन्त कलह ने भीषण रूप धारण किया।' इसी अन्त कलह का चित्रण नाटक मे हुआ है।

नाटक की सभी घटनाएँ और प्रमुख पात्र पूर्णतया ऐतिहासिक है। टाड के राजस्थान से इस नाटक की घटनाएँ मेल खाती है। किन्तु प्रेमीजी ने अपनी कल्पना की कूची से इतिहास को और भी उभार कर रखने की चेष्टा की है। सूरजमल को टाड ने सग्रामसिंह का चाचा (काकाजी) लिखा है, एक स्थान पर ऊदाजी का पुत्र भी लिखा है। प्रेमीजी ने नाटकीय सुविधा के लिए उसे ऊदा का पुत्र मान लिया है।

यमुना, तारा, राव सूरतान, लाल पठान, राजयोगी, सेठ कर्मचन्द प्रेमीजी की अपनी सृष्टि जान पडते है, लेकिन यमुना को छोडकर शेष सभी पात्रो का उल्लेख इतिहास मे कही-न-कही मिलता है, यह विविध इतिहासो को गभीरता से पढने पर पर ही ज्ञात हो सकता है। यमुना और ज्वाला से सम्बन्धित नदी-तट पर हुई घटना कल्पित होते हुए भी ज्वाला के सम्बन्ध से सभावित अवश्य है। यमुना का सिरोही नरेश के दरबार मे जाना तथा सिरोही नरेश के द्वारा अन्त मे आत्म-हत्या करना भी कल्पित घटनाएँ है। लेकिन लेखक ने सभी घटनाओ और पात्रो का ऐतिहासिक घटनाओ और पात्रो से ऐसा सम्पर्क स्थापित किया है कि कल्पना-सी नही जान पड़ती।

वीरता, साहस, निर्भयता, त्याग और देश-प्रेम की उदात्त भावनाओ के साथ राजपूतो की अदूरदर्शिता, पारस्परिक वैमनस्य, मुकुट के प्रति मोह की नैतिकताहीन बुराइयो का चित्रण ऐतिहासिक आधार पर ही किया गया है। इन भावनाओ के अकन ने नाटक की कथावस्तु को और भी अधिक प्रामाणिकता प्रदान की है।

राजपूतो का इतिहास शक्ति और दुर्बलता का दर्पण है। 'कीर्तिस्तभ' मे इस दर्पण को ज्यो-का-त्यो रख दिया गया है। तत्कालीन व्यक्तिगत, राजनैतिक और सामाजिक दुर्बलताओ के यथार्थ चित्रण मे यह नाटक ऐतिहासिकता की रक्षा करता है।

'सरक्षक' भारत के अग्रेज़ी काल के इतिहास का एक पृष्ठ है। इसमे उस समय की झाँकी अकित की गई है, जब अग्रेज़ भारत मे अपने राज्य का विस्तार कर रहे थे। नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि के लिए प्रारम्भिक निवेदन मे प्रेमीजी ने कहा है —

'राजस्थान के हाडौती प्रदेश मे हाडा राजपूतो के आधीन कोटा राज्य आन्तरिक सघर्षों मे लीन था। ज़ालिमसिह नाम का झाला राजपूत महाराव उम्मीदसिंह का मामा था और उम्मीदसिंह के पिता इस ससार से विदा लेते समय उसे उम्मीदसिंह का सरक्षक बना गये थे। महाराव उम्मीदसिंह का भी ज़ालिमसिंह के जीवित रहते स्वर्गवास हो गया था, किन्तु उनके स्वर्गवास के समय युवराज किशोरसिंह प्रौढावस्था को प्राप्त हो चुके थे। ज़ालिमसिंह और उनका ज्येष्ठ पुत्र माधोसिह चाहते थे कि सरक्षक का पद वशानुगत झाला वश मे रहे और महाराव नाममात्र के राजा रहे, वास्तविक सत्ता ज़ालिमसिंह और उनके पश्चात् उनके पुत्र माधोसिंह के हाथ मे रहे।

किशोरसिंह जब महाराव हुए तो उन्होने पूर्ण सत्ता अपने हाथ मे लेनी चाही। ज़ालिमसिंह का दासी-पुत्र गोवर्धन जो माधोसिह से अधिक योग्य और महत्वाकाक्षी था, इस विषय मे महाराव का समर्थक था। महाराव के छोटे भाई राजकुमार पृथ्वी-सिंह भी हाडा-राजगद्दी पर झालाओ के आतक को समाप्त कर देने को लालायित थे। इस प्रकार कोटा राज्य मे गृह-सघर्ष चालू था।

उस समय अग्रेज़ो ने भारतीय राज्यो मे सरक्षक सेना रखने के लिए सधियाँ करने की नीति चालू कर रखी थी। ज़ालिमसिंह ने अग्रेज़ो को अपना मित्र बनाकर अपनी स्थिति को सुदृढ करना उचित समझा और महाराव उम्मीदसिंह को ऊँच-नीच समझा कर अग्रेज़ो से सन्धि करने के लिए तैयार किया। जिस सन्धि-पत्र पर महाराव ने २६ दिसम्बर १८१७ के दिन हस्ताक्षर किये उसमे अनेक शर्तें थीं। इस सन्धि-पत्र में ज़ालिमसिंह और माधोसिंह के लिए सरक्षक का पद प्राप्त होगा और उन्हें राज्य का शासन चलाने का अधिकार होगा, ऐसी कोई शर्त नही थी। बाद मे अग्रेज़ो ने चाहा कि इस सन्धि-पत्र मे यह शर्त भी रहे किन्तु इस शर्तवाले सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर

होने के पहले महाराव उम्मीदसिह का देहान्त हो गया। उनके उत्तराधिकारी महाराव किशोरसिंह ने इसे स्वीकार करने से इ कार किया तथा सन्धि-पत्र की दसवी धारा के अनुसार अपने राज्य मे पूर्ण प्रभुसत्ता प्राप्त करने की उन्होने माँग की। अग्रेज़ो ने ज़ालिमसिंह और माधोसिह का पक्ष लिया। किस प्रकार कोटा के हाडाओ ने इस सम्बन्ध मे अग्रेज़ो से वीरतापूर्वक सघर्ष किया, यह इस नाटक मे चित्रित है। स्पष्ट है कि नाटक पूर्णतया ऐतिहासिक है।

पात्रो और घटनाओ के सम्बन्ध मे कल्पना का आश्रय प्राय नही के ही बराबर लिया गया है।

'बदा' का कथानक देश मे राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के प्रयत्नो मे आशिक सफलता प्राप्त करनेवाले शाहज़ादा अकबर से सम्बन्धित है। यह एक ऐतिहासिक सचाई है कि सम्राट अकबर महान् ने इस बात को अनुभव किया था कि देश की सब जातियो और धर्मों मे सद्भावना स्थापित किए बिना देश मे कोई शासन सुस्थिर नही रह सकता, न यहाँ सुख शाति स्थापित हो सकती है। शासन मे देश के सभी लोगो को साझीदार बनाना आवश्यक है—कोई जाति या धर्म यहाँ प्रभु और शासक बनकर नही रह सकता। सम्राट् अकबर की नीति को आशातीत सफलता प्राप्त हुई—राजपूतो ने आदरणीय व्यवहार पाकर मुगल-शासन के विस्तार मे सहयोग दिया। देश मे शाति कायम होने से कलाओ और व्यापार-व्यवसाय की वृद्धि हुई। सम्राट् अकबर की इस नीति को औरगज़ेब ने उलट दिया। उसने राजसत्ता को इसलाम धर्म को फैलाने का साधन बनाया और हिन्दू धर्म पर खुले आघात किये—जिसकी पराकाष्ठा 'जज़िया' लगाना था। इस कर के विरुद्ध शिवाजी और मेवाड के महाराणा राजसिंह ने औरगज़ेब को ज़ोरदार पत्र लिखे—किन्तु उसने किसी की चेतावनी पर ध्यान नही दिया।

औरगज़ेब की नीति ने सारे देश मे बेचैनी की लहरे उठा दी थी। पजाब मे सिख, दक्षिण मे मराठे, राजस्थान मे राजपूत, ब्रज मे जाट और सतनामी, विन्ध्य प्रदेश मे बुन्देले, इस प्रकार सारे ही भारत मे औरगज़ेब के विरुद्ध भावनाएँ भडक उठी थी। औरगज़ेब के सगे-सम्बन्धी भी इस बात को अनुभव करने लगे थे कि उसकी आक्रामक नीति के कारण भले ही मुगल-साम्राज्य की सीमाओ का विस्तार हो रहा है, लेकिन वह भीतर से खोखला होता जा रहा है। किन्तु औरगज़ेब के व्यक्तिव का ऐसा आतक था कि कोई भी व्यक्ति उससे प्रभावशाली ढग से यह बात कह न पाता था। ऐसे समय मे औरगज़ेब की पुत्री ज़ेबुन्निसा और पुत्र मुहम्मद अकबर ने उसके विरुद्ध विद्रोह की आवाज़ उठाई। पहले उन्होने राजपूतो को अपने साथ मिलाया—फिर मराठो का भी सहयोग लेने का यत्न किया और यदि राजपूतो का और मराठो के पारस्परिक सहयोग और विश्वास का कोई मार्ग बन जाता तो निश्चय ही शाहज़ादा अकबर सफल हो जाता

और हिन्दू-मुसलमानो के बीच पडी हुई दरार सभवत पट जाती। प्रस्तुत नाटक शाहजादा अकबर के इस प्रयास का ही चित्रण है। डाक्टर ईश्वरीप्रसाद, एस० आर० शर्मा, श्री सरकार और मनूची आदि के इतिहास-ग्रन्थो से इस परिस्थिति पर प्रकाश पडता है।

'सवत् प्रवर्त्तन' शकारि विक्रमादित्य के सम्बन्ध मे लिखा गया ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक के लिखने मे लेखक को प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री जायसवाल, श्री जयचन्द्र विद्यालकार, श्री हरिहरनिवास द्विवेदी (मध्यभारत के इतिहास के लेखक) आदि के इतिहास-ग्रन्थो से भारी सहायता मिली है। विक्रम-स्मृति-ग्रन्थ और नासिक के लेखो से भी सहायता ली गई है। इस प्रकार नाटक को हर प्रकार से ऐतिहासिक बनाने का प्रयत्न किया गया है। जैन-साहित्य मे अधिकाशत इतिहास की सामग्री मिलती है। प्रेमीजी ने जैन-साहित्य को भी आधार माना है।

शकारि विक्रमादित्य के सम्बन्ध मे जैन साहित्य मे उपलब्ध आचार्य कालक की कथा उज्जयिनी के नरेश गर्दभिल्लदर्पण का उल्लेख करती है। गदभिल्लदर्पण ने आचार्य कालक की रूपवती युवती भगिनी को बलात् उठा लिया था। इसी कारण क्रोधित होकर कालक शको को गर्दभिल्लदर्पण से बदला लेने के लिए भारत पर चढा लाये थे। इस कथा के अनुसार गर्दभिल्लदर्पण के पुत्र विक्रमादित्य ने शको से मालव प्रदेश को मुक्त किया। नाटक की आधारभूत सामग्री यही है। श्री जायसवाल और विद्यालकार इस कथा मे मतभेद रखते है, इस पर अपने तर्क देते हुए प्रेमीजी ने नाटक के आत्म-निवेदन मे जो विचार प्रकट किए है, वे इस नाटक की ऐतिहासिकता पर गभीर प्रकाश डालते है। उन्होने लिखा है —'जायसवाल जी एव जयचन्द्रजी यह तो मानते है कि उज्जयिनी का नरेश गर्दभिल्लदर्पण था। यह भी मानते है कि आचार्य कालक शको को भारत मे लाए लेकिन यह नही मानते कि गर्दभिल्लदर्पण के पुत्र विक्रमादित्य ने मालव प्रदेश को शको से मुक्त किया। आचार्य कालक सम्बधी आधी कथा को मानना और आधी को न मानना मेरी सम्मति मे उचित नही है।'

आगे चलकर प्रेमीजी लिखते है—'इन इतिहासकारो-द्वारा गौतमी पुत्र सातकर्णि को शको से भारत को मुक्त करनेवाला मानने का एकमात्र कारण है—नासिक तिरण्डु पर्वत मे एक दीवार पर मिला हुआ गौतमी-पुत्र की माँ गौतमी के लेन-देन के सम्बन्ध मे एक लेख जिसमे उसने अपने पुत्र को शक, यवन, पल्हवो का निदूषक लिखा है। इसमे लेखक ने कही गौतमी-पुत्र सातकर्णि को 'विक्रमादित्य' नही लिखा। इस उल्लेख से हम इस निर्णय पर नही पहुँच सकते कि कालक कथा मे गर्दभिल्ल-दर्पण के पुत्र द्वारा शको से मालव प्रदेश को मुक्त करने का जो उल्लेख है, वह

मिथ्या है। गर्दभिल्लदर्पण के पुत्र विक्रमादित्य ने केवल मालव प्रदेश से शको का उच्छेदन किया। उस समय तक शक सौराष्ट्र, मालव और मथुरा तक अपने राज्य का विस्तार कर चुके थे। गर्दभिल्ल-पुत्र विक्रमादित्य ने मालव-प्रदेश से शको का उच्छेदन किया, किन्तु सौराष्ट्र मे तो वे बने ही रहे और इन्ही शको का सघष बाद मे गौतमी-पुत्र से हुआ, जिसमे गौतमी-पुत्र सातकर्णि विजयी हुए। इस तरह आचार्य कालक की कथा भी सही है और गौतमी का लेन-दान का लेख भी।'

नहपाण और उषवदात के ऐतिहासिक होने मे भी कोई सन्देह नही। उक्त दोनो विद्वानो की शकाओ का उत्तर देते हुए प्रेमीजी ने लिखा है—'मैने शकक्षत्रप, भूमक, नहपाण और नहपाण के जामाता उषवदात को गर्दभिल्ल पुत्र विक्रमादित्य का समकालीन माना है। श्री जयचन्द्र विद्यालकार ने श्री जायसवालजी के मत का अनुमोदन करते हुए नहपाण को उज्जयिनी का शकक्षत्रप माना है, यह भी माना है कि गदभिल्ल दर्पण के बाद वह उज्जयिनी का राजा बना था, किन्तु साथ ही उन्होने यह भी माना है कि नहपाण का अन्त गौतमी-पुत्र सातकर्णि द्वारा हुआ था। इस अन्तिम निष्कर्ष का कारण भी नासिक वाला लेख है, किन्तु जब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उज्जयिनी के शको का उच्छेदन गर्दभिल्लदर्पण के पुत्र विक्रमादित्य ने किया और जब यह भी निश्चित है कि गर्दभिल्लदर्पण के बाद उज्जयिनी का क्षत्रप नहपाण था तो हमे यह मानने मे सकोच नही करना चाहिए कि नहपाण से ही गर्दभिल्लदर्पण के पुत्र विक्रमादित्य ने मालव-प्रदेश का उद्धार किया।

उषवदात नहपाण का जामाता था, इसका उल्लेख नासिक के पास गुहा सख्या १० के बराडे की दीवार पर छत के नीचे उसके एक लेख से सिद्ध है, जिसमे उसने स्वय ही अपने-आपको राजा क्षहरात क्षत्रप नहपाण का जामाता लिखा है। उषवदात नहपाण का जामाता भी था और राज-काज मे सहायक भी था। उषवदात के लेख मे ही एक जगह उल्लेख है—'भट्टारक की आज्ञा पाकर वर्षाऋतु मे मालपो (मालवो) द्वारा घेरे हुए उत्तमभाद्र को छुडाने आया हूँ।' इससे सिद्ध है कि मालवो के साथ जो सघर्ष शको का हुआ इसमे उषवदात ने भाग लिया। इसलिए उषवदात को गर्दभिल्लदर्पण के पुत्र विक्रमादित्य का समकालीन मानकर अपने इस नाटक का एक पात्र मैंने बना लिया है।

भर्तृहरि भी ऐतिहासिक पात्र है। भर्तृहरि की भी प्रचलित कथा मे ऐसा उल्लेख है कि विक्रमादित्य से पहले वह ही उज्जयिनी पर राज्य करते थे और विक्रमादित्य उनके मत्री थे। जब भर्तृहरि ने राज्य छोडा तब विक्रमादित्य ने राज्य-भार सँभाला। अनुश्रुतियो मे विक्रमादित्य के छोटे भाई भर्तृहरि का जहाँ-तहा उल्लेख आता है। कही-कही यह भी उल्लेख आता है कि भर्तृहरि गदभिल्लदपण की शूद्रादासी के पुत्र थे। इसी आधार पर प्रेमीजी ने भर्तृहरि को दासी-पुत्र और विक्रमादित्य का भाई

माना है। भर्तृहरि और विक्रमादित्य की कथा मे विरोध न पैदा हो, इसलिए विक्रम ने उन्हे ही शको के उच्छेद के पश्चात् मालव-प्रदेश का प्रथम गणपति बनवाया, ऐसी कल्पना नाटककार ने की है।

मलयावती, सेनापति चद्र और बेताल भी अनुश्रुतियो मे आते है, इनकी भी ऐतिहासिक सत्ता है। विक्रम को बेताल का बचपन का साथी मान लेना चाहे कल्पना ही हो, किन्तु ऐतिहासिक तथ्य को और भी स्वाभाविक बनाती है।

'साँपो की सृष्टि' मुस्लिमकालीन ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक का सम्बन्ध अलाउद्दीन खिलजी से है। इससे पहले भी प्रेमीजी के नाटक 'आहुति' और 'शतरज के खिलाडी' अलाउद्दीन खिलजी के समय से सम्बन्धित थे। 'साँपो की सृष्टि' नाटक भी अलाउद्दीन खिलजी के जीवन के अन्तिम दिनो को सामने रखकर लिखा गया है। अलाउद्दीन ने अपने चाचा का वध करके दिल्ली का सिहासन पाया था—उसके पहले जलालुद्दीन ने भी गुलाम वश के अन्तिम सुलतान से राज्य छीनकर इसी प्रकार दिल्ली की बादशाहत पाई थी। मलिक काफूर ने भी इसी परम्परा का पालन कर दिल्ली के तख्त पर कब्ज़ा करना चाहा और वह इसमे काफी सीमा तक सफल भी हुआ, किन्तु उसकी सफलता अस्थायी रही। यह नाटक इन्ही घटनाओ को लेकर लिखा गया है, और इसकी अभिव्यक्ति बडे ही कौशल से की गई है।

इस नाटक मे अलाउद्दीन के जीवन के अन्तिम दिनो मे हुई घटनाओ का मुख्य रूप से चित्रण है। लेखक ने इस बात को विशेष रूप से उभारा है कि अलाउद्दीन का दाम्पत्य एवम् पारिवारिक जीवन दु खी था। एक विजेता के रूप मे जितना वह सफल था, गृहस्थ के रूप मे उतना ही असफल। इस असफलता ने उसके मस्तिष्क को विकृत कर दिया था। नाटक मे प्रसग-वश अलाउद्दीन के जीवन की सभी प्रमुख घटनाए, भारत की उस समय की राजनीतिक स्थिति, भारतीय समाज की वे दुर्बलताएँ, जिनके कारण विदेशी यहाँ सफलता पा सके और विदेशियो के द्वारा किये गये नृशस अत्याचारो की झाँकियाँ कही-न-कही आ ही गई है।

विभिन्न पात्रो के मुख से कही गई ऐतिहासिक घटनाओ का विवरण इस नाटक मे इस प्रकार मिलता है।

१ *कमलावती*—जब सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की सेना ने गुजरात पर आक्रमण किया था तब वहाँ की राजधानी अन्हिलवाड मे रक्त की बाढ आई थी। रक्त के समुद्र मे तुर्क और राजपूत योद्धाओ के शव मगरो की तरह तैर रहे थे।

२ महमूद गजनवी द्वारा तोडे गये सोमनाथ के मदिन्र का भारतीयो ने पुनरुद्धार करवा दिया था, किन्तु अलाउद्दीन के धार्मिक उन्माद ने उसे फिर तुडवाया। सुदूर दक्षिण के चिदम्बरम् मन्दिर को मिट्टी मे मिला दिया।

३ गुजरात-नरेश के भाग खडे होने पर कमलावती अपने देश की रक्षा के लिए युद्ध करती रही। बन्दी बनाई गई और शाही हरम मे लाई गई।

४ हज़ार दीनारी मलिक काफूर सम्राट् का सबसे विश्वासपात्र सेनापति था। दक्षिण मे उसने देवगिरि के यादव, द्वारसमुद्र के होय्याल, वारगल के काकतीय और मदुरा के पाड्यो पर विजय पाई, किन्तु दिल्ली के अनेक तुर्क सरदार उससे घृणा करते थे।

५ सुलतान अलाउद्दीन ने देवगिरि का राज्य रामचन्द्रदेव को वापस दे दिया और उसका उपयोग रुद्रप्रतापदेव के विरुद्ध किया। फिर रुद्रप्रतापदेव को जीत कर उसका राज्य वापस कर दिया और उसका वीर बल्लाल के विरुद्ध प्रयोग किया—फिर बल्लाल को जीतकर उसे पाड्यो के विरुद्ध सहायता देने को मजबूर किया।

६ मलिक काफूर कठपुतली सुलतान को गोद मे लेकर सिंहासन पर आसीन होकर सरदारो का मनमाना अपमान करने लगा। उसने अनेक सरदारो की सम्पत्ति को छीन कर उन्हे राह का भिखारी बना दिया। अनेक को मरवा डाला। अनेक की आँखे निकलवा दी। स्वर्गीय सुलतान के जितने भी पुत्र थे उन्हे बन्दी बनाकर या तो उन्हे मरवा दिया या उनकी आँखे निकलवा ली।

७ सुलतान के एक पुत्र मुबारकशाह को उसने बन्दी बना रखा था। उसकी आँखे निकालने के लिए जब उसने अपने चार आदमियो को भेजा तो मुबारकशाह ने उन्हे काफूर के प्रति विद्रोही बना दिया। इन लोगो ने मुबारकशाह के स्थान पर मलिक काफूर को मौत के घाट उतार दिया।

८ *काफूर*—तीन बार (मलिक काफूर ने) दक्षिण भारत की राज-शक्तियो और धर्माभिमान को पद-मर्दित किया। वहाँ के प्रत्येक राजमहल, मन्दिर और धन-कुबेरो की हवेलियो से अपार धन-सम्पत्ति, जिसमे कोहनूर हीरा भी था, लूटकर सुलतान के राजकोष को समृद्ध बनाया। हजारो भारतीय नारियो को तुर्क सैनिको की सेवा करने के लिए वितरित कर दिया। हज़ारो बच्चो के सिर धड से अलग कर दिये।

९ *अलाउद्दीन*—तलवार चलाने मे अलाउद्दीन को कभी ऐतराज नही रहा। इसने औरतो-बच्चो पर भी दया नही की। मेवाड मे एक दिन मे इसकी आज्ञा से तीस हज़ार इन्सानो का, जिनमे बूढे, बच्चे, स्त्रियाँ सभी थे, बध किया गया था। केवल भारतवासी ही नही, दुनिया मे विध्वस का खेल खेलनेवाले चगेजखाँ के वशज भी इसकी तलवार के आगे पानी माँगते रहे। सीरीमहल की बुर्ज मे पत्थरो की जगह आठ हज़ार मुगलो की खोपडियाँ इसने चुनवाई।

१० सुलतान की एक बेटी जालौर के राजकुमार विक्रम को चाहने लगी थी और लाख समझाने पर भी वह बाज न आई। विक्रम ने विवाह करना स्वीकार नही किया। अपने अपमान का बदला लेने के लिए अलाउद्दीन ने जालौर पर चढाई की और विक्रम तथा उसके बाप को मार डाला।

इतिहास की इन घटनाओ को लेखक ने बडे ही कौशल से नाटक मे रखा है। सूच्य वस्तु के उपयोग से अलाउद्दीन के समय की प्राय सभी मुख्य घटनाएँ रख दी गई है। इतने विस्तार से इतिहास का सरक्षण सभवत दूसरे किसी नाटक मे नही हुआ। सभी पात्र ऐतिहासिक है। माला और सलीमा की कल्पना केवल अलाउद्दीन और कमला के वार्तालाप को व्यक्त करने के लिए की गई है, किन्तु दासियो का ऐतिहासिक अस्तित्व तो स्वीकार करना ही पडेगा। साथ ही इन पात्रो से किसी ऐतिहासिक तथ्य का सीधा सम्बन्ध भी नही रखा गया है।

तीन

देशकाल की छाया में वर्तमान का चित्रण

ऐतिहासिक नाटको की रचना कोई सरल काम नही है। ऐतिहासिक नाटककार का कृतित्त्व केवल इस बात मे ही नही है कि वह घटनाओ के ब्यौरे सही रूप मे रखता चले, घटना-चक्र को इतिहास-सम्मत बनाता चले और पात्रो के नाम धाम-काम इतिहास-ग्रन्थो के अनुकूल अकित करता चले, सफलता इस बात मे है कि वह जिस काल या काल-खण्ड का, जिस प्रदेश या भू-भाग का चित्रण करता है, वह आँखो के आगे प्रत्यक्ष हो जाय। देशकाल या वातावरण नाटक का आवश्यक तत्त्व है। नाटक तो वास्तविक जीवन का चित्रण प्रस्तुत करता है। देशकाल की ओर ध्यान बनाये रखने से ही नाटक मे स्वाभाविकता लाई जा सकती है। देशकाल तथा वातावरण के विपरीत चित्रण से नाटक मे अस्वाभाविकता आ जाती है।

देशकाल के चित्रण द्वारा नाटककार हमारे सामने अतीत की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक अवस्थाएँ, रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा आदि का चित्रण करता है। कथानक से सम्बन्धित समय और स्थान की सभ्यता-सस्कृति का सही-सही लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है और जो लेखक देशकाल की मर्यादाओ की रक्षा नही कर पाता, उसके दृश्य-विधान, पात्र और चरित्र हास्यास्पद हो जाते है। देशकाल नामक तत्त्व की सहायता से लेखक ऐतिहासिक सामग्री का सही अकन करता है।

लेकिन एक ओर जहाँ वह देशकाल का चित्रण करता है, वहाँ दूसरी ओर ऐतिहासिक सामग्री का प्रयोग कर अपनी कला से ऐसी परिस्थिति का निर्माण करता है, जिसमे कुछ नवीनता भी हो। वह पुरातन मे नूतन की सस्थापना करता है और इस प्रकार ऐतिहासिक वातावरण की पृष्ठभूमि मे वर्तमान को रखकर भविष्य के लिए दिशा-निर्देश भी करता है। कलाकार चाहे अतीत से सामग्री ले, चाहे कल्पना का सहारा ले, वह हर दशा मे युग का प्रतिनिधि तो कहलाता ही है। जो कलाकार अपने समय की परिस्थितियो से आँख मूदकर केवल अतीत की घटनाओ पर आँसू बहाकर ही अपनी कला की इतिकर्त्तव्यता मानता है, वह लाश को अपने रोदन से जिलाने का मूर्खतापूर्ण प्रयत्न करता है।

'पुरातन और नवीन का स्वस्थ सगम जिस रचना मे नही होगा, भूत तथा वर्तमान का सामजस्य जिसमे न होगा, वह हमारे भविष्य का भी निर्माण नही कर सकती, यह निर्विवाद है। प्रेमी जी के नाटको की प्रेरणा है, वर्तमान। वर्तमान का निर्माण ही उनका उद्देश्य है, वर्तमान साध्य है, भूत साधन।' (हिन्दी नाटककार

पृष्ठ १४७) अपने नाटको की भूमिकाओ मे प्रेमीजी ने स्पष्ट घोषणा की है कि "उन्होने अतीत की सामग्री वर्तमान का चित्रण करने के लिए ही चुनी है।"

प्रेमीजी के नाटको मे जहाँ अतीत का सफल चित्रण हुआ है, वहाँ वर्तमान की मार्मिक अभिव्यक्ति भी हुई है। एक सजग और सच्चे कलाकार की भाँति वे अपने कर्त्तव्य को स्थिरता दे चुके है, उनमे उद्देश्य के प्रति भटकन नही है। 'शतरज के खिलाडी' की भूमिका मे उन्होने लिखा है —'इतिहास—हमारा भूत—हमारा बीता हुआ कल हमारे आज की बुनियाद है। इतिहास का महत्त्व भारत ने ठीक-ठीक नही समझा और इसीलिए हमारे अतीत के अनेक कीर्ति-स्तभ पृथ्वी के उदर मे समा गए, जो है वे धर्म-ग्रन्थ बनकर श्रद्धा के चमत्कार-द्वारा कल्पना के रग मे रँगकर अपनी ऐतिहासिकता को वहुत-कुछ खो चुके है। छज्जो के कँगूरे सजानेवाला कलाकार नीव के रोडो को व्यथ नही कह सकता। बिना दृढ आधार के हमारा समाज, हमारी सस्कृति, हमारी राष्ट्रीयता और हमारी मानवता खडी कैसे रह सकती है! मैं तो अपने राष्ट्र के पैरो को इतिहास का बल देना चाहता हूँ।'

किंतु इसका यह अथ नही है कि एक उपदेशक या मच के व्याख्याता नेता की भाँति प्रेमीजी उपदेश करते चले गये है। उनके नाटक प्रचार का उद्देश्य लेकर नही चले है, कला की प्रभावोत्पादकता उनमे है। 'विषपान' की भूमिका मे वे कहते हैं —'प्रचार और कला की सीमा को मैं पहचानता हूँ। यदि साहित्यिक श्रेष्ठ विचार नही देता—केवल मनोरजन की भूख मिटाता है तो उसकी सेवाओ का अधिक मूल्य नही है। साहित्यिक की लेखनी की रेखाओ से युग का निर्माण होता है। साहित्य द्वारा समाज के सस्कार बनते है। ललित साहित्य का सस्कृति के निर्माण मे बडा हाथ है। समाज की विषमताएँ ही तो उनके लिए साहित्य का मसाला देती है। ललित साहित्य के द्वारा समाज की जटिल समस्याओ पर प्रकाश पडना चाहिए।'

प्रेमीजी का नाटककार आधुनिक सामाजिक दृष्टिकोण से भी परिचालित है। "आधुनिक सामाजिक दृष्टिकोण से परिचालित होने के कारण प्रेमीजी ने अपने नाटको मे सामाजिक समानता की आवश्यकता का भी चित्रण किया है। इस दृष्टि से 'विषपान' मे महाराज जगत्सिह द्वारा वेश्या-विवाह का समथन कराकर एवम् राजकुमारी कृष्णा का धीवर से वार्तालाप कराकर उन्होने इसी प्रवृत्ति का परिचय दिया है। उनके नाटको मे राष्ट्र-चिन्तन के पश्चात् समाज-कल्याण से सम्बधित तत्त्वो के चिन्तन को ही मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है। इनके अतिरिक्त उन्होने कही-कही अध्यात्म-चिन्तन को भी विकसित होते हुए दिखाया है। चिन्तन के अतिरिक्त अनुभूति ग्रहण की प्रवृत्ति भी उनके नाटको की उत्कृष्ट निधि है। इस अनुभूति का सम्बन्ध स्पष्टत समाज-दर्शन से रहा है।"[१]

---

१ सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्र थ, पृष्ठ ७५८

कुशल कलाकार अपने काम की सामग्री चुनने मे सदा ही विवेक से काम लिया करते है। प्रेमीजी ने भी वर्तमान का चित्रण करने के लिए अनुकूल सामग्री का चुनाव इतिहास के ऐसे पृष्ठो से किया है, जिनको वर्तमान का प्रतिरूप कहा जा सकता है। प्रेमीजी के नाटको का दर्शन गाँधीवादी दर्शन है। उन्होने वर्तमान समस्याओ का सुलझाव गाँधी-माग से होकर ही निकाला है। गाधीवादी दर्शन ने देश की जनता को साम्प्रदायिक द्वेष का अन्त कर राष्ट्रीय एकता की ओर अग्रसर किया है। सास्कृतिक और मानवीय एकता का नारा ही उन्होने बुलन्द किया है। जातीय गुणो के त्याग की प्रेरणा गाधीजी सदा देते रहे, एकान्त स्वार्थ के विरुद्ध सदा ही उन्होने अपना मत दिया और राष्ट्रीयता की भावनाओ को प्रोत्साहन दिया। वर्तमान भारत को इसीकी तो आवश्यकता रही है।

'स्वप्न-भग' और 'विदा' की भूमिकाओ मे प्रेमीजी ने गाँधीवादी दर्शन के प्रति अपनी आस्था इन शब्दो मे प्रकट की है —'दारा का जो स्वप्न था—वही कुछ परिष्कृत रूप मे महात्मा गाँधी का भी था और मेरे छोटे-से प्राणो का भी वही स्वप्न है। धर्म, जाति, सम्प्रदाय, देश और सामाजिक एव राजनीतिक विचार-धाराएँ और इसी प्रकार की अनेक बातो को मानव का शत्रु बनाए हुए है। सबकी जड मे व्यक्ति का स्वार्थ है। जब व्यक्तियो के सस्कार सुधरेंगे, वह स्वार्थ से छुटकारा पाकर दूसरो के हित के लिए त्याग करने मे आनन्द पायेंगे तब ससार स्वर्ग बन जायेगा। मैं चाहता हूँ—हिन्दुस्तान ही नही सम्पूर्ण ससार स्वर्ग बन जाय।' (स्वप्न-भग)

'अब हम स्वतत्र है और हमे इस बहुत बलिदानो के पश्चात् प्राप्त की हुई स्वतत्रता की रक्षा करनी है, अपनी दुर्बलताओ को दूर करना है और देश को सुखी और समृद्ध बनाना है। यह तभी सभव है जब हम एकता के सूत्र मे बँधकर देश के उत्थान मे जुट पडे। महात्मा गाँधी ने देश की एकता की रक्षा करने के लिए प्राण दे डाले। भारत सब वर्गो, जातियो और धर्मो का है। सबमे भाईचारा होना चाहिए। सबको समान सुविधाएँ और अधिकार प्राप्त होने चाहिएँ, और सब राष्ट्रीयता की भावना से एक सूत्र मे बँधे रहने चाहिएँ, यही गाँधीजी की कामना थी। मैंने अपने कुछ नाटको के द्वारा उनकी इस कामना को सफल बनाने की दिशा मे थोडा-सा योगदान दिया है।' (विदा)

प्रेमीजी ने वर्तमान भारत की उन समस्याओ को विशेष रूप से छुआ है, जो प्राचीन काल से भारत को घुन की तरह खाये चली आ रही है। साम्प्रदायिक द्वेष एक ऐसा जहर है जो चिरकाल से जातीयता की नाडियो मे पवाहित हो उसे क्षीणप्राय करता रहा है। साम्प्रदायिकता ने कभी धार्मिक क्षेत्र मे, कभी राजनैतिक क्षेत्र मे और कभी सामाजिक क्षेत्र मे अपना अकाड-ताडव दिखाया है। विदेशियो के सम्पर्क से लेकर आज तक इसका प्रभाव बढता ही चला

गया है। इस विष की धारा को समाप्त करने के लिए ही प्रेमीजी ने इतिहास के पन्नो को पलटा। सबसे पहले उन्होने 'रक्षाबन्धन' नाटक द्वारा इसके विरुद्ध जोरदार आवाज़ उठाई। इस नाटक मे साम्प्रदायिक एकता का स्वप्न साकार बन गया है। इस नाटक की भूमिका मे लेखक ने कहा है—'पजाब मे ज्ञान की बाँसुरी और कर्म का शख फूँकनेवाली बहन कुमारी लज्जावती ने एक बार मुझसे कहा था कि हमारे भारतीय साहित्य मे—हिन्दी और उर्दू तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओ के साहित्य मे—हिन्दुओ और मुस्लमानो को अलग करनेवाला साहित्य तो बढ रहा है, उन्हे मिलाने का प्रयत्न बहुत थोडे साहित्यकार कर रहे है। तुम्हे इस दिशा मे प्रयत्न करना चाहिए। इसी लक्ष्य को सामने रखकर उन्होने मुझे ऐतिहासिक नाटक लिखने का आदेश दिया। मैंने बहन लज्जावतीजी की आज्ञा मानकर "रक्षाबन्धन" नाटक लिखा।'

'रक्षाबन्धन' नाटक मे कमवती का हुमायूँ को राखी भेजना और उसे भाई बनाना तथा हुमायूँ का चित्तौड की रक्षा के लिए आना दोनो ही घटनाएँ साम्प्रदायिक एकता की द्योतक हैं। ऐतिहासिक घटना की छाया मे लेखक ने अपने समय की साम्प्रदायिक अग्नि को शात करने का मार्ग सुझाया है। मेवाड के महाराणा विक्रमादित्य का दृष्टिकोण जातीय एकता की ओर था, बहादुरशाह के भाई चाँदखाँ से उसने कहा —'मजहब मनुष्य के हृदय के प्रकाश का नाम है। जो मजहब का नाम लेकर तलवार चलाते है, वे दुनिया को धोखा देते है, धर्म का अपमान करते है। जाति और धर्म के नाम पर मनुष्यता के टुकडे न कीजिए।' हुमायूँ का तो सारा जीवन ही साम्प्रदायिक एकता का नमूना है। हुमायूँ के अन्तिम वाक्य गाँधीवादी दर्शन से प्रभावित रखे गये है —'हिन्दुस्तानी ही नही, इन्सान है। हमे उस दुनिया की हर किस्म की तगदिली के खिलाफ जिहाद करना चाहिए। हमारा काम भाई के गले पर छुरी चलाना नही, भाई को गले लगाना है, भाई को ही नही, दुश्मन को भी गले लगाना है। दुनिया के हर एक इन्सान को अपने दिल की मुहब्बत के दरिया मे डुबा लेना है।'

हुमायूँ के ये वाक्य उसे किसी आधुनिक नेता का रूप नही देते, इतिहास मे वह अपनी उदारता और विशाल दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध है। दारा के विचार और भी अधिक विशाल है—' स्वार्थ के लिए हिन्दुओ और मुसलमानो के दिल मे वह ज़हर न भरो जो फिर किसी के लिए भी दूर न हो सके। हिन्दुस्तान को हिन्दू और मुसलमान दोनो की माँ रहने दो। उसे साम्प्रदायिकता की आग मे न झुलसाओ।'

इतिहास कहता है कि आरम्भ मे तो मुसलमान विदेशी के रूप मे रहे, लेकिन जैसे-जैसे वे इस देश मे बसते गये, उन्हे इस बात का अनुभव होता गया कि भारत को अपना ही देश माने बिना कल्याण नही है। जाति-धर्म से बडी चीज़ है देश के

प्रति राष्ट्र-भावना । दारा ने इस बात को अनुभव किया। वर्तमान युग मे एक बार फिर इस प्रकार के विचारो की आवश्यकता पडी। लेखक ने दारा के शब्दो मे 'स्वप्न-भग' मे कहलवाया —'मै तो मनुष्यमात्र को एक समझता हूँ। हम जिन्हे मुसलमान कहते है, आदिम आर्यो के वशज है। जब इस्लाम का प्रादुर्भाव नही हुआ था, तभी हिन्दुस्तान के सूर्यवशी और चन्द्रवशी राजाओ ने अफगानिस्तान, ईरान, अरब और तुर्किस्तान मे राज्य-सत्ता स्थापित की थी, अपने धर्म का प्रसार किया था। मुसलमान तो उन्ही क्षत्रियो की सन्तान है। आज धर्म के परिवर्तन से वह रक्त का सम्बन्ध तो नही भूला जा सकता। भारतवर्ष सदा से अपना था और सदा अपना रहेगा। हम पहले भारतवर्ष के है, पीछे अरब और तुर्किस्तान के। हम इसे पराया कैसे समझे ?'

साम्प्रदायिक वैमनस्य की ज्वाला सदा से देश की अखण्डता को जलाती आई है। देश टुकडो मे बँटता जा रहा है। उसकी शक्ति क्षीण होती रही है। देश के सामने यह समस्या पहले भी थी और आज भी है। इतिहास बताता है कि दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चाहान के समय हमारा देश अनेक छोटे राज्यो मे बँट चुका था और प्रत्येक राजा अपने वश-गौरव के अभिमान मे दूसरे से लोहा लेने को प्रस्तुत था, ऐसे समय मे ही विदेशी शक्ति भारत पर विजय पा सकी। इसी प्रकार जब पठान राज्य अनेक टुकडो मे विभाजित हो गया तब बाबर को आक्रमण करने का साहस हुआ। मुगल साम्राज्य जब छिन्न भिन्न होने लगा तब अहमदशाह अब्दाली और नादिरशाह को इस देश पर चढ दौडने का साहस हो सका। पठानो और मुगलो के समानधर्मी होने पर भी युद्ध के मैदान मे आमने-सामने खडे होने मे कोई हिचक पैदा नही हुई। जभी एक साम्राज्य समाप्त हुआ—भारत की अखण्डता नष्ट हुई—तभी किसी बाहरी शक्ति ने इसकी स्वाधीनता पर आक्रमण किया है। राष्ट्रीय एकता का अभाव इस देश की सबसे बडी दुर्बलता है। अभी कुछ ही वर्ष हुए है कि देश दो टुकडो मे बँटा है। आज भी महागुजरात, महापजाब आदि के नारे लगाये जा रहे है। सदियो से भारत ने जो भूल की है, वह आज भी जारी है। भारत की एकता और अखण्डता की आवश्यकता आज भी पहले की भाँति बनी हुई है।

'विषपान' मे जोधपुर और जयपुर के पारस्परिक मनमुटाव को दूर करने के लिए कृष्णा ने अपना बलिदान दिया। राजस्थान की एकता के लिए कृष्णा ने विषपान किया, उसके बहाने से लेखक हमारे सामने देश की एकता के प्रश्न को सुलझाना चाहता है। आज की बडी आवश्यकता है सास्कृतिक और राष्ट्रीय एकता, 'विषपान' अपने इतिहास के सहारे इसी का हल निकालता है। 'विदा' नाटक की समस्या भी यही है। जेबुन्निसा और अकबर राष्ट्रीय एकता पर बल देते है। एकता और मनुष्यता की रक्षा के लिए दोनो अपने बाप औरगजेब मे विद्रोह करते है। अकबर के हृदय की वेदना गाँधीजी के हृदय की वेदना ही है। दुर्गादास से अकबर कहता

है —"दुर्भाग्य है, इस देश का जहाँ ऐसे लोग बहुत थोडे है जो व्यक्तिगत सत्ता और स्वार्थों से ऊपर उठकर अपने देश की सुख-समृद्धि के विषय मे सोचते हो। ऐसा हिन्दुस्तान उनकी कल्पना के बाहर है जो न हिन्दुओ का हो, न मुसलमानो का, न राजपूतो का, न मराठो का, न किसी अन्य जाति का, बल्कि सम्मिलित रूप मे सबका हो, जिस भारत मे सबको समान अधिकार प्राप्त हो—शासन मे समान आवाज़ हो।"

वैमनस्य और स्वार्थ की भावना के कारण ही देश परतन्त्र रहा और सदियो तक उसके निवासियो के सामने स्वतन्त्रता का प्रश्न खडा रहा। प्रेमीजी ने अपने भिन्न-भिन्न नाटको के द्वारा इस प्रश्न पर प्रकाश डाला। वर्तमान युग मे स्वतन्त्रता का प्रश्न और भी तीव्रतर हुआ। ऐसी स्थिति मे लेखक ने अपने पात्रो-द्वारा आज़ादी की कामना को बढावा दिया। अपनी अमर कृतियो से अत्याचारी शासन को समाप्त कर स्वराज्य की स्थापना की कामना का शखनाद किया। प्रतिशोध, शिवा-साधना, आहुति आदि भारतीय स्वतन्त्रता की कामना के अग्रदूत है। वास्तव मे प्रेमीजी के नाटको मे देशप्रेम सर्वोपरि तत्त्व है। सभी नाटको मे देश-प्रेम सब भावो से अधिक सजग और गतिशील है। प्रेमीजी के पात्रो की पुकार है—आततायियो और आक्रमणकारियो से अपनी जन्मभूमि की प्राण देकर भी रक्षा करो। 'रक्षाबन्धन' की श्यामा, जो मेवाड के राजवशो से घृणा करती थी, भारतो के द्वारा प्रबोधन पाकर कहती है—'तुम सच कहती हो, देश सर्वोपरि है, सवश्रेष्ठ है। हमारे दु खो की क्षुद्र सरिताएँ उसके कष्ट और सकट के महासमुद्र मे डूब जानी चाहिएँ।' कर्मवती जवाहरबाई, लाखनसिह, अर्जुनसिह आदि सभी देश की स्वतत्रता के लिए बलिदान को तत्पर है। कर्मवती कहती है—'जबतक हम अपने व्यक्तित्व को, सुख-दु ख और मानापमान को, देश के मानापमान मे निमग्न न कर देगे, तबतक उसके गौरव की रक्षा असभव है, तबतक हम मनुष्य कहलाने योग्य नही हो सकते।' 'शिव-साधना' के शिवाजी, बाजीप्रभु, तानाजी मालसुरे आदि देश को ही सर्वोपरि मानते है। शिवाजी कहते है—'जबतक पुण्यभूमि शत्रुओ के अस्तित्व से शून्य न हो जाय, तबतक स्वराज्य की सीमा का विस्तार व्यर्थ है।'

'उद्धार' का हम्मीर भी देश के लिए सर्वस्व बलिदान करने की कामना लिये हुए कहता है—'आपको वशाभिमान के अतिरेक ने पथभ्रष्ट कर दिया था, किन्तु हमे जानना चाहिए कि देश तो जाति, वश और सभी सासारिक वस्तुओ से ऊँचा है। उसकी मानरक्षा के लिये हमे समस्त का बलिदान करना चाहिए।' देश का यथार्थ अर्थ समझाने की स्थान-स्थान पर लेखक ने चेष्टा की है। शुद्ध व्यक्तिगत पौरुष और वीरता का प्रदर्शन देश-सेवा नही है, बल्कि उसे सर्वोपरि समझकर अपनी व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा का लय ही देश की सच्ची भक्ति है।

स्वतत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे सामने अनेक समस्याएँ उभरी है, प्रेमीजी ने अपने ऐतहासिक नाटको द्वारा उनका भी समाधान खोज निकाला है। देश की स्वतत्रता मे अनेक वीरो, महापुरुषो और राजनैतिक नेताओ का हाथ है, उनके प्रति श्रद्धा होना स्वाभाविक है, किन्तु यह श्रद्धा व्यक्ति-पूजा मे परिवर्तित हो गई है। साध्य को छोडकर साधन की ओर ध्यान चला गया है। 'भग्न प्राचीर' नाटक मे लेखक ने इस ओर ध्यान दिया है। महाराजा सग्रामसिह कहते है—'मैं जानता हूँ कि व्यक्ति पूजा मानव का स्वभाव है और किसी सीमा तक उसका उपयोग भी है, उससे लाभ भी होता है, किन्तु भारत मे यह सद्गुण अवगुण की सीमा तक पहुँच गया है। किसी एक व्यक्ति के व्यक्तित्व की चकाचौंध से प्रत्येक देशवासी को अन्धा कर देने की आवश्यकता नही है। हमे व्यक्तियो की भक्ति करने के स्थान पर देश और मानवता का समादर करना होगा।'

व्यक्ति-पूजा की यह प्रवृत्ति हममे पहले भी थी और आज भी है। आज यह अधिक बढ गई है। सग्रामसिह का सन्देश ध्यान देने योग्य है, खासतौर पर ऐसी स्थिति मे जबकि हमारे देश के लोगो का देश-प्रेम नेताओ के गुणगान तक ही सीमित रह गया है। देश को हम भूल चले है और अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए राजनैतिक नेताओ की भक्ति ही हमारा इष्ट बन रही है।

स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद देश मे प्रान्तीयता की भावना उभरी है। इस भावना को अनेक पार्टियाँ बढावा दे रही है। मराठा, द्रविड, जाट, राजपूत, हिन्दू, सिख के प्रश्न उठाये जा रहे है। सग्रामसिह के द्वारा लेखक ने इस समस्या पर भी प्रकाश डाला है —'गृहयुद्ध की ज्वाला बहुत भयानक होती है। कभी-कभी वह छल भी करती है। जान पडता है वह बुझ गई। लेकिन वह प्राणो मे सुलगती रहती है। अचानक ही उसमे से लपटे उठने लगती है। पीढियो तक यह ज्वाला शान्त नही होती। बैर के विष से वशो का रक्त विषाक्त हो जाता है।'

स्वतत्रता-प्राप्ति पर देश के सामने पहली समस्या देश मे से राजत्व की भावना को समाप्त करना था। वास्तव मे आज के विश्व की सबसे बडी समस्या है राजतत्र। भारतीय स्वतत्रता के उपरान्त विश्व के विभिन्न कोनो से राजतत्र समाप्त हुआ है। 'प्रकाश-स्तभ' नाटक मे बाप्पा का कथन प्रजातत्र के समर्थको का कथन है। राजतत्र के विरुद्ध प्रजातत्र की दलील है —'लुटेरे का ही दूसरा नाम राजा है। जो दूसरो की श्रम से अर्जित धन-सम्पत्ति से अपना कोष भरता है वह राजा है। जिस प्रकार मेरे ये साथी है उसी प्रकार उसके राजकर्मचारी और सैनिक आदि होते है, जो वेतन लेकर व्यवस्थित ढग से अपने पडोसियो को लूट-लूटकर उसका भडार भरते है। न्याय-व्यवस्था के नाम पर वह लोगो को उल्लू बनाता है। शस्त्रो की चमक दिखाकर सबको चुपचाप लुटते रहने को बाध्य करता है, और

इस बाध्यता को राजभक्ति के नाम से पुकारा जाता है। तुम्हारे जैसे विद्वानो के मस्तिष्को को मोल लेकर वह अपनी प्रशस्ति लिखाता है।'

आजकी सबसे बडी आवश्यकता है, प्राचीन रूढियो का मोह छोडकर मानव-मात्र की एक जाति की स्थापना। बाप्पा का प्रयत्न इसी दिशा मे था और लेखक उसके कथनोपकथनो द्वारा हमे भी दिशा निर्देश करता है। जन्म से ही जाति-वर्ण मानकर चलनेवाले समाज मे विषमता फैलाते है। जन्मगत विचारो पर बाप्पा टिप्पणी करते हुए कहता है —'समाज मे वैषम्य को परिपुष्ट करनेवाली परम्पराएँ अति प्राचीन है। प्रथम तो यह धारणा ही भ्रममात्र है, और यदि प्राचीन हो भी तो मानवता के सिद्धान्त के विरुद्ध, अस्वाभाविक और अन्यायपूर्ण परम्पराओ का अन्त मानव का कर्त्तव्य है। जो वस्तुएँ, जो परम्पराएँ, जो विश्वास मनुष्य-मनुष्य मे वैषम्य स्थापित करे उनका मै परम शत्रु हूँ। जाति-प्रथा ने हमारे समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया है। हममे पारस्परिक भ्रातृभाव समाप्त हो गया है। उच्च जातिवालो ने समाज के बडे अश को अस्पृश्य और दास की स्थिति मे पहुँचा दिया है।'

यो तो देश-भक्ति के नाम पर छोटे-छोटे रस्मो की रक्षा का प्रयत्न हमारे देशवासी करते ही रहे है, कभी-कभी बाहरी शक्ति को खदेडने के लिए शक्तिशाली प्रयत्न भी हुए है, परन्तु देश के वास्तविक रूप को हम आज तक भी नही पहचान पाए। राष्ट्र-भावना का उदय हममे आजतक नही हो पाया। 'प्रकाशस्तभ' का हारीत इस पर प्रकाश डालता है—'हमने देश के वास्तविक स्वरूप को नही जाना। हम अनुभव नही करते कि देश हमारी मा है, हम उसकी गोद मे खेले है, उसके अन्न-जल से हमारा शरीर बना है। जिस प्रकार हमारी जननी के शरीर का प्रत्येक अव-यव अविभाज्य है, उसी प्रकार हमारे देश का भी। हम उसकी सूची के अग्रभाग जितनी भूमि पर भी किसी विदेशी को प्रभुत्व स्थापित नही करने देगे। यही भावना हमे भारत के प्रत्येक धडकनेवाले हृदय मे भर देनी है। देश को माँ समझने की भावना ही वह आधार है, जिसका अवलम्ब लेकर भारत के सम्पूर्ण मानव समाज को सगठन मे बाँधा जा सकता हे।'

स्वार्थी शक्तियाँ आज धर्म को राजनीति मे घुसेडकर देश को पुन खडित करने का विचार लिए हुए है। यही विचारधारा आजतक देश के लिए घातक रही है। धर्म के नाम पर मानवता के विनाश का जाल रचनेवालो को हारीत के वाक्य ध्यान मे रखने चाहिएँ —' लोग धर्म को राजनीतिक शस्त्र बनाकर अपनी साम्राज्य-विस्तार-लिप्सा को तृप्त करना चाहते है। हमे स्वार्थ-भावना से ऊपर उठकर धर्म को राजनीति के क्षेत्र से निर्वासित करना होगा।' धर्म ने समाज मे समान अधिकारो का विभाजन नही होने दिया। इसलिए उसका विरोध ज़रूरी है। लेखक

ने आजकी इस समस्या की ओर भी ध्यान दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की सब सुविधाएँ मिलनी चाहिएँ। हारीत कहता है —'प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह किसी धर्म का पालनकर्त्ता हो, राज्य मे समान अधिकार और सुविधा प्राप्त होनी चाहिए, तभी यह देश एकता के सूत्र मे बँधकर महान् शक्ति बन सकेगी।' सम्पूर्ण समाज की एकता पर बल देते हुए हारीत कहता है —'विधि-विधान और तथा-कथित कुछ धर्म-शास्त्रो के निर्माताओ ने ऐसी ही धारणाओ का बारम्बार प्रचार कर निम्नवर्ग को अपनी हीनता से सन्तुष्ट रखने का यत्न किया है। भाग्य का लेख अमिट समझकर वे अपनी स्थिति से ऊपर उठने का यत्न नही करते। उनका आत्मविश्वास भी नष्ट हो गया है। किन्तु यदि व्यापक दृष्टि से देखे तो इससे हमारे देश की हानि हुई है, हमारा सम्पूर्ण समाज मानव-शरीर की भाँति एक है, उसके प्रत्येक अग को हमे पुष्ट रखना है। उनमे परस्पर प्रतिस्पर्धा, घृणा और वैर नही होना चाहिए बल्कि सहानुभूति होनी चाहिए।'

अनुकूल शिक्षा और वातावरण से ही मानवता का स्तर ऊँचा उठ सकता है' इस आधुनिक विचार पर भी बाप्पा ने प्रकाश डाला है —'यदि अनुकूल शिक्षा और वातावरण मे पोषित हो तो शूद्र मे भी मानवता के वे ही उच्च गुण आ सकते है, जो ब्राह्मण की सन्तान मे हो सकते है।'

इस प्रकार हम देखते है कि ऐतिहासिक वातावरण पर तनिक भी आघात किये बिना प्रेमीजी ने वर्तमान समस्याओ का चित्रण किया है। वर्तमान और अतीत को वे अन्योन्याश्रित मानते है। उनका विचार है कि हमे जहाँ अपने देश की वर्तमान समस्याओ पर विचार करना चाहिए, वही अपने अतीत मे वर्तमान समस्याओ के कारण खोजने चाहिये, वही से हमे उनका निदान भी प्राप्त होगा। उन्होने अपने नाटको की रचना जिस उद्देश्य से की है, उसपर अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये है —'मैने नाटको की रचना निरुद्देश्य नही की है। भारत सदियो की पराधीनता के पश्चात् स्वतत्र हुआ है और अब इसे नवार्जित स्वतत्रता की रक्षा भी करनी है एव राष्ट्र को सुखी, समृद्ध और शक्तिशाली भी बनाना है। प्राचीन इतिहास हमारी शक्ति और दुर्बलता का दर्पण है। मैने बार-बार यह दर्पण अपने देशवासियो के सम्मुख रखा है ताकि हम अपने देश के अतीत को देखकर व्यक्तिगत, सामाजिक एव राजनीतिक जीवन से उन दुर्बलताओ को दूर करे, जिन्होने हमे पराधीनता के पाश मे बाँधा, उन गुणो को ग्रहण करे जिन्होने हमे अभी तक जीवित रखा और फिर स्वतत्र किया तथा उन गुणो का विकास करे, जिनकी राष्ट्र के नवनिर्माण मे अपेक्षा है।'

प्रेमीजी ने अपनी नाट्यकला के माध्यम से देश को जीवित जाग्रत करने मे बडा योग दिया है। कला की उपयोगिता भी वे इसीमे मानते है। 'सवत् प्रवर्त्तन' नाटक का

नायक विक्रमादित्य कहता है —'हमे इस प्रकार के नाटक थोडे सुधार के साथ अपने प्रदेश के कोने-कोने मे खेलकर सर्वसाधारण मे अपने कर्तव्य के प्रति चेतना जाग्रत करनी चाहिये। कला का देश के जागरण और उत्थान मे उपयोग होना ही चाहिए। जनबल को जाग्रत और सगठित करने मे कलाकार और साहित्यकार बहुत बडा योगदान दे सकते है।'

'कला और साहित्य अमृत भी है और विष भी। प्रतिभा का सदुपयोग इन्हे जीवनप्रद बनाता है और दुरुपयोग जीवन-नाशक। ललितकलाएँ मनुष्य की सद्भावनाओ को जाग्रत करनेवाला आनन्द देने के लिये है न कि उसे असयमी और उच्छृ खल बनाने के लिए। कलाओ के प्रति जनमानस का आकर्षण अदम्य है, इसलिए इनकी शक्ति भी अपरिमित हे और कलाकारो का उत्तरदायित्व इसलिए अतिशय महान् है। देश और जाति का निर्माण करना या उसे विनाश के पथ पर ले जाना उसके हाथ मे है। जो कार्य शासन के विधि-विधान या शस्त्र नही कर सकते वह कलाकार और साहित्यकार सहज ही कर सकता है।'

कलाकार अपना लेखनी से केवलमात्र जनसाधारण को ही सचेत नही किया करता, बल्कि किसी-न-किसी बहाने से उन महापुरुषो को भी सचेत करता है जिनके हाथ मे किसी प्रकार की राजसत्ता या जनसाधारण की जीवन-व्यवस्था होती है। आज स्वतत्र देश मे भी शासन के विरुद्ध भीतर-ही-भीतर एक प्रकार का व्यापक असतोष पाया जाता है। 'सवत् प्रवर्तन' मे उषवदात के मुख से इस सत्य की ओर भी सकेत किया गया है—' जनसाधारण ने हतप्रभ होकर विदेशी शासन के अभिशाप को सह लिया। अब वह हतप्रभ की स्थिति समाप्त हो गई है। जन-मानस सोचने लगा है। वह एक नीद की सी स्थिति थी, जिसमे वे बेसुध पडे हुए थे। अब उनकी पलके खुल रही है, हमे चाहिए कि हम अपना रूप ऐसा बनावे जिससे वह पूरी तरह आँखे खोलकर हमे देखे तो उन्हे जान पडे हम उनके भाई है।'

देशकाल की छाया मे वर्तमान के चित्रण का अवसर प्रेमीजी कभी भी हाथ से नही जाने देते। 'साँपो की सृष्टि' आज के भारत की माँग को पूरी करता है। हमारे समाज की भूलो का उद्घाटन इसमे भी किया गया है। माहरू के मुख से लेखक ने कहलवाया है —'जबतक हिन्दुस्तानी विभाजित रहेगे, एक-दूसरे के दु ख-दर्द मे शामिल नही होगे—जबतक सारे हिन्दुस्तानी एक जाजम पर बैठकर खाना नही खा सकेंगे—जबतक इनके यहाँ आठ घरो के लिये नौ चूल्हो की जरूरत होगी, तबतक अलाउद्दीनो के अत्याचारो को कौन रोक सकता है? जो भारतीय विदेशियो से लडते समय भी युद्ध करने की अपेक्षा छूतछात पर ही अधिक ध्यान रखते हे, उनका उद्धार कैसे हो सकता है!'

चार

प्रेमीजी के सामाजिक नाटक और उनकी भावधारा

प्रेमीजी प्रधानतया ऐतिहासिक नाटककार ही है। ऐतिहासिक कथानको के सहारे ही आपने वतमान की बात कहने का प्रयत्न किया है। किन्तु इतिहास की अपनी सीमाएँ होती है। इतिहास मे अपनी लेखनी से जीवन के यथार्थवादी चित्र नही उतारे जा सकते। ऐतिहासिक नाटको मे चरित्र के भीतरी परतो को खोलकर जीवन के अभावो का यथार्थ रूप उनमे रखा ही नही जा सकता। उनमे रूढिगत अनेक बन्धनो की तग गलियो मे ही होकर चलना होता है। व्यक्ति और समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने के लिए मनोवैज्ञानिक विश्लेष ा-प्रधान सामाजिक नाटक लिखने होते है। व्यक्ति और समाज के चरित्र का उद्घाटन करने के लिए प्रेमीजी ने सामाजिक नाटको की रचना भी की है। 'बन्धन' की भूमिका मे उन्होने लिखा है—'इतिहास का मोह मुझे अब भी है, किन्तु समाज मुझ से दूर नही है। मैंने बहुत बडा मोल देकर समाज का जो चित्र देखा है वह पाठको के सामने नही ला पाया हूँ। इतिहास मे मैं अपने-आपको पूर्णरूप से नही दे सकता था। समाज का चित्र खीचते समय मुझे अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है।'

प्रेमीजी ने अब तक तीन सामाजिक नाटक लिखे है—बन्धन, छाया और ममता। इन नाटको का मूल विषय प्राय प्रेम और आर्थिक शोषण है। प्रेम-प्रधान भावना को आप चाहे तो यौन-समस्या भी कह सकते है। यह विदेशी प्रभाव भी माना जा सकता है। हिन्दी मे सामाजिक नाटको का अभाव है, और जो है भी तो वे पाश्चात्य सामाजिक सेक्स की समस्याओ से ओत-प्रोत है। अन्य नाटककारो की भाँति प्रेमीजी पर विदेशी साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियो का प्रभाव नही पडा है। वहाँ का बुद्धिवाद, नारी-समस्या और जीवन के भौतिक सत्यो की स्वीकृति आपके मन मे काम नही करती। आपकी विचारधारा के लिए भारतीय आदर्शवाद की पृष्ठभूमि सदा सहायक रहती है।

'बन्धन' मे पूँजीपति और मजदूरो के सघर्ष को अधिक उभार कर रखा गया है। नाटक का नायक मोहन मध्यवर्ग का शिक्षित युवक है, जो मजदूर बनकर अपने को वर्गच्युत करता और मज़दूरो का नेतृत्व करता है। वह गाँधीवादी विचार-धारा का व्यक्ति है और इस बात मे विश्वास करता है कि आत्मत्याग, करुणा और

प्रेम के बल पर पूँजीपतियो का हृदय-परिवर्तन करके लक्ष्मी को जो उनकी तिजो-रियो मे बन्द है, मुक्त करना चाहिए ।

इस नाटक मे दिखाया गया है कि स्वार्थी समाज ने किस प्रकार व्यक्ति के जीवन को कष्टो से भर दिया हे । वतमान पूँजीवादी द्वारा निर्धन मजदूर का शोषण ही चित्रित किया गया है । इसमे दिखाया गया है कि शोषितवर्ग तग आकर अपने अधिकार पाने के लिए शोषकवग के विरुद्ध वैध उपायो से आन्दोलन करता है और शोषकवग उसकी बुरी तरह से अवहेलना ही नही करता, बल्कि शासकवग का आधार लेकर उसका सहार करने पर उतारू हो जाता हे ।

नाटक का नायक है मोहन । यह मज़दूरो का नेता है । एक ओर इसमे परोप-कार की भावना है, दूसरी ओर अपने घर की दरिद्रता से उत्पन्न प्रतिशोध की भावना । मिल-मालिक ख़जाचीराम का अत्याचार इसके विद्रोह को उग्रता देता है । परन्तु यह अहिसक क्रान्ति करता है । खजाचीराम न तो मजदूरो को पूरा वेतन ही देता है और न ही उन्हे महगाई भत्ता दता है । फलस्वरूप वे हडताल कर देते हैं । उन पर लाठी चाज होता है । मोहन के नेतृत्व मे मजदूर अहिसात्मक रहते हे और कष्ट सहते है । मोहन अपने आत्मत्याग से खजाचीराम का हृदय जीत लेता है । मजदूरो की माँगे स्वीकार हा जाती है । मोहन के साथ खज़ाचीराम अपनी लडकी मालती का विवाह भी कर देता है ।

'बन्धन' के कथानक द्वारा प्रेमीजी ने अहिसा द्वारा हिसा पर विजय दिखाई है । गाँधीवादी-समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की ओर सकेत किया है । सरला के ये शब्द ध्यान देने योग्य हे--'हमे यह इच्छा करनी चाहिए कि मालिक और मज़दूरो का भाव ही मिट जाए । सबकी आमदनी बराबर हो ।' गाधीवादी आर्थिक समाज वादी व्यवस्था पूँजीवादियो के हृदय परिवतन मे विश्वास रखती है । इसके लिए त्याग और सेवा की भावना को प्रमुखता दी जाती हे । मोहन खजाचीराम से कहता है —'मै यह नही मानता कि आप अमीर लोगो के पास हृदय नाम की कोई वस्तु नही है । वह है । वह स्वार्थ के कूडे के नीचे दब गया है । हमे अपने-आपको मिटाकर भी आपका हृदय खोज लाना होगा ।' उसकी बहन सरला भी यही कहती है—'मनुष्यता को पवित्र करने के लिए महान् आत्माओ को कष्ट सहना ही पडेगा । प्रत्येक हृदय मे करुणा का स्रोत है, उस स्रोत को पुन प्रकाशित करने के लिए भैया जैसे व्यक्ति को अपना जीवन दीपक की तरह जलाना ही पडेगा ।'

गाँधीजी कहा करते थे कि मनुष्यता को घृणा से नही प्रेम से जीता जा सकता है । सरला मालती से यही निवेदन करती है—'ये तुम्हारे पिता है । यदि तुम भी इहे प्यार न करोगी तो ये राक्षस हो जावेगे । इनसे रूठो नही, इनसे घृणा भी मत करो । लक्ष्मी के मोह मे ये तुम्हे भूल गये है । लेकिन तुम तो इन्हे न भूलो । इन्हे

समझाओ कि मनुष्य रुपये से ज्यादा कीमती है । इन्हे अपने प्रेम से जीतो । इनके हृदय मे प्रेम का दीपक जलाओ ।'

आज चारो ओर मनुष्य के निहित स्वाथ उसे ही खाये जा रहे है। स्वार्थ का अन्धकार हमारे विकास मे बाधक है, समता का शासन स्वार्थी लोग ही नही होने देते। 'बन्धन' का प्रकाश स्वार्थी बुद्धि पर करारी चोट करता है—'किसने अन्धकार को अपनाया है ? प्रकाश को अपनानेवाला कोई नही। इसीलिए प्रकाश भी अन्धेरे मे डूबा जा रहा है। ससार मे अन्धकार के भयकर बादल छाये हुए है, आकाश से पानी के स्थान पर अन्धकार बरस रहा है। समुद्रो मे पानी नही अन्धकार ही भरा हुआ है। अन्धकार तो यह हमारी आँखो मे चमकनेवाला अभिमान है। अन्धकार तो हमारे प्राणो मे बोलनेवाली स्वार्थ की धडकन है, अन्धकार तो हमारे खून मे प्रवाहित होनेवाला लालच है।' और मानव की लोलुपता पर चोट करता हुआ वह कहता है—'मानव की पशुता ने शराब पीली है। मनुष्य अपने ही शरीर के अगो को काट रहा है। पागल कुत्ते की तरह मनुष्य जीभ खोले घूम रहा है।

'बन्धन' के नवीन सस्करण के सम्बन्ध मे प्रेमीजी ने लिखा है—'भारत स्वतन्त्र तो हो गया, लेकिन उसकी आर्थिक और सामाजिक समस्याएँ तो अभीतक उलझी हुई है। पूँजी और श्रम का सघर्ष चल रहा है। इस नाटक मे इस सघर्ष का गाँधीवादी हल है। प्रेमीजी की आकाक्षा है कि उनके खज़ाचीराम की भाँति ही प्रत्येक पूँजीपति कहे—'मै आज सब-कुछ दे डालना चाहता हूँ। यह तुम लोगो का ही तो रुपया है, जो हमने अपनी तिजौरियो मे कैद कर रखा है। लक्ष्मी को हमने कैद करना चाहा, लेकिन वह हमारी कैद मे खुश नही है। वह मुक्त होना चाहती है। जबतक वह मुक्त न होगी, ससार मे मारकाट, हिंसा बनी रहेगी।'

'छाया' मे प्रेमीजी ने एक ऐसे मध्यवर्गीय कवि 'प्रकाश' का जीवन चित्रित किया है, जो अपनी सरलता और सहृदयता के कारण पूँजीपति प्रकाशको और स्वार्थी एव ईर्ष्यालु मित्रो के जाल मे फँसकर निर्धन और ऋणी बन जाता है। अन्त मे उसकी पत्नी ठीक अवसर पर पहुँचकर उसको अपमानित होने और जेल जाने से बचाती है।

धन के अभाव मे मध्यवर्ग के लोगो का किस प्रकार नैतिक पतन हो जाता है और मध्यवर्गीय नारी अपने पुरातन सस्कारो के कारण तथा अपने एकनिष्ठ प्रेम से किस तरह अपने पति को सही रास्ते पर ले जाती है, यही 'छाया' नाटक के कथानक का मूलाधार है।

समाज और राष्ट्र दोनो से उपेक्षित व्यक्ति का जीवन कितना करुण बन जाता है, यही 'छाया' मे दिखाया गया है। व्यक्ति के शोषण का नगा रूप इस नाटक मे चित्रित किया गया है। व्यक्ति के अन्तर की बेबसी, जीवन के अभाव और

बाहरी पाखड एव कृत्रिम रूप का इसमे हाहाकार करता हुआ चित्र है। जीवन की गति को बदलनेवाले साहित्यकार के प्रति भी समाज उदासीन है' कवि प्रकाश, जिसकी कविताओ की एक-एक पक्ति पर जनता नाच उठती है, जिसकी कविताएँ जीवन देती है, उसके परिवार की छिन्नमूल अवस्था देखिए—

प्रकाश —विश्व-साहित्य को अमूल्य सम्पत्ति देनेवाला कवि, अपनी पत्नी की इज्ज़त ढकने के लिए एक धोती तक खरीदने मे भी समर्थ नही है। अपनी बच्ची को दूध पिलाने को भी दाम नही पाता। उस दिन जब साहित्य-सभा के मत्री मुझे मान-पत्र दे रहे थे, सभा के बाहर कचहरी का प्यादा समन लिए खडा था।'

माया जो रात को नसीम बनकर अपने भाइयो की कालेज की शिक्षा और पिता के विलासी जीवन का क्रम जारी रखने के लिए अपना शरीर बेचती है, पाखडी समाज का यथार्थरूप इन शब्दो मे सामने रखती है—'उधर देखो, उस पलग की सफेद चादर पर इस नगर के न जाने कितने रईस युवक और बूढे भी अपने हृदय की कालिमा बिखरा गये है।'

इस नाटक मे मानव के आर्थिक और सामाजिक दोनो ही प्रकार के जीवन के उत्थान की चेष्टा है। छाया कहती है—'रुपये को अपने सिर पर न चढने दो मनुष्यो! रुपये को मनुष्य का सुख न छीनने दो मनुष्यो! रुपये को मनुष्य का अपमान न करने दो मनुष्यो!' और 'पापी को हाथ पकड उठाना सीखो, उसके मुखपर अपयश की कालिमा पोतकर नीचे गिराना नही।'

'छाया' मे आहत और उपेक्षित मानव को आश्रय देने के लिए 'काम' का आधार प्रदान करने का भी प्रयत्न है। काम-समस्या की ओर लेखक ने सकेत किया है। प्रकाश का माया और ज्योत्स्ना की ओर आकर्षण इसका प्रमाण है। दोनो के ससर्ग से प्रकाश को शान्ति मिलती है। ये दोनो भी एक सुख का अनुभव करती है। रजनीकान्त भी शकर से उसके भीतर बहती काम-भावना की चर्चा करता हुआ नाटक की सेक्स-प्रधान विचार-धारा की ओर सकेत करता है। रजनीकान्त शकर से कहता है —'आपने जो दो मास तक मेरे 'हलाहल' का बिना वेतन लिए प्रबन्ध किया था, क्या वह केवल परोपकार की भावना से। एक खूबसूरत स्त्री के पास बैठने को मिलता था, इससे बडा वेतन एक नौजवान को क्या दिया जा सकता है?'

इतना ही नही, रजनीकान्त के मुख से लेखक ने वासना को ही व्यक्ति की मूल प्रवृत्ति कहलाया है। वासना का शिकार व्यक्ति कितना आत्म-पीडक और बनावटी है, देखिए —आदमीरूपी जानवर जब अपनी वासना को कपडे पहनाता है तो मुझे हँसी आती है। उपकार, दया, सहानुभूति, प्रेम और ममता ऐसे न जाने कितने नाम इस वासना के आप लोग रखते है। किसी की याद आपको सोने नही देती

किसी की आँखे आपको दिनभर काम नही करने देती, लेकिन आप लोगो मे इतना साहस भी नही कि अपनी इष्ट देवी से भी अपने हृदय की बात कह सके।'

समाज का नगा और वास्तविक चित्र 'छाया' मे अकित किया गया है। समाज-मनोविज्ञान को लेखक ने भली प्रकार पढा और समझा है। लेखक ने समाज की दुर्बलता पर रजनीकान्त के द्वारा चोट कराई है। वह कहता है—'पापी को पुण्य की ओर लौटने का अवसर ससार नही देता। जिसने अपने ओठो से शराब का गिलास एक बार लगा लिया, उसके विषय मे हवा सबसे कहती फिरती है यह शराबी है और फिर वह शराब पीना भी छोड दे तब भी वह शराबी ही है।' आज के न्याय पर टिप्पणी करता हुआ वह कहता है—'आजकल का न्याय है पूँजीपतियो, राजा, महाराजाओ और सम्राटो की सम्पत्ति और शक्ति की रक्षा करने का साधन। आजकल का न्याय शरीफो को बदमाश बनाने का शिकजा है।'

व्यक्ति के पतन का कारण समाज ही है। यदि समाज पापी के प्रति भी प्रेम और क्षमा से काम ले तो यह समस्या भी सुलझ सकती है। छाया कहती है—'अन्धकार का चश्मा लगाये हुए सभ्य पुरुषो, जरा अपनी आँखो का इलाज कराओ। जिन्हें आप पाप का पेड कहते है, उनमे भी पुण्य के फल लगते है। पापी को हाथ पकडकर उठाना सीखो, उसके मुँह पर अपयश की कालिमा पोतकर नीचे गिराना नही।'

'छाया' नाटक भावुकता-प्रधान नाटक है, इस पर किसी प्रकार के बुद्धिवाद को लादना उचित नही होगा। यदि लेखक बुद्धिवाद को लेकर चलता तो प्रकाशक और लेखक की समस्या का समाधान प्रस्तुत करता, किन्तु उसने तो प्रकाश की दुर्दशा दिखाकर एक भावुकतापूर्ण अपीलमात्र की है। उसने कोई मार्ग नही सुझाया है, मार्ग और समाधान की सुविधा समाज पर ही छोड दी है। बुद्धिवादी तो पश्चिमी प्रभाव मानकर चलता है। काम-भावना के सम्बन्ध मे भी यही बात माननी चाहिए। लेखक पर पश्चिमी यौन-भावना का प्रभाव नही है, आकर्षण मे एक पवित्रता और आदर्श है। कुछ आलोचको को भले ही यह कला के प्रति अन्याय जँचे, परन्तु प्रेमीजी अपने देश के स्वस्थ सस्कारो को भूलकर चलना नही चाहते। उनकी ज्योत्स्ना और माया दोनो ही पवित्र पात्र है। माया को नारी का कामिनीरूप मानकर उसे पुरुषत्त्व के लिए अनन्त तृष्णावाली कहना न केवल उसके प्रति अन्याय करना है, बल्कि यह भी प्रकट करना है कि आलोचक ने न तो नाटक की भाव-धारा को पहचाना है और न ही पूर्वापर प्रसग याद रखे है। माया तो समाज की आर्थिक बलिवेदी पर बलात् चढाई गई करुणा की पात्री है। वह अनन्त तृष्णा के कारण शरीर नही बेचती, बल्कि परिवार की आर्थिक दुर्दशा के कारण ही वैसा करती है। पिता के हटरो से विवश होकर वह नारकीय जीवन स्वीकार

करती है। वह तो प्राणो मे ज्वालामुखी समेटे है और उसकी आत्मा सहानुभूति का आश्रय चाहती है। छाया के शब्दो मे माया का रूप दर्शनीय है —'अपना सम्पूर्ण कलकमय जीवन लेकर भी चिर उज्ज्वल और चिर पवित्र है। स्नेह और ममता का प्रशान्त महासागर इसके हृदय मे उमड रहा है।'

'ज्योत्स्ना' के चरित्र मे एक बहिन की ममता और सहायता की आकाक्षा है। पुरुषमात्र के लिए नही, पति के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना उसमे है। वह तो रजनीकान्त की निगाहो मे भी पवित्र और पुण्यात्मा है। नारी के यह रूप भारतीय चरित्र की ही देन है। केवल काम-भावना का चित्रण करने के कारण से ही लेखक पर पाश्चात्य प्रभाव मान लेना युक्तिसगत नही है। वास्तव मे लेखक ने अपने नाटक द्वारा वर्तमान नारी-समस्या का भी समाधान निकाला है। नारी चाहे जिस स्थान और चाहे जिस रूप मे हो, हमारे लिए आदर, स्नेह और श्रद्धा की ही पात्री है।

वास्तव मे 'छाया' नाटक 'बन्धन' की अपेक्षा कही अधिक मर्मस्पर्शी और प्रभावोत्पादक है। आलोचको को इसमे उनकी बौद्धिक दुर्बलता दिखाई देती है, यथार्थ की दुनिया मे विचरण करते हुए भी कलाकार की भावुकता को वे नही जान पाते। 'छाया' के प्रकाश मे लेखक ने महत्त्वपूर्ण चोट जो समाज पर की है, क्या वह प्रेमीजी की कला को ठीक से न पहचान पानेवाले समालोचको पर लागू नही हो सकती ? वे लिखते है —'छाया पर प्रकाश डालते समय मुझे बहुत सकोच हो रहा है। यह नाटक मेरे प्राणो को फोडकर अपने आप प्रकट हो गया है। हमारे देश के गरीब साहित्यिको के स्वाभिमान के अन्त पुरो को कौन देखता है ? साहित्य-सेवा के प्रति समाज अपने कर्त्तव्य को न जाने कब समझेगा ? मेरे हृदय मे बहुत धुआँ जमा हो गया है। उसे रास्ता तो देना ही होगा। छाया मे भी मेरे हृदय का एक अश ही आ पाया है। पिछले पाच वर्षो मे ससार ने मुझे बहुत कुछ दिया है, मुझे वह सब वापस भी तो करना है।'

'ममता' प्रेमीजी का तीसरा सामाजिक नाटक है। यह नाटक प्रेम, कर्त्तव्य और ममता की कहानी है। सन्देह, विश्वास और छल का द्वन्द्व है। एक नवयुवक वकील रजनीकान्त नवयुवती कला से प्रेम करता है, वह उससे विवाह नही कर पाता कि रजनीकान्त के पिता के मित्र रायसाहब रमाकान्त उसे अपनी पुत्री लता से विवाह करने के लिए विवश करते है। कुछ दिन बाद रायसाहब का देहान्त हो जाता है तो उनका मैनेजर विनोद चालाक चाची की सहायता से लता से बलपूर्वक विवाह करने की तैयारी करता है। लता भागकर रजनीकान्त की शरण लेती है। रजनीकान्त लता से विवाह कर लेता है। विनोद इससे प्रतिशोध लेने की तैयारी करता है। कला प्राय रजनीकान्त के घर आती-जाती रहती है। विनोद इस परि-स्थिति से लाभ उठाता है। वह एक दिन रजनीकान्त की अनुपस्थिति मे लता से

जाकर क्षमा माँगता है और लता के मन मे कला के सम्बन्ध को लेकर रजनीकान्त के विरुद्ध विष भर देता है। कला और रजनीकान्त को एकत्र प्रेमालाप करते दिखाने के बहाने विनोद लता को भगाकर ले जाता है। इधर रजनीकान्त लता को न पाकर बहुत दुखी होता है उसे एक पुत्र भी लता से हुआ था। पुत्र का पालन-पोषण भी रजनीकान्त के लिए समस्या बन जाता है। कुछ दिन बाद कला के भाई यशपाल की प्रेमिका, जिसे विनोद ने भी फँसा रखा था, द्वारा विनोद के षड्यत्र का पता चल जाता है। विनोद जेल चला जाता है, किन्तु लता के मन मे रजनीकान्त के प्रति एक ऐसी भावना भर जाता है कि वह विनोद से मुक्ति पाकर भी घर नही लौटती। दिल्ली मे अध्यापिका का जीवन बिताती है। एक दिन उसे पुत्र की बीमारी का पता चलता है तो वह घर की ओर आती है। कई वर्ष की निरन्तर निराशा और प्रतीक्षा के बाद रजनीकान्त कला से विवाह करने जाते है। सहसा घर मे आग लग जाती है। लता घर मे घुसकर पुत्र की रक्षा करती है, किन्तु बुरी तरह झुलस जाती है। इसी समय कला और रजनीकान्त आ जाते है। यही नाटक समाप्त हो जाता है।

समस्त नाटक को पढ जाने और उसके कथा-प्रवाह को देखने से 'ममता' मे किसी विशेष समस्या को उठाया गया है, ऐसा नही जान पडता। किन्तु यदि घटना-चक्र पर ध्यान दिया जाये तो 'ममता' मे व्यक्ति और समाज को लेकर कई समस्याओ को उठाया गया है। व्यक्ति की समष्टि ही समाज है। अत व्यक्ति की समस्याएँ भी समाज की ही समस्याएँ है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है, उसके सामने यह समस्या सदा ही बनी रहती है कि वह अपने आस-पास के वातावरण मे रहनेवाले अथवा अपने से सम्बन्धित व्यक्तियो से कैसे बरते? कुछ तो उसे ममता, त्याग और विश्वास से पूर्ण हृदयवाले व्यक्ति मिलते है, कुछ सदेह-शकाओ से घिरे और कुछ छल कपट और प्रवचनाओ के पुतले। इनके बीच मे व्यक्ति का जीवन क्या से क्या बन जाता है, यही इस नाटक मे दर्शाया गया है। रजनीकान्त सरल चित्त, निष्कपट हृदय का व्यक्ति है, उसका सम्बन्ध एक ओर तो प्रेममूर्ति किन्तु भ्रम और ईर्ष्या से घिरी कला और लता से है, दूसरी ओर दुष्ट प्रकृति विनोद से। रजनीकान्त का जीवन सुखी होता है केवल उसके अपने विवेक से। अन्यथा तो उसने कष्ट ही उठाये। पुरुष के मन के भीतर जो प्रेम की सरिता उमडती है, उसका निर्वाह वह किस प्रकार करे, इसका निर्देश रजनीकान्त का चरित्र करता है। पुरुष अपने प्रेम की आँच से जातिवाद के लोहे को पिघलाकर अपने मन का स्वर्ण ढाल लेता है। व्यक्ति के जीवन मे आज भी समाज ने जो जातिवाद की दीवारे खडी कर रखी है, उनका समाधान रजनीकान्त इस प्रकार करता है—

'जातियो की सीमाए कृत्रिम है, जो हमे दुर्बल बनानेवाली है, मनुष्यता के टुकडे करनेवाली है। स्वभावत प्रत्येक मनुष्य एक ही जाति का है, मनुष्यता ही

उसका धर्म है । यदि अपनी ही जाति मे सम्बन्ध जोडना स्वाभाविक होता तो हृदय अन्य जाति के व्यक्ति के चरणो पर न्योछावर ही क्यो होता ?' समाज की रूढियो ने व्यक्ति को व्यक्ति के निकट आने मे जो बाधा डाल रखी है, उसका समाधान यही मिलता है ।

नारी के सामने भी जीवन को सुखी बनाने की समस्या है । क्या स्वतत्र और स्वच्छन्द रहकर वह सुखी रह सकती है ? या विवाह-बन्धन मे बँधकर ? प्रेमीजी ने लता और कला के उदाहरणो से समस्या का यही हल निकाला है कि नारी प्रकृति से दुर्बल है और बिना जीवन-साथी के वह छल-प्रपचमय ससार मे रह नही सकती ।

पुरुष के प्रति नारी का क्या भाव रहे जिससे कि वह सुखी रह सके, इसका उत्तर रजनीकान्त के शब्दो मे सुनिए—'नारी यह सोचती ही क्यो है कि पुरुष आठो पहर उसकी आँखो के सामने बना रहे ? उसे क्यो यह इच्छा होती है कि पुरुष का प्यार फिल्मो के नायको की भाँति मुखर हो ? क्यो नही नारी उसके मौन मे भी प्रेम के अक्षरो को पढती ?'

विश्वास, त्याग और प्रेम ही नारी का बल है, जब वह इन गुणो को छोडकर ईर्ष्या, अविश्वास और पलायन की प्रवृत्ति अपनाती है तो जीवन हाहाकार से भर जाता है । लता के मन मे कला के प्रति ईर्ष्या, रजनीकान्त के प्रति अविश्वास और सन्देह जागा तो उसने अपने जीवन को विषाक्त कर लिया । नारी का सुख है उसकी ममता । स्वय लता के शब्दो मे—'नारी के मन की ईर्ष्या मुझे यहाँ से ले गई थी । माँ की ममता उडा लाई ।' और 'मेरी सदेहशीलता ने स्वय मुझे ही दड दिया ।'

तो फिर नारी के स्वाभिमान का क्या हो ? इसका उत्तर है त्याग की भावना का विकास । लता ने त्याग का ही आश्रय लिया । मुशीजी से बाते करते हुए उसने कहा—'सीता-जैसी सहनशील नारी भी तो ससार मे दूसरी अवतरित नही हुई । मुझसे पति की जरा-सी उपेक्षा नही सही गई और मैने अपना, उनका और अपने बच्चे का जीवन नरक बना डाला । एक सीता थी जिसने निर्दोष होते हुए भी निर्वासन के दिन धैर्यपूर्वक काटे । पति के प्रेम पर अविश्वास नही किया, और बच्चो के प्रति माँ का कर्तव्य निभाते हुए, बच्चो को पिता की गोद मे देकर धरती मे समाकर अपने स्वाभिमान की रक्षा की ।'

नर और नारी को लेकर भी वतमान समाज के सामने नई चिन्ताए आई है, विवाह-विच्छेद शायद उसका परिणाम है । दोनो को एक-दूसरे की शायद आवश्यकता नही है, परन्तु यह तो अस्वाभाविक स्थिति है, यह तो प्रकृति का विरोध है । वास्तव मे नर और नारी एक-दूसरे के पूरक है । कला के शब्दो मे नर-नारी-सम्बन्धी समस्या का समाधान यह है —'जो पुरुष समझते हे कि पुरुष को नारी

की आवश्यकता नही और जो नारी समझती है कि नारी को पुरुष की आवश्यकता नही, वे दोनो अपने-आपको धोखा देते हैं।' यदि नर-नारी एक-दूसरे के पूरक हैं तो फिर अशान्ति, उखाड-पछाड और नरक का कोलाहल क्यो ? इसका उत्तर है, प्रेम का अभाव, पारस्परिक सौहार्द्र य और समझ की कमी। 'ममता' मे इसका प्रतिपादन किया गया है।

किन्तु आधुनिक पीढी इसका एकमात्र उपाय विवाह-विच्छेद ही मानती है। वह कहती है जब न्याय ने दुःखी नारियो के लिए मार्ग बना दिया है तब पति के अन्याय के आगे मस्तक झुकाने की क्या आवश्यकता है ? इसके विपरीत प्रेमीजी का रजनीकात कहता है —'असल वस्तु है सस्कारो का बदलना।' और यदि सस्कार न बदले जा सके तो उसका उत्तर है,—'यदि वास्तव मे विवाह के द्वारा दो जीवनो का सवनाश होता हो, एक जीवनव्यापी सघर्ष और अशान्ति की सृष्टि होती हो तो विच्छेद हितकर ही होता है।'

प्रश्न उत्पन होता है कि सस्कार कैसे बदले जाये ? इसका उत्तर प्रेमीजी आस्तिक दृष्टिकोण बनाने मे ही देखते है। विनोद-जैसा कुसस्कारी व्यक्ति अन्त मे छल-कपट को अनुपयोगी पाकर कहता है —

'मैं अब मृत्यु के तट पर खडा हुआ जीवन की अतिम घडियाँ गिन रहा हूँ। छल, प्रपच और हत्या ही मेरे जीवन के नित्यकर्म रहे है। कितनो की अरमानो से भरी बस्तियाँ मैंने उजाडी है। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक मे मेरा कभी विश्वास नही रहा। ससार मे ईश्वर नाम की कोई शक्ति है, इसे भी मै नही मानता था, किन्तु आज अनुभव करता हूँ कि कही ईश्वर है अवश्य, जो पापियो को दड देता है।'

इस प्रकार प्रेमीजी के सामाजिक नाटक भारतीय आदर्शों और मान्यताओ पर ही आधारित है, पाश्चात्य मतो का अन्धानुकरण उनमे नही है। सामाजिक समस्या-प्रधान नाटक लिखनेवालो मे प्रगतिशीलता के नाम पर उच्छृखलता का पोषण मिलता है। उनका दृष्टिकोण प्रचारात्मक अधिक है, फलत उनके साहित्य की चारुता ही नष्ट हो गई है। प्रेमीजी के नाटको मे यह दोष नही पाया जाता। सिद्धान्त वाद ने प्रेमीजी के पात्रो की मानव-हृदय की अभिव्यक्तियाँ दबाई नही है, उन्हे खुलकर सामने आने दिया है। बौद्धिकता के नाम पर वर्तमान नाटककारो मे जो एक अह या दम्भ का भाव आ गया है, प्रेमीजी की कला उससे दूर है। अपने व्यक्तिगत जीवन मे वे जितने सरल हृदय है, अपनी कला मे भी उतने ही निश्छल और सरल है।

डा० सोमनाथ गुप्त ने एक स्थान पर लिखा है—'प्रेमीजी के नाटक अपनी ऐतिहासिक परम्परा से विदा ले चुके ह। उन्होने व्यक्ति और समाज की समस्याओ

को अपना विषय बनाना आरम्भ किया है, परन्तु उन्हे उसमे सफलता नही मिली है। उनका कथानक तो स्पष्ट है, परन्तु समर्थन मे प्रौढता की कमी है।' डा० गुप्त के इस मत से हम बिल्कुल सहमत नही है। पिछले दो अध्यायो मे हमने प्रेमीजी के ऐतिहासिक और सामाजिक नाटको की समस्याओ का ही उद्घाटन किया है। इसे देखकर डा० गुप्त की आलोचना सारहीन जान पडती है। वैसे भी डा० गुप्त ने जो फतवा दिया है, वह उनके आलोचक का निष्पक्ष गुण नही है। निष्पक्ष आलोचक लेखक की प्रगति और उसके विकास का धीरज के साथ अध्ययन करता है। डा० गुप्त ने जब यह फतवा दिया था, तब से लेकर आजतक प्रेमीजी लगभग एक दर्जन नाटक और लिख चुके है। यदि प्रेमीजी ने नाटक लिखने बन्द कर दिये होते अथवा उनकी कला का मार्ग अवरुद्ध हो गया होता तो शायद डा० गुप्त का उक्त फतवा शोभन लगता।

पाँच

अभिनय की दृष्टि से प्रेमीजी के नाटक

साहित्य-शास्त्रियो ने ललित कलाओ मे काव्य, और काव्यो मे नाटक को श्रेष्ठ माना है। नाटक का दृश्यत्व होना ही उसकी श्रेष्ठता का कारण है। काव्य-कारो को शब्दो-द्वारा भावो का बिम्ब खडा करना पडता है। जब तक हमारी आँखो के आगे किसी भाव-विशेष का चित्र अकित न हो जाय, हम आनन्द नही ले सकते। शब्दो द्वारा कवि वैसा यथार्थ बिम्ब उपस्थित नही कर सकता जैसा नाटक मे अभि-नेताओ द्वारा किया जा सकता है। मूर्त का प्रभाव अमूर्त की अपेक्षा अधिक होता है। नाटक मे सामाजिक सब-कुछ सामने घटते देखता है। यही अभिनय है। वास्तव मे नाटक शब्द की व्युत्पत्ति नट् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है सात्त्विक भावो का प्रदर्शन। दूसरे अर्थ मे नाटक का सम्बन्ध नट अर्थात् अभिनेता से होता है, और उस की विभिन्न अवस्थाओ की अनुकृति को ही नाट्य अथवा अभिनय कहते हैं। अभिनय के द्वारा ही नाटक जनता के सामने जीवन का यथार्थ चित्र रखता है। नाटक का रगमच पर अभिनय होना उसकी पहली शर्त है। श्रव्य-काव्य से वह इसी बात मे तो अलग है। यदि अभिनय नाटक की शर्त न होती तो फिर दृश्य-काव्य की अलग कोटि निर्धारित करने की आवश्यकता ही न होती।

अभिनय नाटक का एक आवश्यक तत्त्व है, वस्तुत नाटकीय वस्तु की अभि-व्यक्ति का नाम ही अभिनय है। भारतीय आचार्यों ने तो—आगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक—अभिनय के चार भेद भी कर दिये है। वास्तव मे जो नाटक रगमच पर अभिनीत नही हो सकते, उन्हे दृश्य-काव्य कहलाने का अधिकार ही नही है। नाटक की रगमचोपयोगिता के बारे मे स्वय प्रेमीजी का कथन इस प्रकार है — 'नाटक लिखा जाए तो उसे खेला भी जाना चाहिए। खेला जा सके ऐसा ही नाटक लिखना चाहिए। मुझे इस बात का सन्तोष है कि मेरे नाटक देश के कोने-कोने मे खेले जा चुके है।' स्पष्ट है कि प्रेमीजी ने अपने नाटक अभिनय की दृष्टि से लिखे हैं।

आजकल कुछ आलोचको ने कुछ असमर्थ लेखको के स्वर-मे-स्वर मिलाकर अभिनयपूर्ण नाटको के लिए विभिन्न प्रकार की पाबन्दियाँ लगा दी है, जैसे—नाटक मे गीत नही होने चाहिए, स्वगत भाषण नही होने चाहिए, दृश्यो का परिवर्तन नही होना चाहिए, आदि-आदि। लेकिन जब हम नाटक को—जीवन की पूर्णता को स्वाभा-विक रूप मे प्रस्तुत करनेवाली साहित्य-विधा मानते हैं तो फिर ये प्रतिबन्ध क्यो ?

नाटक को सब कलाओ मे श्रेष्ठतम माना गया है, क्योकि सभी कलाओ का उचित समन्वय नाटक मे हो जाता है। नृत्य, सगीत, स्थापत्य, मूर्त्ति, चित्र और काव्यकला सभी का समावेश नाटक मे होता है। मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि का आधार नाटक मे बराबर बना रहता है। ऐसी दशा मे किसी विशेष गुरण-धर्म को वर्जित करना कहाँ तक उपयुक्त कहा जा सकता है ?

साधारणतया अभिनय योग्य नाटक मे देखना होता है कि उसका दृश्य-विधान कहाँ तक रगमचोपयोगी है, उसका यथावत् अभिनय हो सकता है कि नही, नाटक का कलेवर सीमित है या नही, कथोपकथन सक्षिप्त, सरल, सजीव, पात्रानुकूल और स्वाभाविक है या नही, रग-सकेतो का उपयुक्त प्रयोग किया गया है कि नही ? आदि। प्रेमीजी के नाटक प्राय इन गरणो से पूर्ण है। साहित्य और रगमच दोनो की ही निधि उन्हें कहा जा सकता है —

दृश्य-विधान—'रक्षाबन्धन' का दृश्य-विधान इस प्रकार है—१ चित्तौड के महाराणा विक्रमादित्य का भवन, २ मेवाड के वन की पगडडी, ३ राजभवन की वाटिका, ४ माडू का राजमहल, ५ चित्तौड का भीतरी भाग, ६ गगा-तट या चम्बल का तट। ये दृश्य आमानी से रगमच पर प्रस्तुत किए जा सकते है। दो दृश्यो के परिवर्तन मे बीच मे एक ऐसा दृश्य रखा गया है जो सुविधा प्रदान करता है। कोई अस्वाभाविक दृश्य भी नही है। नदी-तट के दृश्य के सम्बन्ध मे शायद आपत्ति हो। किन्तु चित्रकला की सहायता से पृष्ठ भूमि मे पर्दे पर यह दृश्य प्रस्तुत किया जा सकता है। चित्रकला की सजीवता मे किसे सन्देह हो सकता है ?

'शिवा-साधना' का दृश्य-विधान अवश्य ही निर्दोष नही कहा जा सकता, इसकी कहानी आगरा, दिल्ली, बीजापुर, रामगढ, जजीराद्वीप, पूना और सितारा मे फैली हुई है। इससे स्थान की एकता के साथ समय की एकता भी नष्ट हो जाती है। प्रथम अक का तीसरा दृश्य है बीजापुर का किला, जिसमे शाहजी को एक दीवार मे चुना जा रहा है। चौथा दृश्य है—रामगढ मे शिवाजी का मोरोपन्त से परामर्श। पहले दृश्य का पट-परिवर्तन करते ही उसकी ईटे आदि हटाने के लिए समय कहाँ से आयेगा ? तीसरे अक के दूसरे और तीसरे दृश्य भी विशाल है। आगे-पीछे इनका निर्माण करना सरल काम नही है।

'प्रतिशोध' मे अधिकाश घटनाएँ राजमहलो या जगलो मे घटती है। थोडे से श्रम और हेर-फेर से ही ये दृश्य प्रस्तुत किये जा सकते है। एक के बाद दूसरे दृश्य के निर्माण मे कोई कठिनाई नही होती, बल्कि सहायता ही मिलती है। नदी-तट, मन्दिर और लाल किला के दृश्य पर्दों की सहायता से उपस्थित किये जा सकते हैं। 'आहुति' के दृश्य भी 'प्रतिशोध' के ही अनुकरण पर रखे गये है। 'स्वप्न-भग'

का दृश्य विधान 'शिवा-साधना' की भाँति सदोष है। दारा के महल के बाद ताजमहल का चबूतरा कष्ट-साध्य है।

'विषपान' अभिनय के लिए उपयुक्त नाटक है। इसका दृश्य-विधान अधिक सरल और कम श्रमसाध्य है। वाटिका, राजमहल, पगडण्डी, झील का तट, राज-दरबार आदि दृश्य ही इसमे रखे गये हैं। एक के बाद दूसरे दृश्य को सरलता से दिया जा सकता है, एक दृश्य का विधान तीसरे दृश्य मे काम आ जाता है। 'विष-पान' की भूमिका मे लेखक ने नाटक की रगमच की उपयोगगिता पर विस्तार से विचार किया है।

'उद्धार' का दृश्य-विधान अत्यन्त उपयुक्त, सरल तथा नाटकीय है। पहले अक के दृश्य है—एक खेत, राजवाटिका, राजमहल, राजवाटिका, एक झोपडी, पहाड की तलहटी, राजदरबार। इनमे कोई भी ऐसा दृश्य नही जो आगामी दृश्य के निर्माण मे बाधक हो। छोटे-से-छोटे निर्माण योग्य दृश्य के पहले ऐसा दृश्य है, जिसे बनाने की आवश्यकता ही नही। दूसरे तीसरे अको मे भी यही सुविधा है। राजभवन के पहले जगल या वाटिका के दृश्य है, जिनसे राजभवन के दृश्य बनाने मे सहायता मिल जाती है।

'शपथ' मे पहले अक मे—वाटिका, अन्त पुर, वन-पथ, सैनिक-शिविर, उपवन, शयन-कक्ष, गुहा-द्वार, मार्ग आदि दृश्य है। इनमे कुछ को पर्दे की सहायता से पृष्ठभूमि मे दिखाया जा सकता है, कुछ को एक के बाद प्रयोग मे लाया जा सकता है। शेष अको मे भी यही स्थिति है। तीसरे अक के दृश्य तो प्राय एक-दूसरे के बहुत ही सहायक है।

'प्रकाश-स्तभ' की भूमिका मे प्रेमीजी ने कहा है—'इस नाटक का रचना-कौशल मेरे अन्य नाटको से थोडा भिन्न है। मेरा यह नाटक केवल दो सेटिंग्स पर खेला जा सकता है और दृश्यो की सख्या भी इसमे थोडी है।' लेखक ने सम्पूर्ण नाटक मे जो दृश्य रखे है, वे इस प्रकार है—सरोवर का तट (पहले अक के दोनो दृश्यो मे यही रहता है), गुफा का दृश्य (दूसरे अ क के तीनो दृश्यो मे यही रहता है) और तीसरे अक मे भी यही दृश्य बना रहता है। इस प्रकार यह नाटक पहले नाटको की अपेक्षा दृश्य-विधान की दृष्टि से कही अधिक उत्तम है।

'शतरज के खिलाडी मे' फिर वही पुरानी पर्दा-प्रथा है। किन्तु दृश्य-विधान श्रमसाध्य नही है। सभी दृश्य एक-दूसरे के निर्माण मे सहायक है। 'कीर्ति-स्तम्भ' भी अन्य नाटको की भाँति तीन अको और अनेक दृश्यो मे विभाजित है। प्रेमीजी के अनुसार—'अको मे दृश्यो को विभाजित करने से रगमच पर अधिक क्रियाए एव अधिक घटनाए होती हुई दिखाई जा सकती है, जिससे नाटक मे अधिक चुस्ती और गति आती है।' इस नाटक मे एक भी ऐसा दृश्य नही जो मच पर न दिखाया

जा सके। राजमहल, मन्दिर, वन, पर्वत-प्रदेश आदि के स्थानो को तो उस दृश्य से सम्बद्ध पर्दों और पखवाइयो से दिखाया जा सकता है। 'कीर्ति-स्तम्भ' के लिए चित्रकला और काडबोर्ड से सहायता ली जा सकती है। वास्तव मे दर्शको की कल्पना पर भी विश्वास करके चलना चाहिए। इस नाटक मे युद्ध आदि के दृश्य सूच्य-वस्तु के रूप मे प्रस्तुत किए गये है। नदी आदि का दूर से अनुमेय रूप ही उपस्थित किया गया है। अग्नि का दृश्य भी सूच्य-वस्तु है। हाथियो, घोडो, पशु-पक्षियो के लिए कार्ड-बोर्ड या पर्दों से सहायता ली जा सकती है और इनकी बोलियाँ रिकार्डो की सहायता से पृष्ठभूमि से दी जा सकती है। गुफा और पाषाण खडो के दृश्य श्रमसाध्य तो है, परन्तु असभव नही।

'सरक्षक' मे दृश्य इस प्रकार है—राजमहल का शयनकक्ष, वन-प्रदेश, विशाल कक्ष, मैदान, नदी-तट, राज-सभा। ये सभी दृश्य प्रथम अक मे है और एक-दूसरे के साधक नही है। असभव और श्रमसाध्य भी कोई नही है। दूसरे अक मे प्रथम दृश्य एक खेत का है। दूसरा दृश्य युद्ध के मैदान का जिसमे नेपथ्य का प्रयोग है, अत मच पर दृश्य-विधान की आवश्यकता ही नही। तीसरा दृश्य महल का है, चौथा नदी का तट है। पाँचवा राजसभा का कक्ष। तीसरे अ क के दृश्य पहले और दूसरे अ को के ही समान है। 'विदा' की रचना भी रगमच को ध्यान मे रखकर ही की गई है।

'साँपो की सृष्टि' रगमच के अधिक अनुकूल है। नाटक का घटनाकाल बहुत छोटा-सा ही है। घटनाओ के घटने के स्थान भी दो ही है, दिल्ली और ग्वालियर। पहला अक कमलावती के महल के सामने समाप्त हो जाता है। दूसरा अलाउद्दीन के महल मे। तीसरा ग्वालियर के किले के एक महल के सामने के उद्यान मे। दृश्यो की सख्या भी अधिक नही है। पहले शक मे चार दृश्य, दूसरे मे तीन और तीसरे मे दो दृश्य। क्रमश दृश्यो की सख्या घटती गई है। पहले अक के चारो दृश्यो का स्थान एक ही है, अत दृश्य-परिवतन का प्रश्न ही नही उठता, सरलता से ही नूतनता दी जा सकती है। यही स्थिति अन्य दृश्यो की भी है।

प्रेमीजी के सामाजिक नाटक रगमच के और भी निकट है। 'बन्धन' और 'छाया' के तो अनेक बार अभिनय हो चुके है। नवीन प्रकाशित 'ममता' के सम्बन्ध मे प्रेमीजी का कथन ही अभिनेयता की पुष्टि करता है —'इस नाटक की रचना-शैली मेरे पहले नाटको से कुछ भिन्न है। यह सारा नाटक एक ही स्थान पर समाप्त हो जाता है। केवल एक सेट का निर्माण करना पडेगा और सारा नाटक उस पर खेला जा सकेगा। सारे कथानक को एक ही स्थान पर केन्द्रित करना जरा कठिन काम है और मुझे हर्ष है कि यह नाटक रगमच पर पूर्ण सफल होगा। इस नाटक मे मैने अक भी केवल दो ही रखे है। ऐसा करना अभिनय करनेवालो के लिए सुविधाजनक रहेगा। इस तरह नाटक दो भागो मे बँट जाता है और दर्शको को एक अक अर्थात्

एक भाग के पश्चात् थोडा विश्राम देकर अगला अक अर्थात् अगला भाग दिखाया जा सकता है।' सम्पूर्ण नाटक रजनीकान्त के घर पर ही घटित दिखाया गया है। इस प्रकार रक्षा-बन्धन से ममता तक आते-आते प्रेमीजी दृश्य-विधान के सम्बन्ध मे बहुत ही सावधान जान पडते है।

कलेवर—कलेवर की दृष्टि से प्रेमीजी के नाटको मे क्रमिक विकास दिखाई देता है। आरम्भिक नाटको मे उन्हे पात्रो की अधिक सख्या रखने का मोह था, किन्तु धीरे-धीरे वे पात्रो की सख्या कम करते गये है। वैसे अधिक पात्रोवाले नाटको मे भी जो पात्र है, उनका रगमच पर आगमन यदा-कदा ही होता है। 'रक्षा-बन्धन' और 'शिवा-साधना' मे पात्रो की सख्या सबसे अधिक है। 'रक्षा-बन्धन' मे बीस पात्र है और 'शिवा-साधना' मे पचास। 'शिवा-साधना' की भूमिका मे प्रेमीजी ने लिखा है—'इस नाटककी पात्र-सूची पर्याप्त लम्बी होगई है, लेकिन इससे नाटक के गठन मे कोई शिथिलता नही आई, क्योकि अनेक पात्र ऐसे है जो एक-एक या दो-दो दृश्यो मे आते है, मुख्य पात्र तो शिवाजी, जीजाबाई, रामदास और औरगज़ेब ही हैं, जिनका अस्तित्व पहले अक से अन्तिम अक तक बना रहता है। इन्ही पात्रो के कारण नाटक के दृश्य अक तक एक सूत्र मे बँधे हुए है।' इस सफाई पर भी यह मानना ही पडेगा कि पॉच अको मे फैला यह नाटक निश्चय ही कलेवर की वृद्धि करता है। 'प्रतिशोध' मे भी पच्चीस पात्र है। 'आहुति' इस दृष्टि से अधिक सफल है। केवल तेरह-चौदह पात्र। इस नाटक का अभिनय भी दो घण्टे मे सरलता से हो सकता है। 'स्वप्न-भग' इससे भी आगे है। इसके सम्बन्ध मे लेखक का वक्तव्य इस प्रकार है—'इस नाटक मे पात्रो की सख्या थोडी है। दारा, औरगज़ेब, शाहजहाँ और प्रकाश पुरुष-पात्रो मे तथा जहाँनारा, रोशनआरा, नादिरा और वीणा स्त्री-पात्रो मे बार-बार रगमच पर आते है। शुजा, मुराद, जयसिह, जसवतसिह और महारानी महामाया आदि इस कथा से सम्बन्धित अनेक पात्रो को रगमच पर नही लाया। यदि पात्रो की सख्या बढा देता तो नाटक बडा भी हो जाता और मुख्य पात्रो का पूरा विकास भी न हो पाता।'

'विषपान', 'उद्धार' 'भग्न प्राचीर', 'प्रकाश-स्तम्भ', 'शपथ', 'सरक्षक' आदि मे भी पात्रो की सख्या अनुचित नही कही जा सकती। 'कीर्त्तिस्तभ' मे पात्रो की सख्या उचित है, पृष्ठसख्या की दृष्टि से यह कुछ बडा जान पडता है, परन्तु इसके कलेवर के सम्बन्ध मे प्रेमीजी की सफाई इस प्रकार है—'नाटक मे पात्रो की सख्या अधिक नही होनी चाहिए। थोडे पात्रो के चरित्र विकसित करने मे सुविधा रहती है। इस नाटक मे मालवा के सुलतान, गुजरात के बादशाह, दिल्ली के बादशाह, सग्रामसिह की माता, सिरोहीनरेश और उसकी पत्नी, मेवाड की राजकुमारी आनन्द-देवी, राव सूरतान आदि जिनका कथानक से कुछ सम्बन्ध है, रगमच पर लाये ही

नही गये । किसी पात्र को एक-दो दृश्य मे लाना कुछ जँचता नही है । उनके चरित्रो को भलीभाति प्रकट करने के लिए उनसे सम्बन्ध रखनेवाले दृश्य बढाने पडते है और नाटक उपन्यास की भाँति बृहदाकार हो जाता है ।

नाटक मे अधिक पात्र नही होने चाहिए—इसी प्रकार कथानक का फैलाव बहुत लम्बी अवधि मे नही करना चाहिए। समरभूमि मे अस्सी घाव खानेवाले पराक्रमी सग्रामसिह का चरित्र भारतीय इतिहास मे अपने शौर्य, सूझ-बूझ और प्रभाव मे बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । इस नाटक मे यदि मै उनके सम्पूर्ण जीवन के चित्रण के मोह मे पड जाता तो नाटक अपने उद्देश्य को तो खो ही देता, साथ ही कथानक की कडिया शिथिल हो जाती । अत 'कीर्त्तिस्तम्भ' का कथानक बहुत थोडा सा रखा गया है ।'

प्रेमीजी के ऐतिहासिक नाटको मे सीमित कलेवरता की दृष्टि से 'साँपो की सृष्टि' सर्वोत्तम है । इसमे तीन पुरुष-पात्र और पाच स्त्री-पात्र है, इनमे भी स्त्री-पात्र तो तीन ही प्रमुख है । पुरुष-पात्रो मे खिज़र के दर्शन भी कम ही होते है ।

कहानी भी बडे कौशल से प्रस्तुत की गई है । यद्यपि अलाउद्दीन के युग को पूरी तरह चित्रित करने की चेष्टा की गई है, किन्तु पात्रो के कथोपकथनो के माध्यम से । सब घटनाएँ सूच्य वस्तु के द्वारा दी गई है । मुख्य रूप से तो अलाउद्दीन के जीवन के अन्तिम दिनो मे हुई घटनाओ का ही चित्रण है । सीमित कलेवरता की दृष्टि से छाया, बन्धन, ममता और साँपो की सृष्टि को सर्वोत्तम कहा जा सकता है । 'ममता' इनमे भी उत्तम है ।

कथोपकथन—प्रेमीजी के नाटको के कथोपकथनो के सम्बन्ध मे आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे लिखा है—'नाटको का प्रभाव पात्रो के कथोपकथन पर बहुत कुछ अवलम्बित रहता है । श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' के कथोपकथन 'प्रसाद'जी के कथोपकथनो से अधिक नाटकोपयुक्त है । उनमे प्रसगानुसार बातचीत का चलता स्वाभाविक ढग भी है और सर्व-हृदयग्राह्य पद्धति पर भाषा का मर्म-व्यजक अनूठापन भी । 'प्रसाद'जी के नाटको मे एक ही ढग की चित्रमयी और लच्छेदार बातचीत करनेवाले कई पात्र आ जाते है। प्रेमीजी के नाटको मे यह खटकनेवाली बात नही मिलती ।'

आचार्य शुक्ल की इस आलोचना से विपरीतता नही होनी चाहिए । मतभेद के लिए गुजायश नही है । वास्तव मे प्रेमीजी के कथोपकथन सरल, सरस, सक्षिप्त, प्रभावोत्पादक, व्यजक, स्वाभाविक और पात्रानुकूल है । हृदय के उद्गारो की आँधी को कम-से-कम शब्दो मे व्यक्त करना प्रेमीजी को ही आता है । 'प्रसाद'जी मे भी यह गुण था । 'रक्षाबन्धन' मे दुखी श्यामा से प्रश्न किया गया—'तुम कौन हो, यदि कष्ट न हो तो मुझे भी अपने दुख मे भाग लेने दो' । श्यामा ने उत्तर दिया—'सुनो

मैं हूँ, डाल से तोडी हुई, पैरो से रौदी हुई कलिका, मै हूँ मूर्च्छित हाहाकार, मैं हूँ ऊपर से बन्द किन्तु भीतर चिर प्रज्वलित ज्वालामुखी।'

अपनी व्यजना और तीखी चोट करने के कारण प्रेमीजी के कथोपकथन बहुत ही प्रभावोत्पादक हे ।'बन्धन' और 'छाया' के कथोपकथन बहुत ही चोट करने-वाले है। 'बन्धन' का प्रकाश तो जो कुछ भी कहता हे, व्यग्य से परिपूर्ण ही रहता है। मालती पूछती है—'तो आज मिल मे काम नही हुआ ?' इस पर प्रकाश कहता है—'काम तो बहुत हुआ। कई मजदूरो के सिर फटे। बहुत-सा कोलाहल हुआ। पुलिस आई, डाक्टर आये। शहर के नेता आये, सरकार के मैजिस्ट्रेट आये। इतना काम तो मिल मे पहले कभी नही देखा।' और भी—'हिसा करना ही मनुष्य की विजय है। देखती नही हो ये अपने विलास के साधन। सोने-चाँदी के बर्तन, सोफे-कोच, मोटर-बग्घी! ये सब क्या है ? ये इन्सान की लाशे है। न जाने किस-किस को मारकर उन की खाले हम जमा किये बैठे है।' प्रकाश के कथोपकथनो मे पूँजीवादी मनोवृत्ति पर सर्वत्र कठोर व्यग्य मिलता है। 'छाया' मे रजनीकान्त भी व्यग्यात्मक सम्वाद बोलता है। वर्तमान समाज के पाखड पर वह करारी चोट करता है।

प्रेमीजी के कथोपकथनो की एक बडी विशेषता यह है कि वे आधुनिक युग के अनुकूल है, उनमे हमारे दैनिक जीवन के सबध मे, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक समस्याओ के सम्बन्ध मे प्रकाश डाला गया है। इसी कारण वे सामाजिको को अपील करते है। लगता है जैसे लेखक हमारे मन की ही बात कह रहा है। उनके सम्वाद पात्रो की मनोदशा, उनके बौद्धिकस्तर और उनकी स्थिति के सर्वथा अनुकूल है। प्रसादजी के पात्रो की भाँति दार्शनिकता से लदे हुए नही।

प्रेमीजी के कथोपकथनो की बडी विशेषता है, मनोवैज्ञानिकता। इनमे प्रसगा-नुसार बातचीत का चलता स्वाभाविक ढग भी मिलता है। जैसे जैसे भावावेश बढता जाता है, वैसे-ही वैसे भाषा की धारावाहिकता भी बढती जाती है, 'उद्धार' मे मालदेव और कमला के सम्वादो मे यही गुण है —

कमला—मानव कल्पना और अनुभूति को आँखो से देखे तो उसे सब कुछ दिखाई दे।

मालदेव—इस छोटे से फूल मे ?

कमला—जितना दिखाई देता है, उससे कही अधिक व्यापक वस्तु का विस्तार होता है। यह कठोर शरीर के प्राचीर को चीरकर प्राणो मे तीर की तरह प्रवेश करता है।

मालदेव—मेरे प्राणो मे कभी सुमन-सौरभ शर ने प्रवेश नही किया।

कमला—स्वार्थ और दम्भ ने प्रेम और सहानुभूति जैसी सुरभित और कोमल भावनाओ के लिए वहाँ स्थान छोडा ही नही है।"

'विदा' मे जेबुन्निसा, दुर्गादास, औरगजेब के सम्वादो की भी यही विशेषता है। वैसे अन्य नाटको मे भी इसी कोटि के सम्वाद सर्वत्र पाये जाते है।

रगमच के लिए नाटको मे स्वगत-कथन का अनेक लेखक महत्त्व नही मानते। ऐसे स्वगत-कथन जो रगमच पर अन्य पात्रो की उपस्थिति मे किसी पात्र द्वारा व्यक्त किए जाते है, अवश्य ही अस्वाभाविक होते है किंतु जहाँ पात्र अकेला ही मच पर है वहाँ वह अपने उठनेवाले भावो को व्यक्त करता है। ऐसे स्वगत अस्वाभाविक नही कहे जा सकते। इन स्वगतो को एकात-भाषण कहना चाहिए। ऐसे एकात भाषण प्रेमीजी के प्रारभिक नाटको मे कही-कही पाए जाते है। स्वगत भाषण का तो पूर्ण बहिष्कार किया है। अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण जहाँ भी किया जायेगा, वहाँ एकात-भाषण का सहारा लेना ही पडेगा। यह सच है कि प्रेमीजी ने एकात-कथनो से बचने की चेष्टा की है, किन्तु फिर भी उनके नाटको मे कथोपकथन स्वगत के रूप मे आये ही है। कर्त्तव्य-पथ पर चलनेवालो की बलिदान भावना और मूक प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए एकात-कथनो का आश्रय लिया है।

परन्तु इन एकात-कथनो मे कही-कही एक बडा दोष यह आ गया है कि वे आवश्यकता मे अधिक लम्बे है। उदाहरण के लिए 'स्वप्न-भग' के पहले अक के पाँचवे दृश्य के आरम्भ मे रोशनआरा का एकात-कथन लिया जा सकता है। गीत के बाद वह पूरे एक पृष्ठ तक चिन्तन करती है। गीत भी उसका एकात-कथन की भाति है, ऐसी स्थिति मे इतना लम्बा एकात-कथन मन को उबा देनेवाला है। इस नाटक मे शाहजहाँ और दारा के एकात-कथन भी लम्बे है।

एकात-कथनो के अतिरिक्त अन्य पात्रो के कथोपकथन भी कई नाटको मे अपेक्षाकृत अधिक लम्बे हैं। 'रक्षा-बन्धन' मे चारणी, विक्रम, माया, हुमायूँ, शाहशेख औलिया, बाघसिंह आदि के सम्वाद बहुत लम्बे है। कर्मवती के एकात-कथनो ने ही इसे पर्याप्त नीरसता दी थी, फिर ये लम्बे कथनोपकथन ! 'शिवा-साधना' मे भी लम्बे कथोपकथन रखे गये है। रामदास, शिवाजी, ममीदखाँ, जेबुन्निसा आदि के सम्वाद अनावश्यक रूप से लम्बे है। चौथे अक के चौथे दृश्य के आरम्भ मे जेबुन्निसा का गान और एकात-कथन उपन्यास की वर्णनात्मकता ला देता है। समस्त दृश्य मे ज़ेबुन्निसा के सम्वादो की यही स्थिति है। इसी प्रकार 'कीर्त्ति-स्तम्भ', 'विदा', 'ममता' मे भी सक्षिप्त कथोपकथनो के लिए सावधानी नही बरती गई। हाल ही मे प्रकाशित 'सवत् प्रवर्तन' मे भी एक-एक पृष्ठ के लम्बे सम्वाद है।

सक्षिप्त और नाटकीय कथोपकथनो की दृष्टि से 'विषपान', 'उद्धार', 'शपथ', 'प्रकाश-स्तम्भ', 'सरक्षक' को विशेष सम्मान मिलना चाहिए। 'उद्धार' के सम्वाद बहुत ही सक्षिप्त, चुस्त, प्रभावशाली और मार्मिक है। साथ ही अत्यधिक

सन्देशवाहक भी है। शायद ही ऐसा कोई दृश्य इस नाटक मे होगा, जिस पर दर्शक सम्वादो के कारण मुग्ध न हो जाएँ। एक उदाहरण लीजिए —

'**भूपति**-- नतकी, तुम यहाँ दर्शन-शास्त्र पढाने आई हो ?

मालती—(आह भरकर) हलाहल मे चन्दन की सुगन्धि स्वाभाविक नही जान पडती, किन्तु क्या करूँ, कभी-कभी पुराने सस्कार जाग पडते है !

सुजान—तुम विदुषी और गुणी हो मालती। फिर किसलिए, तुच्छ नतकी बनी हो ?

मालती—समाज का न्याय माँ-बाप के अपराध का दड सन्तान को देता है।

सुजान—तुम अपने जीवन से घृणा करती हो नर्तकी ?

मालती—(हँसकर) घृणा ! किसलिए ? कला अपने-आपमे निर्दोष है, इसे जिस प्रकार के हृदय-प्याले मे रखोगे वैसी ही यह दिखाई देगी। मै कला की साधना करती हूँ, इसमे लज्जा की क्या बात है ?'

'साँपो की सृष्टि' के कथोपकथन भी 'उद्धार' की ही भाँति चुस्त, चुटीले, प्रभावशाली और सन्देशवाहक है। बल्कि इनमे कमक अधिक है, अत शीघ्र ही हृदय को पकड लेते है। काव्यात्मकता के साथ एक वेदना और प्रोत्साहन दोनो को साथ-साथ रख देना इस नाटक के सम्वादो का गुण है। देखिए—

'**देवल** विश्राम ! नारी का जीवन ऐसी यात्रा है, जिसमे कही विश्राम करने का अवकाश नही है। और सच्ची बात तो यह है कि दुखी जीवन विश्राम से और भी थक जाता है।'

'**कमलावती**—सपने आँखे खोलते है, बन्द कर लेते है, फिर खोलते है। वे पख फैलाते है। ऊँचे आकाश को देखते है। उडते है। क्षितिज को पार करने के प्रयत्न मे खो जाते है। तरणियाँ अनुकूल वायु पाकर तट पर आती है। प्रतिकूल अन्धडो के झोके खाकर फिर मँझधार मे जा पहुँचती है, किन्तु मानव वही है जो साहस न छोडे। हमे नए सपने जगाने है, उन्हे नई दिशाओ मे उडाना है।'

'**महारू**—प्रत्येक इन्सान की धडकनो मे जान होनी चाहिए। उसकी अभिलाषाओ के पखो मे आसमान के छोर नापने की जवानी होनी चाहिए।'

'साँपो की सृष्टि' मे आदि से अन्त तक बाहरी और भीतरी द्वन्द्व निरन्तर बना रहता है। एक अजीब हलचल-सी बनी रहती है, अत इस नाटक के कथोप-कथन भी आदि से अन्त तक ओजस्वी बन पडे है। इतिहास की घटनाओ का उल्लेख भी जिन सम्वादो मे है उनका भी अपना एक प्रभाव है, कोरी इतिहास-वर्णना वहाँ नही है।

रग-सकेत ही एक ऐसी विशेषता है, जिससे नाटक रगमच के अधिक उपयुक्त हो जाया करते है। प्रेमीजी के नाटको मे आरम्भ मे तो रग-सकेतो का उपयोग बहुत

लज्जित होकर दृष्टि नीची करना इत्यादि सब कायिक चेष्टाएँ इसीके अन्तर्गत आती है। प्रेमीजी ने स्थान-स्थान पर कोष्ठको मे आगिक अभिनय के लिए सकेत दिये है। जहाँ-जहाँ उन्होने चौककर, तलवार खीचकर, मदिरा-पात्र को नीचे रखकर, मसनद के सहारे बैठकर, इगित करके आदि शब्दो या वाक्याशो का प्रयोग किया है वहाँ आगिक अभिनय को पूर्णता दी है।

२ वाचिक अभिनय का सम्बन्ध वाणी से है। वचनो मे, स्वर मे विविधता लाना वाचिक अभिनय है। प्यारभरे उलहने से, व्यग्यभरे स्वर मे, उपेक्षापूर्ण हँसी के साथ, कठोर स्वर मे, क्रोधपूर्वक आदि शब्द-योजना का प्रयोग वाचिक अभिनय का सकेत है।

३ सात्त्विक अभिनय मे सात्त्विक भावो—स्वेद, रोमाच, कम्प, स्तभ, अश्रु आदि—के अभिनय का भाव रहता है। खोई हुई सी खडी है, भावाभिभूत होकर, आँखो मे अश्रु भरकर, रोमाच हो जाता है आदि शब्दावली को सात्त्विक अभिनय के लिए निदेश कहा जा सकता है।

४ आहार्य अभिनय मे वेश-भूषा, आभूषण, वस्त्र आदि साज-सज्जा का सकेत होता है। राजा, मत्री, सेनापति, सेवक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, सन्यासी, तपस्वी आदि सभी की वेश-भूषा अलग-अलग होती है। आहार्य अभिनय के सकेत प्रेमीजी के नाटको मे प्राय नही के बराबर मिलते है। यदि वे इधर आगे के नाटको मे ध्यान दे तो कही अधिक अच्छा हो।

कहना न होगा कि हिन्दी के अन्य प्रतिभाशाली विख्यात नाटककारो की अपेक्षा प्रेमीजी ने अपने नाटको मे अभिनय का अधिक ध्यान रखा है। अभिनय सफल बनाने मे कार्य-व्यापार, कौतूहल, जिज्ञासा और अकस्मात् घटनेवाली घटनाओ का भी बडा महत्त्व है। आरभ और अन्त भी प्रभावोत्पादक होना चाहिए। इस दृष्टि से भी प्रेमीजी के नाटक सफल कहे जा सकते है। इस विषय पर हम 'शिल्पपक्ष की दृष्टि से' शीर्षक के अन्तर्गत विस्तार से विचार करेगे।

एक बात और रगमच के सम्बन्ध मे प्राय लोग कहा करते ह कि नाटक रगमच के लिए नही लिखे जाते, नाटक के लिए रगमच होने चाहिए। हम इससे सहमत हे। रगमच विज्ञान के अन्तर्गत आता है। विज्ञान मनुष्य को सुविधा देता हे, न कि मनुष्य विज्ञान को। ऐसी दशा मे वैज्ञानिक उपायो द्वारा उपयुक्त रगमच की स्थापना होनी ही चाहिए। रगमचीय नाटक के सम्बन्ध मे 'कीर्तिस्तम्भ' की भूमिका मे प्रेमीजी लिखते है —'भारत के रगमचो को विज्ञान की पूरी-पूरी सहायता प्राप्त नही ह। यहाँ घूमनेवाला रगमच नही है, अत यहाँ का नाटककार दृश्य-रचना मे अनेक बन्धनो मे बँधा रहता हे। मान लीजिए अभी एक राजमहल का दृश्य दिखाया गया, इसके बाद फिर किसी बडे भवन के अन्दर का दृश्य दिखाना हे। आज यह भारत के रगमच पर

सभव नही है। एक गहरे दृश्य के बाद दूसरा दृश्य, जिसमे सजावट भी है, नही दिखाया जा सकता, इसीलिए दोनो के बीच कम गहरा दृश्य, जिसमे रगमच की बहुत कम चौडाई प्रयोग मे आये और सजावट भी न करनी पडे, रखना पडता है, ताकि रगमच का जो भाग पर्दे के पीछे है, उसमे आगामी दृश्य तैयार रहे। ऐसा करने मे कथा को कभी-कभी आवश्यक मोड देना पडता है, किन्तु यदि नाटककार रगमच का ध्यान रखता है तो उसे ऐसा करना ही पडता है।' प्रेमीजी के नाटको की रगमचीय उपयोगिता पर इस स्पष्टीकरण की छाया मे ही विचार किया जाना चाहिए।

छः

प्रेमीजी के नाटकों में गीत

काव्यो मे नाटक श्रेष्ठ है, इसका कारण यही है कि नाटक अपने काव्यत्त्व से रगमच पर प्रभावोत्पादकता उत्पन्न कर सामाजिक को रसलीन करता है। नाटक का उद्देश्य अन्य काव्यो की अपेक्षा अधिक रस-सचार करना है। यह रस-सचार केवल बाह्य दृश्य-विधान द्वारा ही नही हो सकता। बाह्य दृश्य-विधान एक साधन-स्वरूप है। भाव या रस हृदय की वस्तु हे। बाह्य दृश्य जबतक बिम्बरूप मे हृदय की वस्तु होकर भाव को प्रत्यक्ष रूप से उत्तेजित नही करता, तबतक रसानुभूति सम्भव नही है। नाटक मे यदि काव्यकृत अनुबधता नही रहे, तो वह आनन्द से बढकर उपहास या कौतूहल की वस्तु हो जाय।

रगशाला के अनुरूप नाटक मे काव्यत्त्व का निर्वाह बडी योग्यता और बहुज्ञता की अपेक्षा रखता है। पात्रो के सलाप और घटनाओ के चित्रण मे निर्देशन-निपुणता से दर्शको के चित्त पर ऐसा प्रभाव डाला जाना चाहिए कि लोकरुचि परिमार्जित होकर आदर्श की प्रतिष्ठा मे तत्पर हो जाय। यह काम काव्यत्त्व के निर्वाह से ही हो सकता है, किन्तु काव्यत्त्व के निर्वाह मे नाटक के वातावरण को ऐसा कवित्त्वपूर्ण नही बना देना चाहिए कि दुर्बोधता के कारण कार्य मे बाधा उपस्थित हो जाय।

प्रेमीजी ने कथोपकथनो को सर्वजन सुलभ और कार्य-व्यापारो की प्रगति के सहायक रूप मे रखा है। यद्यपि सम्वादो मे भी काव्यत्त्व की सरक्षा की गई है, किन्तु पद्य की प्रभावोत्पादकता को वे जानते है, इसलिए काव्यत्त्व के पूर्ण प्रवाह को गीतो द्वारा बहाया है। गीतो मे सगीत के कारण, अनुभूति की तीव्रता के कारण आत्म विभोर और रसलीन करने की जितनी शक्ति है, उतनी गद्य मे कहाँ ? गीतो की इसी शक्ति को समझकर प्रेमीजी ने बराबर अपने नाटको मे गीतो का प्रयोग किया है।

नाटक मे गीतो के औचित्य के सम्बन्ध मे प्रेमीजी का मत इस प्रकार है — 'इस युग के कलाकार चाहते है कि नाटको मे गीत न दिये जाये। यदि रगमच या चित्रपट का ध्यान न हो, तो नाटको से गीतो को निर्वासित किया जा सकता है। रससृष्टि मे सगीत बहुत सहायक होता है। आलोचक कहते है कि वास्तविक जीवन मे गानेवाले पात्र नही मिलते। पात्रो से गीत गवाना अस्वाभाविक बात है। यह ठीक है कि नाटक का प्रत्येक पात्र गायक नही हो सकता, न प्रत्येक स्थान गीतो के लिए उपयुक्त होता है। फिर भी नाटक मे दो-एक पात्र ऐसे रखे जा सकते है, जिनका गाना कहानी की स्वाभाविकता को नष्ट न करता हो। गीत कथानक के अनुकूल हो

और जो रस, जो वातावरण, जो प्रभाव लेखक उत्पन्न करना चाहता है उसको गहरा करनेवाले हो, मेरे नाटको के गीत कथानक के अग है।'

हमारे विचार मे तो गीत जीवन की स्वाभाविकता है। साधारण जीवन मे देखा जाता है कि वे व्यक्ति भी जिन्हे सगीत का तनिक भी ज्ञान नही होता, किसी विशेष मनोदशा की स्थिति मे गुनगुनाया करते है। सगीत के प्रति आकृष्ट होकर अपना काम छोड बैठना तो स्वाभाविक है। ऐसी दशा मे जीवन को स्वाभाविक रूप मे चित्रित करनेवाले नाटक मे गीत न हो, यह कैसे सम्भव है? हृदय और मस्तिष्क दोनो मनुष्यता की पूर्णता के द्योतक है। अनुभूति का हृदय से और विचार का मस्तिष्क से सम्बन्ध है। अनुभूति और विचार मनुष्य के जीवन को विकास की ओर ले जाते है। इनको लक्ष्य करके ही काव्य को विचारात्मक और भावात्मक रूप दिया गया है। नाटक अपने कथोपकथनो द्वारा विचारात्मक काव्य की कोटि मे आता है और गीतो के कारण से भावात्मक कोटि मे। मनुष्य के जीवन मे अनेक ऐसे क्षण आते हैं जब वह भावावेश मे होता है, अन्तर्लीन होता है, ऐसी दशा मे गीतो का सर्जन होता है। नाटक मे भी ऐसी ही स्थिति की अभिव्यक्ति गीतो द्वारा होती है। नाटक मे गीत सभी दृष्टि से होने चाहिये।

प्रश्न यह होता है कि नाटक मे गीत कहाँ हो और उनका रूप क्या हो? पहले प्रश्न का उत्तर तो यही हो सकता है कि वे उपयुक्त स्थान पर ही हो, वातावरण के अनुकूल ही उनको रखा गया हो। गीतो का रूप उनके गुण-धर्म के अनुसार ही होना चाहिये। गीतो का एक बाह्यस्वरूप है, दूसरा आभ्यन्तर। एक देह, दूसरा प्राण। भाव, विचार आदि गीत के बाह्यरूप हैं और ध्वनि, लय, आरोह-अवरोह, ताल, राग आदि उसका प्राण है। गीत वह है जो गाया जा सके, जिसमे रागात्मकता आत्म-निवेदन के रूप मे प्रकट हो। गीत का आकार सक्षिप्त होना चाहिए, उसमे भाव की एकता होनी चाहिए। एक केन्द्रीयभाव होना चाहिए, जो टेक द्वारा सुरक्षित रहे, अन्य पक्तियाँ विविध भावो द्वारा केन्द्रीयभाव की रक्षा करे।

प्रेमीजी के नाटको मे गीतो का सुन्दरता के साथ समावेश हुआ है। वे गीतो के अधिनायक है। प्रसादजी ने भी नाटको मे गीतो का प्रयोग किया है, किन्तु प्रेमीजी के गीत अधिक नाटकोचित है। भावावेश की स्थिति मे प्राय गीतकार कल्पना के लोक मे चले जाते है या दार्शनिक हो उठते है। प्रसादजी के गीतो मे यही दोष पाया जाता है। इसके विपरीत प्रेमीजी भावावेश के कारण कल्पना लोक तक जाते हुए भी ससार की यथार्थ भूमि को नही छोड पाते। दार्शनिकता का बोझ भी आप अपने गीतो पर नही लादते।

प्रेमीजी के गीतो मे नाटकीय उपयुक्तता प्रसादजी के गीतो की अपेक्षा अधिक है। उनकी स्वतन्त्र सत्ता चाहे हो न हो, वे वातावरण और प्रसग से, पात्र

के चरित्र और मनोदशा से अवश्य ही सम्बद्ध है। कवि-हृदय की भावुकता के पीछे प्रेमीजी नहीं भागे, नाटककार के सयम से ही आपने काम लिया है । भावो की सरलता और भाषा की प्रासादिकता के कारण कथानक को सजीवता देनेवाले उनके गीत अनायास ही प्रसाद से अधिक नाटकीय हो गये है। प्रेमीजी के नाटको के गीत कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण, समय और देश के अनुकूल तो ह ही, वे सामाजिको की भावनाओ के साथ भी जुडे ह ।

सम्वादो की भाँति ही प्रेमीजी के गीतो की भाषा सरल, सरस और प्रवाहमयी शब्दावली से युक्त है। साधारण सामाजिक भी उनसे प्रभावित हो सकते है। पात्रो के गहन सुख-दु ख की विभिन्न परिस्थितियो ने गीतो को जन्म दिया हे और वे भली प्रकार सगीतात्मक है। प्रेमीजी के सभी गीतो मे आदि से अन्त तक एकही भाव रहता है और वे स्पष्ट होते है। छायावादी युग के कवि होते हुए भी प्रेमीजी उसकी अस्पष्टता से प्रभावित नही हुए है। गीतो मे आये भाव इतने स्पष्ट है कि पूरा चित्र ही जैसे सामने आ जाता है ।

प्रेमीजी के गीतो ने ही नाटको को वास्तविक दृश्यकाव्य का रूप दिया है। युद्ध तथा जौहर आदि के दृश्य रगमच पर प्रदर्शित नही किये जा सकते, इनकी प्रतीति प्रेमीजी ने सम्वादो के साथ गीतो-द्वारा भी कराई है। गीतो की शैली सरल, स्पष्ट और सक्षिप्त होनी चाहिए। यह गुण प्रेमीजी के गीतो मे पूर्णतया पाया जाता है। भाषा की दुरूहता से प्रेमीजी बचते है और भावो की गहनता को पास नही फटकने देते। भाषा मे प्रसाद गुण वर्तमान है। प्रेमीजी के नाटको मे मुस्लिम भी है और हिन्दू भी। आपने अपने सम्वादो की भाँति गीतो मे भी मुस्लिम पात्रो से उर्दू-भाषा मिश्रित गीत गवाये है। उर्दू के भी प्रचलित शब्द ही लिये है।

भावानुकूल भाषा के द्वारा गीतो को प्रभावशाली रूप दिया गया है। राष्ट्रीय और देशभक्ति-प्रधान गीतो की भाषा मे ओज गुण है तो प्रेम और विरह-मिलन के गीतो मे माधुर्य। नृत्य-सम्बन्धी गीतो मे शब्द-साम्य और ध्वनि-साम्य का चमत्कार दर्शनीय है ।

सगीतात्मकता तो गीतो का प्राण है। शब्द-चयन के साथ लय, सुर, ताल, तथा राग-रागिनी का ध्यान भी आवश्यक है। प्रेमीजी के गीतो को हम सगीतात्मकता की दृष्टि से सफल कह सकते है। यदि शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया जाये तो प्रेमीजी ने समय के अनुसार ही राग-रागिनियाँ रखी है। सगीतशास्त्र के अनुसार गीतो के प्रकार खयाल, ध्रुपद, धमार, ठुमरी, टप्पा, कजरी आदि है। प्रेमीजी के अधिकतर गीत खयाल के अन्तर्गत आते है। राष्ट्रीय गीतो मे ध्रुपद का रग मिलता है। गजलो का गायन ठुमरी मे और त्योहार-सम्बन्धी गीतो का कजरी मे गायन हो सकता है।

गीतो मे ताल भी बडी नही है। अधिकाश गीत त्रिताल, दादरा और कहरवा मे गाये जा सकते है। मध्य और द्रुत लयो का ही प्रेमीजी ने अधिक उपयोग किया है।

विषय की दृष्टि से प्रेमीजी के गीतो का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है—१ राष्ट्र-प्रेम या देश-भक्ति सम्बन्धी, २ एकता के प्रचारक, ३ विरह-गीत, ४ मिलन-गीत, ५ प्रेमसूचक, ६ प्रयाण गीत, ७ मन की विवशता के द्योतक, ८ चरित्र के प्रकाशक, ९ भविष्य के सूचक, १० वन्दना-गीत, ११ त्योहार-सम्बन्धी, १२ निर्धनता-सम्बन्धी, १३ वातावरण के सृष्टा, १४ दार्शनिक और १५ प्रकृति-चित्रण-सम्बन्धी।

प्रेमीजी के नाटको मे देश-प्रेम और राष्ट्रीय गीतो की ही अधिकता है। उनके राष्ट्रीय गीत उदासीन और सुप्त जनता को जगानेवाले, देश का महत्त्व बताने वाले दृढ इरादे के सूचक है। इन गीतो मे ओजगुण पूर्ण मात्रा मे है। कर्त्तव्य की पुकार और आह्वान ने गीतो को ओजगुण दिया है। ये गीत प्रेरक भी है और उद्बोधक भी। 'रक्षा-बन्धन' मे चारणी के गीत प्रेरकशक्ति लिये है। एक नमूना देखिए —

'तेरी गौरवमयी कहानी,
प्राणो मे भर रही जवानी,
बलिपथ पर बनकर दीवानी,
जाती है तेरी सन्तान!
जय जय जय मेवाड महान्!'

और

'सोचो तो मेवाड-निवासी,
माँ को रहने दोगे दासी,
ओ बलिदानों के विश्वासी,
आगे कदम बढाओ!
वीरो, समर भूमि मे जाओ!!'

तीसरे अक के पाँचवे दृश्य मे जो समवेत गान—**सजनि! मरण को वरण करो री!**—है, वह तो नाडियो मे बलिदान का रक्त प्रवाहित करता है। इसी प्रकार 'प्रतिशोध' मे प्राणनाथ प्रभु के गीत निर्जीव प्राणो मे भी प्राण फूँकनेवाले है। अपनी आन के लिए युद्ध करने की ललकार उनके गीतो मे विद्यमान है। 'आहुति' मे चपला का गीत और सैनिको का गान भी इसी कोटि के है। 'शिवा-साधना' मे झण्डे का गीत भी राष्ट्र-प्रेम को जाग्रत करता है। 'शतरज के खिलाडी' मे ताडवी का गीत बहुत ही उत्तेजक है —

'जो हैं अग्नि पुत्र तूफानी,
हार उन्होंने कभी न मानी,
यम से भिड जाने की ठानी,
मर कर भी न वीर मर पाये !
रण के घन घिर-घिरकर आये !!
जन्म-भूमि का मान न जाए,
रजपूतों की आन न जाए,
बलिवेदी पर होड लगाए,
चले, चढे, चढकर मुसकाए !'

'उद्धार' के दूसरे अक के पाचवे दृश्य का समवेत गान भी प्रेरक है । नवीनतम रचना 'सम्वत्-प्रवर्त्तन' मे भर्तृहरि का गीत 'हम स्वाधीन देश के वासी बन्धन नहीं सहेंगे' भी राष्ट्रप्रेम के दीवानो की बलिदान गाथा को जगाता है ।

साम्प्रदायिक एकता प्रेमीजी के नाटको का लक्ष्य है । उनके हृदय मे एकता की भावना सदा ही जीवित जागृत रही है । 'रक्षाबन्धन' मे शाहशेख औलिया अपने गीत से एकता का पाठ पढाता है —

'आज खुदा खुद है हैरान !
पिला रहा है तुम्हें तआस्सुब की शराब शैतान !
कहाँ लिखा है, हमे बताओ खोलो वेद कुरान !'

'प्रतिशोध' की ज़ेबुन्निसा का भी यही लक्ष्य है—

'मन्दिर, मस्जिद या गिरजाघर,
सब मे रहता है वह दिलवर,
चल इन्सान दुई से बचकर,
पीले जाम मुहब्बत वाला ।'

एकता के दीवाने प्रेमीजी के पात्र गा उठते है—

'तोड मोतियों की मत माला !
मा का मान इसी माला से,
बच रे हृदय द्वेष-ज्वाला से,
कर ले पान प्रेम का प्याला !
इनमे कोई नही बडा है,
विधि ने इनको स्वय गढा है,
तू क्यो बनता है मतवाला ?'

प्रेमीजी के पात्रो के हृदय मे प्रेम का भी अजस्र स्रोत बहता है, विरह और

मिलन प्रेम के दो छोर है। दोनो की ही सुन्दर अभिव्यक्ति प्रेमीजी के गीतो मे मिलती है। विरह की व्यजना देखिए—

'प्रेम-पन्थ पर दु ख ही दु ख है,
प्रेम उन्ही का जीवन-धन है,
जिनकी सुख से चिर अनबन है,
उन पगलो का पागलपन है,
जिनसे सारा विश्व-विमुख है।'

'रक्षाबन्धन' की श्यामा की विरह-व्यथा भी दर्शनीय है। वह अपने विरह-व्यथित हृदय को इन शब्दो मे सान्त्वना देती है—

'अविरत पथ पर चलना री!
सरल चिता-शैया पर सोना,
कठिन दु ख सहना सब खोना,
मिट जाना पर विकल न होना,
तिल-तिल करके जलना री!'

मिलन-गीत भी उत्कृष्ट कोटि के हे, उनमे वासनात्मक उद्‌गार कही नही मिलेंगे। 'शिवा-साधना' की यमुना गाती है तो सईबाई प्रेमातिरेक से मूर्च्छित हो जाती है। प्रेमियो की दुनिया भी क्या ही निराली होती है —

'आज मिलन की निशि है प्यारी,
आसमान मे शशि मुसकाता,
प्राणों मे तूफान उठाता,
उधर पवन का झोंका आता,
आज बनी है दुनिया न्यारी!'

इसी प्रकार 'सवत्-प्रवर्तन' मे नर्तकी प्रेम को प्रकृति मे व्याप्त मानकर गाती है।

प्रेम की अभिव्यक्ति 'शतरज के खिलाडी' मे अख्तरी के गीतो मे हुई है। वह प्रेम को ही जगत् का जीवन मानती हुई कहती है —

'नीर है शोभा प्रकृति की,
प्रेम है जीवन जगत् का,
प्रेम से अपने हृदय को,
तू लबालब अब बनाले!'

'रक्षाबन्धन' की श्यामा और 'प्रतिशोध' की विजया तो प्रेम की ही मूर्त्तियाँ है। युद्ध के प्रसग मे जो राष्ट्रगीत है, वे प्रयाणगीत का अच्छा उदाहरण है।

वैसे यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि प्रसादजी ने चन्द्रगुप्त मे जो प्रयाण गीत लिखा है, वैसा प्रवाहमय और परिमार्जित तथा प्रभावशाली गीत प्रेमीजी के नाटको मे नही मिलता ।

मन की विवशता के द्योतक गीत आपने बहुत ही उत्तम लिखे है, इन्हे वेदना-गीत की सज्ञा भी दी जा सकती है । 'प्रतिशोध' की विजया प्रेम से कर्त्तव्य को ऊँचा स्थान देती हे, किन्तु मन की आँधी उसे उडा ले जाती है । निरन्तर कर्म-लीन उसकी आत्मा एकान्त क्षणो मे आकुल होकर कह उठती है —

बडा कठिन मन को समझाना,
क्षण-क्षण जतलाती हूँ मन को,
व्याकुल मत हो तू दर्शन को,
बाँध नियम मे निज जीवन को,
पर न मानता यह परवाना !'

'स्वप्नभग' मे जहाँनारा के गीतो मे मनोदशा के अच्छे चित्र हैं । 'प्रकाश-स्तम्भ' की पद्मा का गीत--**क्यो मृगी को बाण खाने मे बहुत आनन्द आता है**—हृदय की सच्ची तस्वीर है । 'उद्धार' की कमला के तो मन की दुनिया ही वेदना का निवास-स्थल है —

'किन्तु मेरे मन-निलय मे,
वेदना का है बसेरा,
ज्योति जगमग है जगत् मे,
किन्तु मेरा जग अँधेरा !'

मालती का तो प्राण-धन उसे बन्धन मे बाँधकर उसके प्राण लिये लेता है । विवश हृदय का इतना मार्मिक चित्रण अन्यत्र नही मिलेगा ।

प्रेमीजी के गीत पात्रो के चरित्रो के प्रकाशक भी हैं । 'स्वप्नभग' की रोशन-आरा मे प्रतिहिंसा, षड्यत्र और प्रलय की अग्नि है । वह इन शब्दो मे अपना परिचय देती है —

'मैं हूँ महाप्रलय की ज्वाला,
चाहा जगने मुझे दबाना,
चाहा मुझ को राख बनाना,
चाहा पैरों से ठुकराना,
उसने मुझे नहीं पहचाना,
मैंने पी प्रतिहिंसा-हाला !'

इसके विपरीत जहाँनारा का सरल और भावुक चरित्र उसके शब्दो मे इस प्रकार अकित हुआ है —

'अरे चाँद है क्यो मुसकाता,
पहने नक्षत्रो की माला,
आता करता हुआ उजाला,
मधुर सुधा बरसानेवाला,
नही जानता जग की ज्वाला,
इसीलिए तू हँसता आता ।'

प्रेमीजी ने अपने गीतो द्वारा अपने पात्रो के अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा चित्रण किया है। 'प्रतिशोध' मे प्राणनाथ प्रभु के गीत, 'शिवा-साधना' मे स्वामी रामदास तथा अकाबाई के गीत, 'स्वप्न-भग' के प्रकाश तथा वीणा के गीत, 'रक्षाबन्धन' की चारणी, श्यामा के गीत, 'आहुति' की चपला के गीत उनके हृदय मे प्रज्वलित देश-प्रेम की ज्वाला का परिचय देते है।

'शिवसाधना' मे गोपीनाथ का गीत—**सोच जरा मन में इन्सान**—उसके साधु चरित्र का चित्र है तो 'रक्षाबन्धन' का धनदास अपने गीत से अपनी धन-लोलुपता का परिचय देता है। 'प्रतिशोध' मे जेबुन्निसा का गीत उसके व्यापक चरित्र पर प्रकाश डालता है। वह विश्वप्रेम, मानवता की पुकार, कोमल हृदयता और शाति से परिपूर्ण है।

दरिद्रता की गोद मे पलनेवाले दीन-दुखियो के सरल तथा सादे चरित्र को प्रकट करनेवाले गीत भी प्रेमीजी के नाटको मे है। 'विषपान' का कलुआ अपने गीत से अपनी सरल प्रकृति की अभिव्यक्ति करता है। ✓'बन्धन' के भिखारी और बालिका देश की परिस्थितियो के साथ अपनी निर्धनता से दुःखी हृदय का भी चित्रण करते हैं, सरला के गीत उसके आहत हृदय की उदारता और व्यथा को प्रकट करते है।

भविष्य की घटनाओ के सूचक गीत भी नाटको मे मिलते है। 'आहुति' मे चपला का गीत दर्शको मे कुतूहल की सृष्टि करता है और उसका समाधान होता है यवनो के आक्रमण की सूचना से। गीत देखिए —

'पगली ! तू किस मद मे भूली !
आज हिल उठी है गिरि माला,
आज हुआ जीवन मतवाला,
पी-पीकर विनाश की प्याली !'

'विषपान' मे मेवाड की राजकुमारी कृष्णा प्रकृति के सुन्दर वातावरण मे कोयल के गान को बन्द करवाना चाहती है, क्योकि ससार की कुटिलता और उसमे फैले हुए विष मे कोयल की मधुर अमृतरूपी पुकार कुछ न कर सकेगी —

'जग को जीवन दे न सकेगी,
विष मे अमृत मत घोल,
कोयलिया मत बोल !'

इस गीत से आगामी दु खपूर्ण घटनाओ का पूर्वाभास होता है । अपने विवाह के समय भी कृष्णा का गीत दु खान्त परिणति की ओर सकेत करता है ।

ईश्वर अथवा अन्य देवी-देवताओ के वन्दना सम्बन्धी गीत भी प्रेमीजी के नाटको मे देखने को मिलते है । प्रेमीजी के अधिकाश नाटको का वातावरण युद्ध-प्रधान है, इसलिए युद्ध के देवता शिव और देवी दुर्गा की स्मृतियाँ नाटको मे अधिक हैं । जहाँ पीडा से छुटकारे का अनुरोध है, वहाँ ईश्वर की विनती है । 'रक्षाबन्धन', 'शिवा-साधना', 'प्रकाश-स्तभ', 'उद्धार' आदि मे शिव और दुर्गा की स्तुतियाँ हैं । 'शिवा-साधना' मे भवानी की स्तुति प्रवाहमय प्रभावशाली और पवित्रता की पूर्ति करती है । यह गीत प्रेरक भी है —

'जयति-जयति जय जननि भवानी !
नरमुडों की मालावाली !
क्यों है तेरा खप्पर खाली ?
मा, तेरे नयनो की लाली—
भरे राष्ट्र मे नई जवानी !'

'प्रकाश-स्तभ' के तीसरे अक के पहले दृश्य के अन्त मे शकर की स्मृति बहुत ही प्रभावशाली है । शब्द-चयन उपयुक्त, ओजगुणपूर्ण और वातावरण के अनुकूल है । 'उद्धार' मे '**कराला काली की जय हो**' गीत भी अपने ढग का अद्भुत है । काली युद्ध की देवी ही नही, उत्साह और प्रेरणादात्री भी है —

'तुम्हारी आँखो का सकेत,
मिला तो, हम हो गए सचेत,
करेगे प्राप्त मुक्ति अभिप्रेत,
लडेंगे हम नि सशय हो !
कराला काली की जय हो !!'

अनेक विद्वानो की सम्मति मे नाटको की उत्पत्ति सामाजिक कृत्यो, त्योहारो आदि के अवसरो पर होनेवाले नृत्य-गान आदि के द्वारा हुई । ऐसी स्थिति मे यदि नाटको मे त्योहारो का वातावरण अकित हो तो अच्छा ही है । इससे मनोरजन की सृष्टि मे भी सुविधा रहती है । प्रेमीजी ने अपने नाटको मे सामाजिक तथा धार्मिक वातावरण के अवसर पर त्योहारो से सम्बन्धित भावनाओ को व्यक्त करने के लिए मधुर गीत रखे है ।

'रक्षाबन्धन' मे राखी के त्यौहार की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की गई है । किन्तु राखी का त्यौहार केवल मनोरजन का ही नही, देश-रक्षा का भी प्रतीक है । झाँकी देखिए —

'तार-तार मे भरकर प्यार,
लाईं हम राखी अविकार,
इनको करो वीर स्वीकार,
फिर रिपु पर टूटो बन गाज !
प्रेम पर्व आ पहुँचा आज !!'

'आहुति' मे भैया-दूज की झाँकी प्रस्तुत की गई है —

'विमल दूज का दिन है आया ।
रण के रँग मे आँखें लाल,
करके आवे मा के लाल,
हम टीका करने ले थाल,
आई बन्धु साज दें भाल,
ऊषा ने नभ लाल बनाया ।'

दीन-दुखियो और निर्धनता के अभिशाप की अभिव्यक्ति करनेवाले गीत भी प्रेमीजी के नाटको मे है । इनके नाटक मे समवेदनात्मकता और भाव-प्रवणता की वृद्धि हुई है । करुणा-प्रधान होने के कारण रस-सचार मे भी ये गीत सहायक हुए हैं । भारतीय निर्धनता का अच्छा चित्रण इन गीतो मे हुआ है । बन्धन और 'स्वप्न-भग' मे विशेषकर इस प्रकार के गीत है । 'बन्धन' मे मजदूरो की दुरवस्था और उनके उत्साह के सूचक गीत हैं । सरला का गीत दुरवस्था का सूचक है —

'जल रे दीपक जल रे जल !
अम्बर मे घनमाला काली, काली निशा उठानेवाली,
अन्धकार की काली प्याली, गरज रही हिंसा अविचल !
चुकता जाता स्नेह तुम्हारा, सूख चली जीवनधारा,
मिटता जाता उजियारा, प्रलय चली आती अविरल !'

मजदूरो के उत्साह का सूचक गीत देखिए —

'हमी ने बाग लगाए है, हमी ने महल बनाए हैं ।
हमी ने राज जमाए हैं, हमारी ही खाली झोली ।
अभी तक हम जलते आए, कटीला पथ चलते आये ।
हृदय अपना दलते आए, मुक्ति की वशी अब बोली !'

'स्वप्न-भग' की वीणा का गीत गरीबो के जीवन का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है —

'हमने श्रम कर बाग लगाए,
हमने श्रम कर महल बनाए,
हमने सिर दे राज्य जमाए,

बदले मे पाया विष-प्याला !
कौन गरीबों का रखवाला !'

वातावरण को प्रस्तुत करनेवाले गीत तो प्रेमीजी की विशेषता है। प्रेमीजी के गीत युद्ध के वातावरण को विशेपरूप मे चित्रित करते है। अनेक नाटको मे कुछ पात्र—चारणी, ताडवी आदि—ऐसे हे, जो अपने राष्ट्रीय गीतो से ऐसे वातावरण की सृष्टि करते है, जो युद्ध का सन्देश और जनता को स्फूर्त्ति प्रदान करते है। जौहर के प्रसग-सम्बन्धी गीत बलिदान की भावना के द्योतक तो हे ही, साथ ही उत्साह, करुणा और समवेदना का वातावरण प्रस्तुत करते हैं —

'सजनि ! मरण को वरण करो री !
पुलकित अम्बर और अवनि है,
आती आमत्रण की ध्वनि है,
यह सुहाग की रात सजनि है,
चिता-सेज पर शयन करो री !'

जहाँ-जहाँ नृत्य-गान के द्वारा विलासमय वातावरण प्रस्तुत किया गया है, वहाँ गीतो ने उस वातावरण को और भी रगीन बना दिया है। 'शिवा-साधना' मे शाइस्ताखा के महल मे सुरा और सुन्दरियो का मेला लगा है। बाँदियाँ सुन्दर पखे झल रही हैं, इसी समय सितार पर जो गीत गाया जाता है, वह वासना को और भी उद्दीप्त करता है —

'कोयल गाती गीत निराले,
भौंरे पिला रहे रस प्याले,
छवि पर है पतग मतवाले,
तुम क्यो अपने अरमानो को प्यासे ही लेकर फिर जाते !
मेरे मन तुम क्यो शरमाते !'

'शपथ' मे कचनी का नृत्य और गान यौवन और विलास की मादक मदिरा बिखेर देता है। कचनी ने जो गीत गाया है, उसमे कवि ने ऐसा सगीतमय शब्द चयन किया है कि उसकी कला देखते ही बनती है। गीत इतना सगीतात्मक है कि पाठक तक के सामने सगीतमय नृत्य का वातावरण सजीव हो उठता है —

'रुनुन झुनुन झुन, रुनुन झुनुन झुन,
पग के पायल बोले रे !
उर-अन्तर के रगमच पर, छवि के पायल बोले रे !
अग-अग मे चचल यौवन,
भरता नवचेतन पागलपन,

नाच रही अप्सरी वासना,
तप-सयम प्रण डोले रे ।

प्रेमीजी जीवन मे और उसी प्रकार साहित्य मे सरलता और स्पष्टता के पक्षपाती है, अत विचारो की गहनता और अस्पष्टता मे वे न तो स्वय उलझते है और न ही अपने पाठको को उलझाते है। यही कारण है कि दार्शनिकता, गहनता उनके गीतो मे नही है , जहाँ कही दार्शनिकता को लेकर गीत लिखे भी गये है, वहाँ वे एक प्रेरणा का ही काम करते हैं। 'सम्वत्-प्रवर्तन' मे भर्तृहरि का गीत इसी प्रकार का है —

'चलते जाना ही जीवन है,
हो जाना गतिहीन मरण है,
जबतक प्राणो में स्पन्दन है,
पाल उसे जो ठाना प्रण है ।
तुझे नए युग को है लाना,
पन्छी पथ मे रुक मत जाना।'

प्रकृति-सन्बन्धी गीतो की ओर भी प्रेमीजी का झुकाव है। किन्तु उन्होने प्रकृति का शुद्ध चित्रण नही किया है। मन की अभिव्यक्ति, अनुभूति की गहराई, और जीवन का सन्देशवाहक बनकर ही प्रकृति प्रेमीजी के गीतो मे आई है । उदाहरण के लिए 'स्वप्नभग' का पहला गीत है। सलीमा आत्म-विस्तार, प्रफुल्ल जीवन का चित्र अपने गीत मे प्रस्तुत करती है। प्रकृति को वह अपना आदर्श मानती है। उसकी कामना है —

'हम जग मे मुसकाती आवें,
हम जग से मुसकाती जावें,
जैसे नभ मे ऊषा आती,
अवनि-गगन को लाल बनाती,
कुज कुज में फूल खिलाती,
हम भी जग का हृदय खिलावे।'

इसी प्रकार मालिन का गीत है, फूल के बहाने वह भी आत्म-विस्तार का ही पाठ पढती है। 'उद्धार' की कमला भी प्रकृति से नवजीवन का पाठ पढती है —

'कोयल कूक उठी उपवन में,
नव-विकास है सुमन-सुमन में,
नवजीवन का निर्झर मन मे,
नव उमग भर लहराया'।

प्रेमीजी के नाटको मे बालकोपयोगी सामग्री भी जहाँ-तहाँ है। किन्तु युद्धो

का वातावरण प्रधान होने के कारण उधर उनकी दृष्टि नही जा पाई। 'ममता' मे मे एक लोरी उन्होने लिखी है जो मा की ममता का अच्छा चित्र प्रस्तुत करती है और बालको के हृदय मे एक आनन्द की हिलोर जगाती है —

'सो जा मेरे राजदुलारे,
तुझ को निंदिया-परी पुकारे
चिडियों के तू पख लगाले,
फूलो की तू हँसी चुरा ले,
हँस ले माँ को साथ हँसा ले,
वारूँ तुझ पर चाँद-सितारे।
चन्दा की तू नाव बना ले,
किरणों की पतवार उठाले,
मा को अपने साथ बिठा ले,
ले चल मुझ को स्वप्न किनारे।'

प्रेमीजी वास्तव मे कवि पहले हे, नाटककार बाद मे। यही कारण है कि उनके नाटको मे गीतो का सुन्दरता के साथ प्रयोग हुआ है। भावुकता और कल्पना का स्वर्ण-सयोग उनके नाटको मे है। प्रेमीजी के गीतो की यही विशेषता है कि वे काव्य भी है और साथ ही परिस्थिति का उद्घाटन करनेवाले भाव-चित्र भी।

इस प्रकार हम देखते है कि "उनके गीतो के विषय विविध रहे है और वातावरण को गति प्रदान करने का गुण उनमे पूर्णरूप से वर्तमान रहा है। उनके गीतो का सम्बन्ध प्राय वीर, शान्त, श्रृगार और करुण रस या फिर प्रकृति-चित्रण से रहा है। उनके कतिपय गीतो मे श्रमिक-जगत् के सुख दु खो की भी मार्मिक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। उनके गीत भावना और विचार'—दोनो ही की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध बन पडे हें और उनमे श्रोता को प्रेरणा प्रदान करने की शक्ति पूर्णरूप से वर्तमान हे। सहजता, सक्षिप्तता एवम् प्रवहमानता तो उनके गीतो मे है ही, गीतो मे प्रवाह-सृष्टि के लिए उन्होने लोक-गीतो की शब्दावली का भी यथास्थान प्रयोग किया गया है। • शिल्प-सम्बन्धी अन्य आवश्यकताओ के निर्वाह की दृष्टि से उन्होने अपने गीतो मे एक ओर तो अलकारो का स्वाभाविक रूप मे प्रयोग किया है और दूसरी ओर, अपेक्षित न होने पर भी, अपने गीतो को छन्द-बन्धन मे आबद्ध रखने का प्रयास किया हे। उन्होने अपने गीतो मे दो, तीन, चार, अथवा पाँच पक्तियो से युक्त पद्यो का सफल प्रयोग किया है और तुक निर्वाह की ओर सर्वत्र उचित ध्यान दिया है। उनके गीत सम्बद्ध पात्रो की अनुभूतियो से पूर्णत समृद्ध रहे है और उन्होने उनकी रचना करते समय व्यर्थ ही अतिरिक्त शब्दो के द्वारा पक्ति-विस्तार नही किया। सक्षेप मे हम यह कह सकते हैं कि 'प्रेमी'जी

ने अपने नाटकीय गीतो की रचना एक सुनिश्चित योजना के अनुसार की है और अपने नाटको एवम् एकाकी नाटको मे उन्हे गीत-प्रयोग करने मे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।"[१]

गीतो की दृष्टि से प्रेमीजी सफल गीतकार है, इसम सन्देह नही, परन्तु यह भी स्वीकार करना होगा कि उनके नाटकीय गीतो मे कुछ दोष भी हैं —

१ अनेक गीतो का आकार आवश्यकता से अधिक बडा है।
२ कई गीतो मे पुनरावृति भी है। पहले पद के भाव को, दूसरे पद मे दुहरा दिया है।
३ गीतो की सख्या का आरम्भिक नाटको मे समुचित ध्यान नही रखा गया।
४ कही-कहीं एक के बाद तुरन्त दूसरा गीत आरम्भ हो गया है।
५ अनेक स्थलो पर सयुक्ताक्षरो की भरमार है, अत नाटकोचित प्रासादिकता और माधुर्य का आघात पहुँचा है।

आकार की दृष्टि से 'आहुति' का चपला के नेतृत्व मे गाया गया दूसरे अक के पाँचवे दृश्य का अन्तिम गीत लिया जा सकता है। यह गीत यदि वर्तमान रूप की अपेक्षा इससे आधा होता तो अधिक उत्तम था। 'उद्धार' मे पहले अक के तीसरे दृश्य मे मालती द्वारा गाया गया गीत भी लम्बा है। 'शतरज के खिलाडी' के पहले अक के छठे दृश्य मे अख्तरी का गीत भी थोडा लम्बा है। 'सरक्षक' मे पहले अक के दूसरे दृश्य के आरम्भ मे दुर्गा का गीत भी चार पदो मे पूरा हुआ है। 'सवत् प्रवर्तन' का अन्तिम गीत भी अधिक बडा है। 'शिवा-साधना' के चौथे अक का चौथा दृश्य वाला गीत भी लम्बा ही है।

अनेक गीतो मे यदि कवि पुनरावृत्ति को बचा सकता तो गीत लघु आकार का होकर अधिक प्रभाव डालता और यदि दूसरा पद लिखना ही जरूरी होता तो किसी अन्य भावना को विकास मिलता। एक पद की बात ही जब दूसरे पद मे दुहराई जाती है तो गीत अपना प्रभाव नही डाल पाता। कवि की शब्द और भाव-निर्धनता का भी प्रचार करता है। 'स्वप्न-भग' का पहला गीत है **'हग जग मे मुस्काती आवें।'** इसके पहले पद मे—**'जैसे नभ मे ऊषा आती'** है तो अन्तिम पद मे फिर—**'सखि, हम ऊषा-सी मुकसावे'** मौजूद है। पहले पद मे—**'कुज-कुज मे फूल खिलाती'**—है तो अन्तिम पद मे फिर—**'फूलो सी फूली न समावें'**—है। दूसरे पद मे—**'चाँद सुधा बरसाता आता'** है तो अन्त मे फिर—**'शशि सा मादक रूप दिखावें'** मौजूद है।

अपने आरम्भिक नाटको मे प्रेमीजी ने पर्याप्त सख्या मे गीत रखे है, किन्तु धीरे-धीरे गीत कम करने की प्रवृत्ति आती गई है। 'रक्षा-बन्धन' मे ग्यारह गीत है।

---

१ सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ७६५ ७६६

तीन अको के नाटक मे इतने अधिक गीत रखना अधिक उचित नही जान पडता। अकेले पहले अक मे छ गीत है। इस प्रकार अनुपात का भी ध्यान नही रखा गया है। 'शिवा-साधना' मे भी ग्यारह गीत ह जिनमे दो गीत दुबारा गाये गये है और इस प्रकार सख्या तेरह हो जाती ह। 'प्रतिशोध' मे आठ गीत है, किन्तु एक गीत को तीन बार और दो गीतो को दोबारा दुहराकर यहाँ भी उनकी सख्या बारह तक पहुँचा दी गई है। 'आहुति' मे भी नौ गीत हैं। 'स्वप्नभग' मे बारह गीत है, किन्तु पुनरावृत्ति ने चौदह सख्या कर दी है। 'शतरज के खिलाडी' मे 'आहुति' की भाँति ही नौ गीत है। 'विषपान' मे केवल छ गीत है, एक गीत दुहराया भी गया है। इसकी पुनरावृत्ति नही खटकनी। 'उद्धार' मे भी सात गीत ह। 'शपथ' मे पाँच गीत है। यही से गीत कम करने की प्रवृत्ति आरम्भ हो जाती हे। 'प्रकाश स्तभ' मे केवल दो ही गीत है। 'सरक्षक' मे पाँच गीत हे और 'ममता' मे केवल तीन गीत हे, जिनमे एक लोरी है। इस प्रकार उत्तरकालीन रचनाओ मे प्रेमीजी ने गीत सयोजन मे बडी सावधानी बरती है। न तो अधिक है और न ही पुनरावृत्ति है।

कई स्थलो पर पात्रो से जल्दी-जल्दी गीत गवाये गये है। कही-कही तो पहला दृश्य गीत से समाप्त होता हे तो दूसरा दृश्य भी गीत से ही आरम्भ होता है। इससे केवल दर्शको का मन ही नही ऊबता बल्कि नाटकीयता मे भी बाधा पडती है। 'रक्षा-बन्धन' मे यही दोष हे। 'रक्षा-बन्धन' मे प्रथम अक के पाँचवे दृश्य के अन्त मे चारणी गा रही है और छठे दृश्य के आरम्भ मे राखी का गीत फिर आ धमका है। इसी प्रकार एक ही छोटे दृश्य मे साथ-साथ गीतो का क्रम चलता है। 'शिवा साधना' मे एक ओर रामदास का गीत चल रहा है कि कुछ ही समय बाद अकाबाई गाने लगती है। सातवे दृश्य मे फिर यमुना और सईबाई गाती हुई दिखाई देती है। इस प्रकार कथानक की गतिशीलता मे बाधा उपस्थित होती है।

कही-कही सयुक्ताक्षरो ने गीतो का माधुर्य बिगाड दिया है। 'रक्षा-बन्धन' मे **'आओ हँस लें और हँसा लें'** गीत मे पहली पक्ति है—**'ज्योत्स्ना-ज्योतित जगमग रात।'** इसमे प्रथम दो शब्द सयुक्त है। इसके शुद्ध उच्चारण मे गायक को कठिनाई होगी। इसी प्रकार 'सरक्षक' मे समवेत गान की पहली पक्ति है—**'मातृभूमि करती आह्वान, करो युद्ध के लिए प्रयाण'**—इसमे मातृभूमि, आह्वान और प्रयाण शब्द स्वर को कष्ट देंगे। 'प्रकाश-स्तम्भ' मे तीसरे अक के पहले दृश्य के अन्त मे शकर-स्तुति है। इसमे प्रलयकर, सर्वनाश, अनुष्ठान, अमृतधार, त्रिपुरारि आदि शब्द उच्चारण-सम्बन्धी सुविधा नही देते। परन्तु रौद्रस्तुति मे इस प्रकार के कर्णकटु और परुषावृत्ति वाले शब्दो को स्थान दिया भी जा सकता है।

सात

प्रेमीजी के नाटकों में प्रेम का स्वरूप

प्रेम मानव-हृदय की स्वाभाविक तथा मूल प्रवृत्ति है। अनेक विद्वानो ने साहित्य को मानवात्मा की अभिव्यक्ति मानकर प्रेम को साहित्य की भी मूल प्रवृत्ति माना है। प्रेमीजी स्वय प्रेम को साहित्य का आधारभूत अग मानते है। प्रेम के बिना जीवन उन्हे श्मशान के समान जान पडता है। यही कारण है कि प्रेमीजी के नाटको मे प्रेम का अजस्र स्रोत बहता है। वह प्रेम कही तो स्त्री-पुरुष के बीच का प्रेम है, कही मानवता का प्रेम और कही देश का प्रेम है।

स्त्री-पुरुष के प्रेम को प्राय लोग वासनामूलक मानते है और उसे वासनात्मक रूप मे ही चित्रित करते है, किन्तु प्रेमीजी के प्रेम का स्वरूप इस प्रथा से सर्वथा प्रतिकूल है। उनके नाटको का प्रेम आदशमूलक है।

'रक्षाबन्धन' मे प्रेम का केन्द्र है श्यामा। श्यामा प्रेम को दुख का कारण मानती है, उसकी दृष्टि मे प्रेम —

> 'प्रेम उन्ही का जीवन-धन है,
> जिनकी सुख से चिर-अनबन है,
> उन पगलों का पागलपन है,
> जिनसे सारा विश्व विमुख है।
>
> × ×
>
> प्राणों मे होलिका-दहन है,
> आँखो मे सावन प्रतिक्षण है,
> यह कैसा अद्भुत जीवन है?
> जिसमे रोने मे ही सुख है।'

श्यामा प्रेम का यह रूप केवल इसलिए चित्रित करती है कि वह उसे सकुचित सीमाओ मे देखती है। किन्तु जब चारणी उसे प्रेम का सच्चा स्वरूप समझाती है तो वह मोह-निद्रा से जाग उठती है। चारणी प्रेम का स्वरूप इस प्रकार व्यक्त करती है —

'प्रेम हमारे स्वार्थ का सर्वनाश भले ही करे, पर यदि कर्त्तव्य के पथ पर, बलिदान के पथ पर जानेवाले को वह एक क्षण भी विलमा रखे तो उसका गला घोटना ही पडेगा। वह प्रेम नही, वासना है, मोह है।' स्पष्ट है कि प्रेम और वासना तथा मोह मे अन्तर है। जो कर्त्तव्य सुझाये वही प्रेम है।

'शिवा-साधना' की ज़ेबुन्निसा भी प्रेम की मूर्ति है। इसके लिए शिवाजी का प्रथम दर्शन ही प्रेम बन गया। परन्तु यह भी त्याग और बलिदान को प्रेम का प्रतीक मानती है। यह तडपने मे ही, विरह-ज्वाला से जलने मे ही प्रेम की मूर्ति देखती है। परन्तु इसके विचार मे प्रेम शब्दो की सीमा से परे की वस्तु है, किसी प्रकार के वाद-विवाद द्वारा हम प्रेम को नही पहचान सकते —'कोई किसी को कैसे बताये कि दुखी दिल के जज्बात के मानी समझने के लिए दिल में दर्द पैदा करने की ज़रूरत होती है, लफ्ज़ो पर बहस करके आजतक किसने किसीके दिल का हाल जाना है।'

'प्रतिशोध' मे विजया और बलदीवान के बीच प्रेम है। किन्तु विजया प्रेम की बलि देती है, कर्त्तव्य के लिए। वह बलि तो दे देती है, पर उसका हृदय कराह उठा करता है। नाटककार ने यहाँ बताया है कि प्रेम का आघात तो होता ही है, भले ही हम उसे स्वीकार न करे। इसी नाटक मे ज़ेबुन्निसा भी प्रेम की व्याख्या करती पाई जाती है। उसकी दृष्टि मे मुहब्बत का मूल्य यह है —

'भूल बैठे हम मुहब्बत, हँस रहे हम पर सितारे।
अश्क हो जिसमे नही वह,
आँख पत्थर से बुरी है।
दर्द से वाकिफ न जो, वह
दिल नही पैनी छुरी है।'

ज़ेबुन्निसा का प्रेम मानवतावादी प्रेम है। वह इन्सान को इन्सान के प्रति प्रेम करना सिखाती है। वह औरंगजेब का हृदय भी इसी दृष्टि से बदलना चाहती है।

'उद्धार' मे कमला का जीवन प्रेममय है। वह तो प्रकृतिमात्र को प्रेम स्वरूप जानती है —'**फूल कलियो को पिलाते प्रेम मधु परिपूर्ण-प्याला।**' कमला का विचार है कि प्रेम के क्षेत्र मे स्वार्थ और दम्भ के लिए स्थान नही है। प्रेम निःस्वार्थ और निश्छल होना चाहिए। मालदेव से कमला कहती है —'स्वार्थ और दम्भ ने प्रेम और सहानुभूति जैसी सुरभित और कोमल भावनाओ के लिए वहाँ स्थान छोडा ही नही है।' वह तो प्रेम को हृदय का प्रकाश मानती है। इस नाटक मे जाल के शब्दो मे—'प्रेम करना दुर्बलता नही है।' प्रेम वास्तव मे हृदय की शक्ति है। मोह को वह प्रेम का नाम नही देना चाहती। वह हमीर से कहती है —'जन्म-जन्मान्तर तक मै आपसे नही ऊब सकती—किन्तु मै विवेकहीन अन्धा प्रेम नही चाहती। मुझे पाकर आप दुर्दशा-ग्रस्त जन्मभूमि को भूल गए है—मै शीघ्र ही आपको कर्त्तव्य-पथ पर वापस भेजना चाहती हूँ।'

कमला के शब्दो मे सच्चा प्रेम वही है जो कर्त्तव्य पर आरूढ करता है।

विवेकहीन अन्धा प्रेम तो मोह-जाल है । इस प्रकार प्रेमीजी ने प्रेम का विशुद्ध रूप ही हमारे सामने रखा है ।

'प्रकाश-स्तम्भ' मे भी प्रेम पावनतम रूप लेकर आया है । अहकार के लिए प्रेम के क्षेत्र मे स्थान नही है । पद्मा को अहकार है, इसलिए वह बाप्पा की जीवन-सगिनी नही बन पाती । प्रेम वास्तविक जगत् की वस्तु हे, कल्पना-जगत् की नही ।' चम्पा के शब्दो मे—'प्रेम को यदि कल्पना के जगत् का मधुर स्वप्न समझते हो तो भले ही अपना राग छेडे जाओ ।' यद्यपि पद्मा के चित्त मे अहकार था, किन्तु फिर भी वह क्षमताशाली को ही प्रेम का अधिकारी मानती हे । प्रेम कायर की वस्तु नही, आत्म-गौरव और क्षमता प्रेम की पहली शर्त हे । बाप्पा पूछता है कि क्या तुम प्रेम के हेतु राजमहल छोडने को प्रस्तुत नही हो ? तो वह कहती है —'मै तो राजमहल छोडकर धूल मे, मरघट की ज्वाला मे भी आसन जमाने को प्रस्तुत हूँ, किन्तु मैं चाहती हूँ कि मेरा प्रेमी धूल से ऊपर उठे, प्रचण्ड मार्तण्ड की भाँति प्रकाशित हो ।'

चम्पा के शब्दो मे प्रेम का प्रवाह जब बह चलता हे तो फिर किसी के रोके रुकता नही है, इसलिए प्रेम-पथ पर सँभलकर ही पैर बढाने चाहिएँ । चम्पा पद्मा से कहती है —'नारी हृदय का स्नेह बह चला तो बह चला, उसे रोक सकना तो सर्वथा असम्भव ही है ।'

प्रेम मे ईर्ष्या या उपालम्भ के लिए स्थान नही होता है । प्रेमी को तो अपने प्रेमास्पद की प्रसन्नता मे ही अपनी प्रसन्नता माननी चाहिए । यही आदर्श प्रेम है । चम्पा कहती है —'तो तुम प्रसन्न नही हो इस विवाह से ? तो मैं कहूँगी तुम अपने बाप्पा को प्यार नही करती । करती होती तो उसकी प्रसन्नता मे अपनी प्रसन्नता को निमग्न कर देती ।'

'शतरज के खिलाडी' की अख्तरी स्वय प्रेमीजी की भाँति प्रेम को जगत् का जीवन मानती है । प्यार मरुस्थल मे भी सुधा का स्रोत बहा देता है । प्रेम की महिमा गाती हुई अख्तरी कहती है —

'डर नहीं, यदि दूर तक पथ
मे बिछा मरुथल भयानक !
है यहाँ भी स्नेह का सर
प्यास अपनी तू बुझा ले !

× ×

नीर है शोभा प्रकृति की,
प्रेम है जीवन जगत् का ।
प्रेम से अपने हृदय को,
तू लबालब अब बना ले !'

अख्तरी तो प्रेम के द्वारा ही विश्व पर अधिकार करने के सपने देखती है। कहती है —**'कह रही मै प्रेम से तुम विश्व पर अधिकार कर लो।'**

प्रेम के क्षेत्र मे बडी बाधा होती है, समाज! कायर प्रेमी प्राय समाज के नियमो का भय देखते और दिखाते है। 'सरक्षक' की दुर्गा इस कायर प्रेमी की समर्थक नही है। वह माधोसिंह से कहती है—'समाज के नियमो को मिटा नही सकते तो फिर आदर के ऊँचे सिंहासन की बात क्यो करते हो ?'

प्रेम मे एकनिष्ठा होनी चाहिए। विवाहित जीवन मे प्रेम का यही महत्त्व है। जो पुरुष एक को छोडकर अन्य नारी को जीवन-सगिनी बनाने की सोचता है, वह भला आदमी नही है। दुर्गा कहती है—'जो विवाहित पुरुष किसी अन्य नारी को जीवन-सगिनी बनाने की बात करता है, वह अपनी दुष्टता का परिचय देता है।'

नारी का प्रेम त्याग से परिपूर्ण है। गोवर्धन से दुर्गा कहती है —'नारी केवल देना जानती है, लेना नही। मैं तुम्हारे साथ अगारो पर चलना पसन्द करूँगी, अभावो को गले लगाऊँगी, प्रत्येक सकट मे तुम्हारे साथ रहूँगी और तुम पर होनेवाले प्रहारो को अपने ऊपर ले लूँगी।'

वस्तुत नारी प्रेम का व्यापार नही करती है। प्रेम आत्म-समर्पण सिखाता है, आस्था देता है। प्रेम मे प्रेमास्पद की बुराइयाँ भी भलाइयाँ बन जाती है। सच्चे प्रेम की यही परिभाषा है। दुर्गा कहती है —'नारी भूल से भी जिसे स्वीकार कर लेती है, उसके प्रति अपनी आस्था को अटूट रखती है। वह उसकी बुराइयो की ओर से आँखे बन्द कर लेती है। वह उसके अन्यायो को भूल जाती है।' यह है स्त्री-पुरुष का आदर्श प्रेम!

प्रेम का पावन रूप प्रस्तुत करने के लिए ही प्रेमीजी ने सगीत-रूपको अथवा 'आपेरा' की रचना की। पजाब की प्रसिद्ध प्रेमपूर्ण लोक-गाथाओ को लेकर तो उन्होने सगीतरूपक लिखे ही, इससे पहले भी वे 'स्वर्ण-विहान' नामक गीतिनाट्य लिख चुके थे।

'स्वर्ण-विहान' मे प्रेमीजी ने प्रेम को बहुत ऊँचा दर्जा दिया है। बिना प्रेम के जगत् का जीवन ही नीरस हो जाता है। रुग्णा कहती है —

> **'स्नेह-हीन होकर जगती के शुष्क हुए है प्राण!**
> **टिम-टिम जगमग से तो अच्छा हो जाना निर्वाण!'**

सन्यासी प्रेम से ही पापाचार को जीतने का आदेश देता है, जैसा कि गाँधीजी का दर्शन था!—**'जीत प्रेम से पापाचार।'** और **'वत्स, प्रेम के बल से बदलो नृप के उर के कठिन विचार।'** सन्यासी की वाणी मे तो प्रेम ही उदार भगवान् है, प्रेम ही अनन्त अविकार विराट् है —

'प्रेम ही है भगवान् उदार,
प्रेम ही है अनन्त अविकार,

× ×

अपनी ही आँखो का तारा हुआ आँख की ओट।
एक कदम पथ ही तो हमको, दिखता पारावार।
घर की दहली पर ही चढने खोज फिरे ससार,
पल भर भी यदि आँखें मूँदो मिलते प्राणाधार !
प्रेम ही तो है प्राणाधार !'

लालसा के मन मे जितनी भी जिज्ञासाएँ, शकाएँ और कोलाहल है, सुवाणी उन सबका समाधान प्रेम मे ही खोजती है —

'सब के मानस मे है सजनी वही प्रेम की प्यास।
सबको पागल करती रहती वही प्रेम की फाँस।
सखि, सबके उर से उडते है, वही प्रेम उच्छ्वास।'

प्रेम ही अपरिचित प्राणो को एक सूत्र मे बाँध लेता है —

'यही प्रेम का नियम चिरन्तन यही प्रेम का खेल महान् !
अनचाहे, अनजान, अपरिचित के चरणो पर चढ़ते प्राण !'

प्रेम आत्मा को अमर बना देता है, प्रेम की शक्ति के आगे शस्त्रो की शक्ति भी काम नही आती —

प्रेम ही है वह शक्ति अपार,
काटती जो शस्त्रों की धार।'

प्रेम विश्वास चाहता है, अटल प्रेम ही पार पहुँचाने का साधन है —

'अटल प्रेम ही पहुँचा सकता, तुमको तट के पास।'

प्रेम का मत्र दुनिया को ही बदल देता है। इसलिए लालसा प्रेम का मन्त्र फूँकती है —

'प्रेम ही हो अब सबका भूप,
प्रेम ही हो अब सबका राज,
प्रेम ही हो सबका अधिकार,
प्रेम ही हो अब सबका ताज।'

प्रेम समस्त वैभवो से ऊपर है। प्रेम ही समता का शासन कायम करता है, भेदभाव को भगाता और मानवता का पाठ पढाता है —

'केवल मनुष्य ही बनकर मै सीखूँ जग मे रहना।
यह राजपाट वैभव तज हो प्रेम-धार मे बहना।

हो जहाँ हृदय ही राजा, हो जहाँ प्रेम का शासन,
सबकी ममता मे होवे समता का पावन आसन।'

'स्वर्ण-विहान' के कवि की तो यही अभिलाषा है कि—

'प्रेम-प्रेम सबकी वाणी मे गूँज उठे अनजान।'

प्रेम की यही पुकार सच्चे दिलो मे पत्थर की रेखा बन जाती है, सच्चे प्रेमी प्रीति के लिए प्राणो तक का बलिदान कर देते है। प्रेमीजी ने सगीत-नाटिकाओ मे प्रेम का यही स्वरूप प्रस्तुत किया है। 'हीर-राँझा' मे जब राँझा हीर से कहता है कि—

' है पथ प्रीति का अगारों पर चलना।
दो दिन का आराम सदा के लिए आग मे जलना।'

तो हीर उसे यही उत्तर देती है —

'सुन राँझा है प्रीति तिया की
ज्यों पत्थर की रेखा।
उसे प्रीति के पथ पर जाने,
प्राण चढ़ाते देखा।'

सच्ची प्रीति वही है जो ऊँच-नीच, गरीब-अमीर का भेद नही मानती। हीर के शब्दो मे —

ऊँच-नीच की जात-पाँत की, दीवारों को तोड,
सच्ची प्रीति लिया करती है दिल का नाता जोड।

× × ×

सच्ची प्रीति नहीं टूटती कर लो यत्न करोड।'

प्रेमीजी प्रीति के क्षेत्र मे विच्छेद को—चाहे वह किसी भी कानून का समर्थन क्यो न प्राप्त कर चुका हो—स्वीकार नही करते —

एक बार जो जुडता नाता,
क्या फिर है वह तोडा जाता!'

प्रेम टूटता नही है, विरह की ज्वाला उसे भले ही जलाती रहे, बल्कि विरह की ज्वाला मे जलकर तो सच्चा प्रेम और भी पक्का होता है। 'मिर्जा साहिबा' मे बीबो कहती है

'प्रेम हुआ करता है पक्का,
विरह-अग्नि मे जलकर।'

प्रीति मे विष के घूँट भी पीने पडे तो भी प्रेमी घबराता नही है, उन्ही घूँटो को अमृत मानता है, साहिबा कहती है —

'पी लूंगी मैं विष के घूंट,
नही प्रीति है सकती है छूट।'

'मोहनी-महीवाल' मे सोहनी भी प्रेम के लिऐ विष पीने को तैयार है, प्रेम को वह अपना खुदा और मजहब मानती है, इसीलिए तन-मन-धन तक निछावर करने को तैयार हो जाती है —

'तब तुम सच सच बात सुनो माँ, महीवाल से प्यार।
मुझको सच्चा, उसके ऊपर, तन-मन जान निसार।
तू क्या आकर खुदा न उसको सकता मुझसे छीन।
वही खुदा है अम्मी मेरा, और वही है दीन।
लगी आग क्या बुझ सकती है उलफत की सच बोल,
अगर अलग करना है उससे, दो मुझको विष घोल।'

इस प्रकार प्रेमीजी ने अपने साहित्य मे प्रेम का कही भी विकृत रूप चित्रित नही किया है। वे प्रेम की स्वाभाविकता के कायल है, वह उसे हृदय की वस्तु मानते है, केवल कला नही कि जब चाहो भुला दो और जब चाहो जिस रूप मे व्यक्त कर दो। प्रेमीजी के सभी पात्र प्रेम के लिए बलिदान देते है, प्रवचना, छल या कपट वहाँ नही है। किसी प्रकार की कृत्रिमता के लिए भी वहाँ स्थान नही है।

अठ

प्रेमीजी के गीतिनाट्य

सस्कृत के आचार्यों ने कविता और नाटक दोनो को काव्य की परिधि मे रखा है। दोनो के रचयिता कवि कहलाते है। काव्य की इन दोनो विधाओ का लक्ष्य समानरूप से पाठक या सामाजिक को रसानुभूति कराना होता है। जिसमे कविता भी हो और रूपक भी, उसे काव्यरूपक या गीतिनाट्य कहेगे। इसे पद्यरूपक, सगीतरूपक आदि नामो से भी पुकारा जा सकता है। गीतिनाट्य मुख्यत भावनामय होते है, उनमे बहिर्सघर्षों की अपेक्षा अन्तर्संघर्षों की प्रधानता रहती है, लेकिन जीवन की वास्तविकताओ से भी उनका सम्बन्ध नही टूटता है। नाट्य होते हुए भी गीतिनाट्यो का रगमचीय मूल्य स्वीकार किया गया है। इनकी भाषा भी सरलतम होनी चाहिए, जिससे कि हर सामाजिक के लिए गीतिनाट्य का कथानक बोधगम्य हो सके।

गीतिनाट्य मे कार्य की अपेक्षा भाव का महत्त्व अधिक होता है। भावना की प्रधानता होने के कारण ऐसी रचना मे गीतितत्त्व का उपयोग किया जाता है। कथा की शृखला मिलाने के लिए या तो पात्रो के कथोपकथन ही पर्याप्त होते है, अन्यथा एक और पात्र की कल्पना कर ली जाती है, जिसे सूत्रधार या उद्घोषक अथवा वाचक भी कह सकते है। पात्रो के कथोपकथन साधारण पद्य मे और आन्तरिक भावनाओ की अभिव्यक्ति गीतो मे की जा सकती है। गीतिनाट्य मे लेखक चाहे तो अको और दृश्यो का विधान रख सकता है, अन्यथा तो इनकी कथा बिना अध्याय के ही आगे बढती है।

प्रेमीजी ने दो प्रकार के गीतिनाट्य लिखे है, एक तो अको का विभाजन लेकर लिखे गये, जिनमे एकमात्र 'स्वर्ण-विहान' की ही गिनती की जायेगी। दूसरे वे हैं, जिनमे दृश्य परिवर्तन तो है, किन्तु अको का विभाजन नही। कहानी को कहने और उसके अन्त की ओर बढने की प्रवृत्ति ही पाई जाती है। दूसरे प्रकार के गीतिरूपक रेडियो की दृष्टि से लिखे गये है। इसीलिए उन्हे सगीतरूपक कहना अधिक उपयुक्त जान पडता है। ये सगीतरूपक प्रेमीजी ने पजाब की प्रसिद्ध लोक-गाथाओ पर प्रेम का विशुद्धरूप दिखाने के लिए लिखे है। हीर-राँझा, दुल्लाभट्टी, मिर्जा-साहिबाँ, सोहनी महीवाल और सस्सी-पुन्नू उनके रेडियो सगीत-रूपक है। 'स्वर्णविहान' कल्पित है।

१ 'स्वर्ण-विहान' की मूल-प्रेरणा भी प्रेम ही है, यह अलग बात है कि इसका प्रेम देश-प्रेम या ममता के नाम से पुकारा जाये । प्रेमीजी ने इसके लिए दो शब्द लिखते हुए बताया है —'जब मैं केवल दो वर्ष का शिशु था तभी मेरी स्नेहमयी माँ मुझे, कवि बनने, अकेला छोडकर, चली गई थी, तब माँ के आँचल की जगह ऊपर विराट् आकाश था और गोद की जगह विस्तृत वसुन्धरा । मेरा वह करुण-विहान ही इस 'स्वर्ण-विहान' का प्रेरक है । जिस मातृभूमि ने अपने प्रेम और ममता से नवजीवन दान दिया उसे प्रेमाजलि अर्पण करने ही इस नाटिका की रचना हुई है ।'

स्पष्ट है कि इस नाटिका मे देश-प्रेम का स्वर भी है और कामजन्य प्रेम का भी—'इस पुस्तक मे केवल राष्ट्रीयता ढूढनेवाले जगह-जगह प्रेम के उच्छृखल गीत सुनकर बिगड बैठेगे, परन्तु मै प्रेमहीन ससार को श्मशान से भी बुरा समझता हूँ ।'

'स्वर्ण-विहान' मे एक कल्पित कथा के द्वारा पिछले युग की जाग्रत भारतीय चेतना की अभिव्यक्ति है, इसमे अहिंसा के द्वारा हिसा को जीतने का प्रयत्न है । अत्याचारी शासन ने किस प्रकार देश की दुदशा कर दी, इसका करुण चित्र इस प्रकार चित्रित है —

'कभी न छेडी इस कुटिया में सुख ने मादक तान ।
व्यथा, कराह, अभाग्य, दु ख के ही उठते तूफान ।
हम हैं कृषक, जगत को करते हैं जो जीवन दान ।
आज उन्हीं के बालक भूखे सोये हैं अनजान ।।

किसान, रुग्णा और बाला के द्वारा किसानो की दयनाय स्थिति का चित्र उतारा गया है । मोहन और विजय अधम नृपति को मार डालने का विचार करते है, तभी सन्यासी प्रेम और असहयोग की बाँसुरी बजाता है —

'नहीं-नही, ए पगले यौवन जीत प्रेम से पापाचार ।
अरे, पाप से पाप मिटाना महा भूल है, व्यर्थ विचार !!
× × ×
असहयोग का महामत्र ही अब कर सकता है उद्धार !
× × ×
धर्म, सत्य जिस ओर रहेंगे उसी ओर होंगे कर्तार ।'

अपने प्रेम के सदेश से सन्यासी मोहन के विचार बदल देता है । मोहन किसानो के बीच अहिंसक क्रान्ति करता है —

'करो मत नृप-सत्ता स्वीकार,
न दो अब पापो मे सहयोग ।
न दो उसको कर कौडी एक,
सहो पशु-बल के सकल प्रयोग !'

परिणामस्वरूप किसान प्रतिज्ञा करते हैं —

'नही रखनी जालिम सरकार,
भले ही ले वह शीश उतार।
न देगे उसको कभी लगान,
भले ही जलवा दे घर-द्वार।'

लालसा मोहन को अपनी ओर खीचती है, किन्तु वह भी प्रेमपूर्ण क्रान्ति का ही सन्देश देती है। फलस्वरूप अत्याचारी राजा घुटने टेक देता है। इस प्रकार गाँधीवादी दर्शन के द्वारा लेखक ने प्रेम, शान्ति और असहयोग का सन्देश दिया है।

प्रेमीजी ने उत्कट देश-भक्ति और व्यक्तित्व के भीतर लालसारूप मे रहनेवाले प्रेम के उपकरण से 'स्वर्ण विहान' का शृङ्गार किया है। प्रेम की परिधि को व्यक्तिगत चाह से सकुचित न बनाकर प्रेमीजी ने पीडित जनता की सेवा तक उसे व्यापक बना दिया है। रचना मे गति और प्रभाव होते हुए भी सघर्ष की कमी है। भाषा की सरलता और भावो की तरलता ने इसे मार्मिकता अवश्य प्रदान की है।

'स्वर्ण-विहान' मे जिस प्रेम का स्वर फूटा है, वह सगीतरूपको मे आकर और भी मुखर हो गया हे। इन सगीतरूपको मे कथानक का सघर्ष, पात्रो का चरित्र-चित्रण और अन्तर्द्वन्द्व सभी का सरक्षण मिलेगा। इनमे लेखक ने रग-सकेतो द्वारा जो ध्वनि-सयोजन किया है, वह नाटक के वातावरण को और भी मुखरता प्रदान करता है।

२ 'सोहनी महीवाल' का आरम्भ माँझी के गीत से होता है। जहाँ माँझी का गीत एक ओर अपने गीतितत्त्व से हृदय को तरगित करता है, वहाँ दूसरी ओर कहानी के प्रति जिज्ञासा और कहानी के भविष्य की सूचना भी प्रस्तुत करता है। सोहनी ने मार्ग की बाधाओ की परवा न करते हुए महीवाल से भेट की, इसका सकेत आरम्भ से ही मिल जाता है —

'प्रबल वायु से होड लगाती सबल सुहाती बाहें,
तूफानो को चीर चली है ये तूफानी बाहे,
इनके लिए बराबर जानी या अनजानी राहें।'

प्रेमीजी ने बडे ही नाटकीय कौशल से उत्सुकता को बढाया है, राही सोहनी महीवाल का नाम सुनते ही उनका परिचय पूछता हे तो माँझी इन शब्दो मे उसकी उत्सुकता को और भी बढा देता है —

'इस चनाब की लहरो मे ही हाय, सोगई, राही!
आन प्रेम की रखने को कुरबान होगई राही!'

कहानी धीरे-धीरे आरम्भ होती है। लेकिन जब नौकर इज्ज़तबेग से आकर सोहनी के रूप की चर्चा करता है तो सघर्ष बढ चलता हे। इज्ज़तबेग आकर सोहनी से मिलने को आकुल हो उठता है, सोहनी से उसका जो वार्तालाप होता है, वह

सघर्ष को और भी बढा देता है। इज्जतबेग प्रेम के लिए कगाल हो जाता है, वह सुख ठुकराकर सोहनी के घर नौकर हो जाता है। यहाँ से प्रेम की एकागिता नष्ट हो जाती है, सोहनी के हृदय मे भी इज्जतबेग (महीवाल) के प्रति प्रेम जाग उठता है। वह महीवाल मे कह देती है —

'हमने तुमको जान लिया है,
अपना तुमको मान लिया है।
महीवाल ! कदमो मे हाजिर,
अब से मेरी जान है।
जब तक कल-कल झना बहेगी,
मन मे भरी उमग रहेगी,
महीवाल की रहे सोहनी,
दुश्मन भले जहान है।'

यहाँ आकर 'प्राप्त्याशा' की अवस्था उभरती है। मार्ग मे बाधाएँ आने लगती है। सोहनी की मा उसके प्रतिकूल हो जाती है। किन्तु सोहनी दृढ रहती है। माँ उसका विवाह किसी अन्य से कर देती हे। महीवाल जोगी का वेश बनाकर सोहनी की ससुराल पहुँचता है। दोनो की भेट होती हे। महीवाल उपालम्भ देता है, किन्तु सोहनी अपना प्रेम ही व्यक्त करती है, यही से नियताप्ति शुरू हो जाती है, सोहनी घडे पर बैठकर नदी पार कर नित्य महीवाल से मिलने जाने लगती है। किन्तु ननद को पता चल जाता है तो वह एक दिन कच्चा घडा रख देती है, यहाँ सघर्ष की चरम सीमा है। सोहनी आखिर नदी मे कूद पडती है। तूफानी नदी उसे ग्रस लेती है, उधर शकाकुल महीवाल भी नदी मे कूद पडता हे। उसके हाथ सोहनी की लाश लगती है और प्रेमकथा का दु खद अन्त होता है। प्रेमीजी ने सोहनी की अपने पति के प्रति विरक्ति और महीवाल के प्रति आसक्ति दिखाकर, सच्चे प्रेम के लिए बलिदान दिखाकर इस सगीत-नाटिका का अन्त भी करुण-सुखान्त ही किया है।

सोहनी के चरित्र मे जहाँ एक ओर दृढता है, वहाँ प्रेमीजी के आदर्शवाद की स्थापना भी है। सोहनी कहती है —

'महीवाल ! सुन हठ की पक्की है पजाबिन बाला।
दुनिया तो क्या, रोक न सकती उसको पर्वतमाला।
धर्म जाति की और देश की दीवारो को तोड—
जिस पर दिल आता है, उससे लेती नाता जोड।
दिल का सौदा एक बार ही हे जोगी ! हो सकता !
बिका हुआ धन और किसी का कभी नही हो सकता।'

भाषा की सरलता और गीतो की मधुरता ने इस गीतिनाट्य को और भी सुन्दर बना दिया है ।

'सस्सी-पुन्नू' की रचना और भी उत्कृष्ट है। आरम्भ से ही कवि गीत का माधुर्य, वातावरण की रगीनी, प्रेम का रोमाच और जीवन का दर्शन लेकर चलता है। प्रेम-कहानी के लिए इस प्रकार का आयोजन कलाकार की कुशलता का ही परिचायक है।

अत्ता और फातॉं के प्रथम गीत मे शब्दसाम्य और ध्वनिसाम्य दर्शनीय है —

'छपक-छपक छपछप छपछप रे !
कपडे धो धोबिन मतवाली ।'

वहाँ गीत की लय और तान भी उतनी ही मधुर हे। जीवन-दर्शन की झलक इस प्रकार है —

'दरिया तो जीवन है अपना हम हे इसकी तरल तरगे ।'

साथ ही प्रेम का रोमाच भी विद्यमान् है —

'जाऊँ मै तुझ पर बलिहारी ।
मेरे मन को हाय ! डस गई,
हैं तेरी ये अलकें काली ।'

अत्ता और फातॉ को नदी मे सदूक बहा जाता दिखाई देता है, यहाँ कौतूहल का जन्म होता है। ये लोग सदूक पकड लेते हैं, और उसमे से निकली बालिका का पालन करते है। यही सस्सी है। यहाँ कवि ने हृदय के उल्लास का सूचक गीत रखा है। कहानी को वेग से बढाने के लिए उद्घोषक की अवतारणा की गई है। सस्सी बडी हो जाती है। सखियो के साथ झूला झूलने हुए उसकी एक बनजारे से भेट होती है। यही से कथा का आरम्भ होता है। बातो ही बातो मे पुन्नू अपना प्रेम प्रकट करता है और कह देता है —

'ससि यह हाथ न अब छूटेगा ।
अब न कभी नाता टूटेगा ।'

सस्सी भी अपने हृदय की स्थिति इन शब्दो मे स्वीकार कर लेती है —

'अजब खेल किस्मत का पुन्नू ! उठा हृदय भी मेरा डोल ।
व्यापारी के हाथ बिक गया भोला गाहक ही बेमोल ।
ऐसा पडता जान कि अपनी वर्षों पहले की पहचान ।
युग-युग के दो बिछडे पछी आज मिल गए है अनजान ।

सहसा माँ को दोनो के प्यार का पता चल जाता है, वह बाधा डालती है, लेकिन सस्सी बताती है कि वह धोबी बनकर रहने का वायदा करता है तो राजी

हो जाती है। दोनो का ब्याह हो जाता है। किसी प्रकार पुन्नू की माता को भी इस विवाह का पता चल जाता है, वह होतू को भेजती है। होतू चालाकी से पुन्नू को ले चलता है, यहाँ से प्राप्त्याशा का आरभ होता है। सस्सी व्यथित होती है। माता-पिता के समझाने पर भी नही मानती और रात मे घर से बाहर निकल पडती है। आँधी और तूफान की परवाह न करती हुई बढती ही चली गई। उधर पुन्नू को होश आया तो वह अपनी ऊँटनी का मुँह मोडकर दौड चला। दोनो का एक-दूसरे के लिए मिलने को ललकना नियताप्ति है। सस्सी रास्ते मे मर जाती है, अन्त मे पुन्नू भी उसके अधर चूमकर अपने प्राण गँवाता है। इस प्रकार इस विरहभरी प्रेम-कहानी का अन्त होता है। प्रेमीजी ने सस्सी और पुन्नू के गीतो की बडी ही मार्मिक योजना की है। सस्सी का यह गीत प्रेम की उत्कट योजना लिये हुए है —

'जो साँस साँस की है, क्यो बन गया पराया !
जो प्राण जिन्दगी का उसने मुझे भुलाया !
क्यों प्यार का समदर अगार बन गया है ?
जो जिन्दगी बना था तलवार बन गया है।
मल्लाह चल दिया है, मँझधार मे बहाकर।'

'सस्सी-पुन्नू' की यह प्रेम-कहानी आदि से अन्त तक पागल गीतो से भरी हुई है। सच तो यह है कि प्रेमीजी के सभी गीत नाट्यो मे यही सच्चा गीत-नाट्य है। काव्य की मर्मस्पर्शिता, जितनी इसमे है, उतनी अन्यत्र नही। सस्सी की माता का गीत ममता और वात्सल्य की सुन्दर व्यजना करता है —

'सूने घर मे दीप जलाया,
अँधियारे को दूर भगाया,
गोदी में चन्दा को पाया,
जन्नत बना हमारा धाम।
मेरा मन फूला न समाता,
ज्वार प्रेम का उठता आता,
इसकी छवि से शशि शर्माता,
ससि रक्खूंगा इसका नाम।
या रब तुमको लाख सलाम।'

वातावरण की जितनी सघनता इस नाटिका मे है, उतनी दूसरी नाटिकाओ मे नही। वातावरण और भाव के अनुकूल गीतो की रचना की गई है। काफिला लेकर जब होतू चलता है तो गीत की लय-तान स्वय काफिले का दृश्य आँखो के आगे प्रस्तुत कर देती है —

'चलो साथियो सँभल सँभलकर,
इस मुश्किल मजिल पर।'

नर्तकी का गीत मादक वातावरण की सृष्टि करता है —

'कैसी होती प्रीत किसी ने कब जाना ?
किसकी इसमे जीत किसी ने कब जाना ?
रहा प्रीत का गीत हमेशा अनजाना।
अनजाना अ जाम जवानी का।
पीलो-पीलो जाम जवानी का।'

'मिर्जा साहिबाँ' भाव-प्रधान न होकर घटना-प्रधान अधिक है। इसलिए इसके कथानक मे अधिक उतार-चढाव है। अन्य गीतिनाट्य विशुद्ध प्रेम-मूलक हैं तो यह वीररस से परिपूर्ण है। शृंगार तो इसकी प्रेरणामात्र है। मिर्जा साहिबाँ मे प्रीति हो जाती है, किन्तु जाति के बन्धन इसमे बाधक होते है, साहिबाँ की माँ उसका विवाह अपनी ही पठान जाति मे करना चाहती है, इस प्रकार मिर्जा और साहिबाँ की प्रीति मे बाधा पडने लगती है। साहिबाँ की बुआ किसी प्रकार प्रीति मे सहायक होती है और मिर्जा साहिबाँ को घोडे पर उठाकर भगा ले जाता है। कहानी यहाँ से नया मोड धारण करती है। रास्ते मे एक सरकारी बगीचा आता है। वहाँ पहरेदार बाधा डालता है। मिर्जा का पहरेदार से युद्ध होता है। पहरेदार मर जाता है। मिर्जा थककर सो जाता है, साहिबाँ जागी हुई है, वह देखती है कि एक तोते के गले मे फल फँस गया है, वह मिर्जा को जगाती है। मिर्जा अपनी धनुर्कुशलता से फल को काट गिराता है और तोते की भी रक्षा हो जाती है। साहिबाँ उसकी वीरता से हैरान होती है, और उसके हृदय मे यह भय जाग उठता है कि मिर्जा से अगर मेरे भाइयो की मुठभेड हो गई तो मिर्जा उन्हे मार डालेगा। वह मिर्जा को गहरी नीद मे देखकर उसके बाणो को तोड डालती है। लेकिन इतने ही मे साहिबाँ के भाई आ जाते है। विषम स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पाठक यहाँ पर अपना हृदय सँभालकर युद्ध देखते है। मिर्जा तलवार के वार से साहिबाँ के भाई को घायल कर देता है। वह साहिबाँ को लेकर आगे बढता है तो साहिबाँ का भाई और उसके साथी उसे भागने का ताना देते है, जिससे मिर्जा फिर लौट पडता है। घमासान लडाई होती है, मिर्जा मारा जाता है। इस प्रकार इस सघर्ष-प्रधान कहानी का अन्त होता है। बाहरी सघर्ष के तो कई स्थल इस कहानी मे है ही, अन्तर्द्वन्द्व का भी स्थान कवि ने निकाल लिया है। साहिबाँ के हृदय मे मिर्जा के लिए भी प्यार है, किन्तु भाइयो के प्रति ममता भी। प्रेम और ममता के द्वन्द्व का चित्रण अच्छा हुआ है। साहिबाँ कहती है —

मिर्जा के हाथो मे जब तक होगी तीरकमान !
लड़-मरने के लिए निरन्तर व्याकुल होगे प्राण !

मेरे भाई भी आवेगे और चुनौती देंगे।
मिर्जा के अचूक बाणो से हाय न प्राण बचेगे ।।
भाई भी मुझको प्यारे है, प्यारा है भर्तार।
मै क्या करूँ कि अब दोनों मे रहे नही तकरार।'

वीररस प्रधान होने के कारण प्रेमीजी ने मिर्जा के चरित्र का बडा ही उत्कृष्ट चित्रण किया है। जब बीबो उसे ताहिर के घर जाने से रोकती है तो वह बडे विश्वास के साथ कहता है —

'मै हूँ मुग़ल मुझे है अपने हाथो पर विश्वास।
छीन उसे लाऊगा चाहे दुश्मन हो आकाश!
नदी बहा देगी लोहू की यह मेरी शमशीर!
ढेर लगा देगे लाशो के मेरे तीखे तीर!'

अपनी वीरता के सामने वह न तो रब के हाथो की ताकत की परवाह करता है, और न काल से ही डरता है —

'तुमको मुझसे छीन न सकते अब रब के भी हाथ!

× × ×

तू है मेरे पास, न डरता आ जावे अब काल!'

प्रेम का अक्षय कवच पहनकर प्रेमी की वास्तव मे यही स्थिति होती है। वह इस बात को भली प्रकार जानता है —

'सुनो इश्क की गैल सदा से रहा मौत का परवाना।
वो ही इसमे कदम रखेगा जिसने है मरना जाना।'

मिर्जा को अपनी वीरता के साथ अपनी जाति का भी अभिमान है —

'पूत मुगल का दान न लेता और न वह चोरी करता है।
तलवारों की ताकत से वह इच्छाएँ पूरी करता है।'

चरित्र-चित्रण और कथा-विकास की दृष्टि से तो निस्सन्देह यह गीतिनाट्य उत्तम है, किन्तु जिस भावप्रवणता की गीतिनाट्य मे अपेक्षा की जाती है, वह इसमे नही है। मार्मिक स्थल केवल मात्र एक ही है। अन्यत्र शादी की कार्यवाही होने के अवसर पर साहिबाँ जो दर्दभरा गीत गाती है, केवल वही हृदय को आघात पहुँचाता है, अन्यथा तो घटना-चक्र मे ही मन उलझा रहता है। 'सस्सी-पुन्नू' मे जो प्रेम का प्रवाह है, उसके दर्शन इस गीतिनाट्य मे नही होते। प्रेमीजी के कविरूप की अपेक्षा नाटककार के रूप के ही विशेष दर्शन इसमे होते है। आरम्भ मे यहाँ मिर्जा औरत के व्यवहार की काव्यात्मक वर्णना करता है —

'औरत का व्यवहार शरद् के बादल-सा चचल।
तरह-तरह के रूप बदलता रहता है पल-पल!'

वहाँ तुरन्त वह यह भी कह देता है —

'मुझको है विश्वास अन्त तक नही रहोगी मेरी ।'

यहाँ कवि की काव्यकला की अपेक्षा नाट्यकला के ही दर्शन होते है, अन्तिम पक्ति मे लेखक ने भावी घटना की ओर सकेत कर नाटकीय कौतूहल और उत्सुकता की सृष्टि की है ।

'हीर राँझा' मे प्रेम का कारण है दया । हीर की सखियाँ राँझे की मरम्मत करती और करवाती है । राँझा की दशा देखकर हीर को दया आ जाती है । वह राँझे को अपने यहाँ महीवाल का काम दिलवा देती है । दोनो मे गाढी प्रीति होने लगती है । हीर के चाचा कैदो को यह प्रेम अच्छा नही लगता । वह हीर की माँ से उसकी शिकायत कर देता है । माँ राँझे को नौकरी से निकालने की धमकियाँ देती है । हीर अपनी हठ पर अडी रहती है । हीर का विवाह अन्यत्र कर दिया जाता है । हीर की भाभी सहती हीर की सहायता करती है । राँझा जोगी के रूप मे आता है । सहती के कथनानुसार हीर साँप काटने का बहाना करती है । राँझा उसे ले आता है । अपने गाँव आकर बडा बखेडा खडा हो जाता है । गाँववाले मिलकर हीर को विष दे देते है । हीर की लाश पानी मे बहा दी जाती है । राँझा भी नदी मे कूदकर प्राण दे देता है ।

इस नाटिका मे प्रेम की उदात्तता दिखाई गई है । हीर और राँझा दोनो ही प्रेम की महत्ता के लिए बलिदान देते हं । हीर बताती है कि प्रेम जाति-पाति के बधन नही मानता और ऊँच-नीच की दीवारो को तोडकर हृदयो का नाता जुड जाता है —

'ऊँच-नीच की, जाति पाँति की दीवारो को तोड ।
सच्ची प्रीति लिया करती है दिल का नाता जोड ।'

इसमे भी कहानी कहने का आग्रह ही अधिक है । हृदय की भाव-व्यजना की ओर उतना ध्यान नही दिया गया ।

'दुल्लाभट्टी' की कहानी वीरतापूर्ण कृत्य से प्रारम्भ होती है । दुल्ला को अपनी माँ से पता चलता है कि उसके पिता को अकबर ने बन्दी बनाकर मार डाला, क्योकि वह स्वतन्त्र विचारो का व्यक्ति था । दुल्ला बदला लेने के लिए लुटेरा बन गया, उसने पजाब का मान रखने की ठान ली । लुटेरो का गिरोह बना लिया । एक दिन शाही खज़ाना लूट लिया और काफिले के सेनापति को मार भगाया । दुल्ला प्राय नूरी की मटकियाँ फोड दिया करता था । नूरी को जब इस घटना का पता चला तो वह इसकी वीरता से प्रभावित हुई । दुल्ला नूरी से प्रणय-निवेदन करता है । नूरी अपने पिता का भय देती है । वे बाते कर ही रहे होते है कि गौहर नामक वीर आकर दुल्ला को सन्देश देता है कि एक किसान की आपसे पुकार है, उसकी रक्षा करो ।

लडकी का विवाह रुक गया है, क्योकि उसके पिता से भारी दहेज माँगा जा रहा है। दुल्ला तलवार से दहेज देने की बात कहकर चल देता है। नूरी रोकती रह जाती है।

उधर पजाब प्रान्त के नवाब मिर्ज़ा के पास दिल्ली से सूचना आती है कि जिसने शाही खज़ाना लूटा है उस डाकू को पकडकर लाया जाये। मिर्जा असमजस मे पड जाता है, तभी उसका लडका हैदर डाकू को पकड लाने के लिए कहता है। हैदर दुल्ला को पकडने चल पडता है। मार्ग मे उससे नूरी की भेट होती है। वह उससे पानी पिलाने को कहता और प्रणय-निवेदन करता है। नूरी उसे फटकारती है। वह वहाँ से चलता हुआ दुल्ला के घर पहुँचता है। वहाँ उसकी भेट दुल्ला की माँ से होती है। इसी समय दुल्ला आ जाता है। माँ उससे कहती है कि यह तेरा दूध का भाई है। माँ उनके लिए खाना लेने जाती है। तभी हैदर अपने आने का प्रयोजन बताता है। दुल्ला कहता है कि तुम निश्चय ही उस डाकू को मार डालो। हैदर तभी दुल्ला से नूरी के प्रति अपनी आसक्ति की चर्चा करता है। उससे इस सम्बन्ध मे सहायता चाहता है। जब वह नूरी को दिखाता है तो पहले तो दुल्ला को बडी चोट पहुँचती है, किन्तु फिर हैदर को दिये गये वचनो का ध्यान आता है।

दुल्ला नूरी से जाकर हैदर की चर्चा करती है, नूरी बहुत दुःखी होती है। दुल्ला प्यार को बहुत ऊँचा रूप देना चाहता है, वह नूरी से हैदर के साथ विवाह कर लेने का हठ करता है। रावी मे डूब मरने की धमकी देता है तो नूरी मान जाती है। नूरी का हैदर से विवाह हो जाता है। हैदर के पिता को जब पता चलता है कि उनका लडका डाकू को पकडने गया था और विवाह कर लाया है तो उसे बडा क्रोध आता है। वह दोनो को बन्दीगृह मे ले जाने की आज्ञा सुना देता है। नूरी किसी प्रकार दुल्ला के पास कबूतर द्वारा सन्देश भिजवाती है। दुल्ला अपने सैनिक लेकर लाहौर पर हमला बोल देता है। मिर्ज़ा दुल्ला पर हमला करता है, नूरी बीच मे आ जाती है और मारी जाती है। दुल्ला मिर्जा पर हमला करता और उसे मार गिराता है। घाव अधिक लग जाने के कारण दुल्ला भी मर जाता है।

वीरता, प्रेम, कर्त्तव्यपालन की भावना को बडे सुन्दर ढग से निभाया गया है। पजाब की वीरता, जात्याभिमान और टेक को भी अच्छी अभिव्यक्ति मिली है —

'दुल्ला—यह पजाब किसी के आगे नही झुकाता शीश।
परवत भी आगे आवे तो देंगे उसको पीस॥
नूरी— हम पजाबी लाल रग से कब होते भयभीत।
फूले नही समाते है जब छिडते रण के गीत॥'

प्रेमीजी की इन सगीतिकाओ मे देशकाल का पूरा ध्यान रखा गया है। क्योकि इनकी रचना पजाब की प्रसिद्ध प्रेममूलक लोक-गाथाओ पर हुई है, अत पजाब की सभ्यता-सस्कृति की झलक इनमे साफतौर पर दिखाई देती है। पजाब की लस्सी,

चर्खा कातना भारत भर मे प्रसिद्ध है। मलकी चरखे का गीत गाती हुई पजाब की लोक-सस्कृति को मुखरित करती है —

'घनन घनन घन चल रे चरखा
कर दौलत की बरखा।
रूई चाँदनी सी है उजली किरनो जैसा सूत।
करघे पर बुन वस्त्र पहनते है पजाबी पूत।
मन मे फूले नहीं समाते,
तन पर पहन अँगरखा।'

इसी प्रकार हीर लस्सी रिडकती हुई गाती है —

'लस्सी रिडक बनाऊँ माखन फूली नहीं समाऊँ।
यह पजाब देश की लस्सी सबको शेर बनाती।
तन को ताकत देती मन मे नए भाव उपजाती।'

पजाब का व्यक्ति निडर और अक्खड स्वभाव का होता है। इस व्यक्ति-वैशिष्ट्य को स्थान-स्थान पर व्यक्त किया गया है। हीर की सहेलियाँ कहती है —

'हम है पजाबिन अलबेली,
सदा मौत की बनें सहेली,
कुडी कुआँरी की मजी पर,
मर्द पराया सोया आकर,
छडियाँ मँहदी की ले आओ,
परदेशी को मजा चखाओ।'

मजी, कुडी, मँहदी की छडी आदि शब्दो के प्रयोग से तो पजाब देश का चित्र ही आँखो के सामने उतर आता है।

इसी तरह 'सोहनी महीवाल' मे पजाब-निवासी का स्वभाव चित्रित किया गया है —

'इस चनाब की धारा की आदत ही तूफानी है,
सच पूछो पजाब देश की फितरत ही तूफानी है।

सोहनी भी कहती है —

'महीवाल ! सुन हठ की पक्की है पजाबिन बाला।
दुनिया तो क्या रोक न सकती उसको पर्वतमाला।'

'मिर्ज़ा साहिबाँ' मे उद्घोषक द्वारा भी पजाबी चरित्र पर प्रकाश डाला गया है —

'यह चनाब के तट का देश कि इसका पानी तूफानी।
यह हरियाला देश जवानी इसकी हरदम मस्तानी॥

मर्द यहाँ के शेर शेरनी-सी है यहाँ की हर नारी ।
यह पंजाब देश का दिल है इसको कहते हैं बारी ॥'

लोक-गाथाओ की आत्मा का सरक्षण करने मे जो कुशलता प्रेमीजी ने पाई है, वह सफलता भी कम ही लोगो को मिलती है । लोक-गाथाओ के अनुरूप कवि ने ग्रामीण वातावरण ही बनाये रखा है, उसमे नगर की कृत्रिमता नही आने दी है । नगर के कोलाहल से दूर ग्रामीण जीवन का उल्लास ही सवत्र दिखाई देगा । 'सोहनी महीवाल' मे इज्जतबेग की दशा का वर्णन करते हुए ग्राम्य जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गई है —

'गया सोहनी के अब्बा के पास नौकरी करने ।
भैंस चराने, मिट्टी ढोने एवम् पानी भरने ॥

ग्रामीण महिलाएँ, लडकियाँ आदि नदियो-नहरो मे स्वच्छन्द स्नान के लिए जाया करती है । 'हीर-राँझा' मे हीर भी अपनी सखियो के साथ जाती है । पशु-चारण गाँव का नया-निराला दृश्य होता है, इसकी झाँकी चूचक के मुख से सुनिए —

'बडी मुसीबत है ये डगर, इनको कौन सँभाले ?
मुझ से रोज शिकायत करते आकर खेतो वाले ।'
'भैसे गईं उजाड खेत को हुआ बहुत नुकसान ।'

गाँव की गोरियाँ सावन मे झूले पर झूला करती है, और मादक गीत गाकर अपने हार्दिक उल्लास को अभिव्यक्त किया करती है । सस्सी भी अपनी सखियो के साथ झूला झूल रही है —

'हौले हिचकोले ले, रानी !
हिचकोलो से हिले जवानी !
हिले जवानी जो मस्तानी !
अग उमगो मे भर फूले ।
आओ सखियो झूला झूलें ।'

व्यापारी या बनजारे आदि किस प्रकार गाँव मे जाकर अपना माल बेचते है, इसका भी अच्छा चित्रण किया गया है । जहाँ तक बन पडा है, कवि ने अपने पाठको को बराबर ग्रामीण वातावरण मे ही रखा है ।

लोक-गाथाओ मे प्राय प्रेम प्रथम-दर्शन पर ही हो जाता है, प्रेम को जब परिणय मे बदलने की बारी आती है तो बाधाएँ पडती है । अन्त मे या तो बाधाओ पर विजय पाकर प्रेमी-प्रेमिका का मिलन हो जाता है या दोनो ही की मृत्यु हो जाती है । प्रेमीजी ने अपने सभी गीति-नाट्यो मे प्रथम-दर्शन पर ही प्रेम दिखाया है । यह प्रेम या तो रूप के आकर्षण से हुआ है या दया के कारण ।

'सस्सी-पून्नू' मे पुन्नू ने तो केवल हुस्न का हाल ही सुना था कि चला आया और दर्शन पाकर प्यार हो गया। पुन्नू सस्सी से बताता है —

'बस उससे ही नाम तुम्हारा जाना, सुना हुस्न का हाल।
सुनकर खिचा चला आया मै सका न अपने होश सभाल।'

और उस पर अपना सवस्व निछावर करने को तैयार हो जाता है। परिणाम होता है कि सस्सी भी उससे प्रेम करने लगती है —

'अजब खेल किस्मत का पुन्नू उठा हृदय मेरा भी डोल।
व्यापारी के हाथ बिक गया भोला गाहक ही बेमोल।'

फलस्वरूप —

'और इस तरह ससि पुन्नू मे प्यार हो गया।
दिल का दिल से अनजाने व्यापार हो गया॥
आँखो का आँखों से कुछ इकरार हो गया।
पिया इश्क का जाम नया ससार हो गया॥'

होतू बीच मे बाधक होता है। अन्त मे दोनो की ही मृत्यु दिखाई गई है। 'हीर-राँझा' मे प्रीत का कारण दया है। राँझे ने अपनी दु खद कथा हीर को सुनाई। किन्तु यह कथा तो एक बहाना मात्र थी, वास्तव मे तो दर्शन ही मुख्य है —

'तुम से मिलने का था मानो यह दुर्भाग्य बहाना।
इसी तरह था हीर हूर का मुझको दर्शन पाना।'

अन्त इसका भी पूर्वकथा की भाँति होता है।

'सोहनी महीवाल' मे भी इज्ज़तबेग अपने नौकर से सोहनी के रूप की प्रशसा सुनता है, मिलने को पागल हो उठता है —

'नौकर—**मै क्या कहूँ गगन का चन्दा है धरती पर आया।**
हिरनी जैसे नैना, गोरा रग, स्वर्ण-सी काया।
है सुडौल हर अग देखकर दिल हो उठता पागल।
और बोलती है तो लगता मधुर बज रहे पायल।

'इज्ज़त०—**बस कर पागल और न कह कुछ मुझे वहाँ पर ले चल।**
हुआ बात सुन उसके दर्शन करने को दिल चचल।'

दर्शन का जो परिणाम हुआ वह इस प्रकार है —

'इज्ज़तबेग नाम था छोडा, महीवाल कहलाया।
हाय, इश्क की खातिर अपने घर का सुख ठुकराया।'

सोहनी ने भी अपने मन की बात कह दी —

'हमने तुम को जान लिया है,
अपना तुम को मान लिया है।'

प्राय सभी गीतिनाट्यो की भाषा इसी प्रकार चलती है। गीतो की भाषा भी सरलतम ही रखी गई है। चाहे वह गीत वर्णनात्मक हो, चाहे भावात्मक। चरखे का वर्णनात्मक गीत लीजिए —

'घनन घनन घन चल रे चरखा कर दौलत की बरखा।
रुई चाँदनी सी है उजली किरनो जैसा सूत।
करघे पर बुन वस्त्र पहनते है पजाबी पूत।
मन मे फूले नही समाते तन पर पहन अँगरखा।'

साहिबाँ की व्यथा की अभिव्यक्ति करने वाले दर्दभरे गीत की भाषा भी इतनी ही सरल है —

सितम दुनिया मे ज्यादा हैं, रहम कम है, रहम कम है।
मिलाता कौन दिल से दिल दिलो को सब जुदा करते।
उजडती हैं तमन्नाएँ किसी को भी नहीं ग़म है।'

सस्सी का व्यथा-सिक्त गीत भी इतनी ही सरल भाषा मे लिखा गया है —

'जो साँस साँस की है क्यो बन गया पराया।
जो प्राण जिन्दगी का उसने मुझे भुलाया।
क्यों प्यार का समन्दर अगार बन गया है ?
जो जिन्दगी बना था तलवार बन गया है।
मल्लाह चल दिया है मँझधार मे बहाकर।
ऐ चाँद, तू बता दे दिलदार है कहाँ पर ?'

पुन्नू की पीडाभरी रागिनी भी इसी सरल भाषा मे बाहर आती है —

'छोटी-सी डाल चमन की दो पछी उसपर बसते।
थे छोड जगत् की दौलत अरमान हमारे हँसते।
गाते थे गीत खुशी के क्यो जग ने तीर चलाया।
बेदर्द हवाओ ने क्यों है मेरा दीप बुझाया।'

गीतो की शैली भी लोकगीतो की भाँति सर्वसाधारण के गाने योग्य ही है। शास्त्रीय विधान द्वारा जटिल रूप नही दिया गया है। जहाँ वर्णनात्मकता है, वहाँ भी लोक प्रचलित छन्दो—लावनी, आल्हा आदि का ही प्रयोग किया गया है। 'सस्सी-पुन्नू' मे धोबियो का गीत किसी भी लोकगीत से कम नही है। 'छपक-छपक-छप-छप-छप रे, कपडे धो धोबिन मतवाली' का स्वर सुनते ही देहाती धोबियो का समूह-गान सामने आ जाता है। यही स्थिति पुन्नू के गीत की है —

'आया रे बनजारा आया,
माल अनोखे लाया।'

'हीर-राँझा' मे चरखे का गीत और लस्सी का गीत देहाती महिलाओ की तस्वीर आँखो के आगे ला देते हैं, जोकि अपने मस्त भाव से प्राय परिश्रम के समय गाया करती है। दोनो ही गीतो की लय लोकगीतो की धुनो पर आधारित है।

उद्घोषक और माँझी आदि के वर्णनात्मक सम्वाद भी लोक-प्रचलित छन्दो मे ही रखे गये है। माँझी का वर्णन सुनिए —

'यह तो सच है किन्तु इश्क मे होता है यह हाल।
दौलत सभी लुटाकर इज्ज़्तबेग हुआ बेहाल।

× × ×

'इज्जतबेग नाम था छोड़ा, महीवाल कहलाया
हाय इश्क की खातिर अपने घर का सुख ठुकराया।'

इस प्रकार गीतिनाट्यो की परम्परा मे प्रेमीजी की यह देन अद्भुत है। उनके गीतिनाट्य केवल कुछ लोगो की ही सम्पत्ति नही है, उनका सम्मान उच्च-वर्गीय पढे-लिखे लोगो के बीच भी होगा और सर्वसाधारण के कठ का हार भी वे बनेगे।

'मीराबाई' के जीवन पर आधारित सगीतिका भी प्रेमीजी ने लिखी है, किन्तु उसमे वह वातावरण, वह मौलिकता और वह नाटकीयता वे नही ला सके जो उक्त सगीतिकाओ मे। मीराबाई की ही रचनाएँ देने के कारण उसमे मौलिकता के लिए इतना स्थान था भी नही।

सगीतरूपक 'देवदासी' भी इसी कोटि की रचना है। इसमे एक ऐसी देव-दासी की दुखद कहानी है जो सामान्य वैवाहिक जीवन बिताना चाहती है। नाटक के कथोपकथन और सगीतिका का काव्य दोनो ने मिलकर इस रचना को प्रभावशाली बना दिया है। प्रेम मनुष्य का स्वाभाविक गुण-धर्म है और वह किसी प्रकार की सीमाएँ नही मानता। मनुष्य के प्रति मनुष्य की आसक्ति पाप नही है, जो इसे पाप कहता है वह न तो धर्म है और न ही ईश्वर-भक्ति। यही 'देवदासी' का सन्देश है।

नौ

प्रेमीजी की एकांकी कला

यद्यपि भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार एकाकी नाटक प्राचीनतम साहित्य-विधाओ मे से एक विधा है, किन्तु फिर भी एकाकी नाटक आधुनिक युग की देन माना जाता है। जिन परिस्थितियो और प्रेरणाओ के कारण उप यास से कहानी का जन्म हुआ, उन्ही के फलस्वरूप नाटक से एकाकी का ज म हुआ। एकाकी नाटक का वास्तविक विकास प्राय कुछ ही दशाब्दियो का इतिहास है।

औद्योगिक स्पर्धा के फलस्वरूप अवकाश का अभाव, रगमच की जटिलता तथा चित्रपट की सस्ती लोकप्रियता ने पूर्ण नाटको के विकास के मार्ग मे भली प्रकार एक बाधा उपस्थित कर दी। फिर भी नाटक अबाध-गति से आगे बढता रहा। अवकाश के सीमित क्षणो मे, कम-से-कम साधनो के बीच, अभिनय की अपेक्षाकृत सुलभता एवम् अपनी अभिव्यजना की शक्ति लिए हुए इस दिशा मे एकाकी का उदय हुआ। चरित्र-चित्रण का सीमित क्षेत्र होने पर भी पूर्ण नाटक की अपेक्षा एकाकी नाटक जीवन के तीखे रस मे डूबे हुए सिद्ध हुए। क्योकि इनका उदय जिन साहित्यिक परिस्थितियो मे हुआ, उनमे सघर्ष की मात्रा सबसे अधिक थी। इसी सघर्ष तत्त्व से इस कला की आत्मा की भी प्रतिष्ठा हुई।

एकाकी नाटक की कला अत्यन्त सूक्ष्म और स्वतत्र है। प्रभाव की दृष्टि से यह कला अपने आपमे पूर्ण है, क्योकि एकाकी नाट्य-कला कल्पना से भिन्न विशेषत यथार्थ जीवन के धरातल से विकसित होती है, एकाकी नाटक पात्रो के माध्यम से जीवन की विशिष्ट और साधारण दोनो प्रकार की समवेदनाओ को लेकर चलता है। यह समवेदना इतिहास, राष्ट्र, धर्म, समाज और व्यक्ति सभी को अपनी कलात्मक सीमा मे बाँधकर चलती है और उन पर सहसा एक ऐसा विद्युत् प्रकाश छोडती है कि हमारा समूचा जीवन एक क्षण के लिए आलोकित हो जाता है।

आधुनिक एकाकी पश्चिम की कला से बहुत प्रभावित है, अत एकाकी कला मे अन्तर्द्वन्द्व और घटनाओ का घात-प्रतिघात सबसे प्रधान तत्त्व स्वीकार किया गया है। दो विरोधी परिस्थितियाँ अपने-अपने सत्य के साथ आपस मे टकराती है और उनका सघर्ष समूचे एकाकी मे फैल जाता है। इस तरह एकाकी मे एक निश्चित समस्या की तीव्रता, उसके द्रुत विकास, आवेग और चरमसीमा पर उस समस्या की चरम अन्विति, एकाकी कला की मूल विशेषताएँ है। इसको एक अद्भुत

सूत्र मे बाँधने के लिए इस कला मे कौतूहल और जिज्ञासा की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। इसी तत्त्व मे एकाकी के समस्त तत्त्व आपस मे इस तरह जुडे रहते है, जैसे एक पूर्ण विकसित पुष्प मे उसकी पखुडियाँ, पराग और सुगन्ध।

उपन्यास, नाटक आदि की भाति एकाकी के तत्त्वो को अनावश्यक विस्तार नही दिया जा सकता। विद्वानो ने एकाकी के तीन ही मूल तत्त्व माने है — कथावस्तु, पात्र और कथोपकथन। इन्ही के माध्यम से एकाकी की एक मूल घटना, परिस्थिति एवम् समस्या नाटकीय कौशल से कौतूहल का सचय करती हुई एक सुनिश्चित और सुकल्पित लक्ष्य तक अथवा अपनी चरमसीमा तक पहुँचती है। गौण परिस्थितियो अथवा प्रासगिक घटनाओ के लिए एकाकी मे कोई स्थान नही।

एकाकी की कथावस्तु मे निश्चित रूप से जीवन की तीव्र अनुभूति होनी चाहिए। कथानक के पूरे इतिवृत्त के लिए यहाँ कोई गुजाइश नही है। केवल व्यजना और ध्वनि से ही काम चलाना होता है। यही कारण है कि एकाकी मे वही मूल घटना ली जाती है, जिसकी व्यजना मे एक ओर नाटकीय परिस्थिति हो और दूसरी ओर उसमे जीवन की अधिक-से-अधिक समग्रता और व्यापकता हो।

जीवन की तीव्र अनुभूति मे कुशल एकाकीकार यथार्थ और अपने लक्ष्य को संजोये रहता है तथा उनकी निष्पत्ति एकाकी की चरमसीमा पर प्रकट होती है। कथा विधान की दृष्टि से एकाकी नाटक मे कथारूप का निश्चित रूप तब हमारे सामने आता है, जब नाटक मे आधी से अधिक घटना बीत चुकी होती है। इसलिए नाटक के आरम्भ मे ही कौतूहल और जिज्ञासा की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। उसीके सहारे नाटक मे आगे आनेवाली घटनाएँ, उनका विकास-क्रम एकसूत्रता मे बाँधा जा सकता है, नही तो सम्पूर्ण नाटक फीका और जी उबानेवाला हो जाता है। घटनाओ के तारतम्य मे नीरसता आ जाती है और एकाकी की मूल अनुभूति अस्पष्ट और अव्यक्त ही रह जाती है। वास्तव मे कौतूहल के कारण ही एकाकी की कथावस्तु घटनाओ एव कार्य-व्यापारो के माध्यम से चरितार्थ होती हुई चरमसीमा तक खिची रहती है। चरमसीमा के उपरान्त ही एकाकी नाटक की समाप्ति हो जानी चाहिए। कथानक मे वास्तविकता, उत्तेजना, कौतूहल, जिज्ञासा की जाग्रति, पग-पग पर विस्मय अर्थात् फल का अन्त तक दुविधा मे छिपे रहना और रोचकता ही उसका प्राण है।

एकाकी के कथानक मे एकरूपता रहनी चाहिए। असल मे एकाकी एक प्रकार का गीत है। जिस प्रकार गीत का प्राण एक ही विशेष भाव मे रहता है, उसी प्रकार एकाकी का प्राण भी केवल एक ही भावना-विशेष मे छिपा है। अनेकरूपता एकाकी को अपने आदर्श से गिरा देती है।

पात्र या चरित्र-चित्रण एकाकी का दूसरा तत्त्व है। पात्रो के द्वारा नाटक की मूल घटनाएँ और अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है, पात्रो के चरित्र-चित्रण,

इन्ही के मानसिक सघर्ष और इन्ही की गतिशीलता द्वारा एकाकी मे स्वाभाविक रूप से नाटकीय आरोह-अवरोह उपस्थित होता है। एकाकी मे पात्र भी कम-से-कम होने चाहिएँ। एकाकी मे पात्रो की कल्पना दो कोटियो मे होती है—मूल पात्र तथा गौण पात्र। मूल पात्र एकाकी के चरम लक्ष्य का नायक होता है। यही वह शक्ति होती है, जिससे नाटक की मूल समवेदना चरमसीमा पर पहुचती है और नाटक की अनुभूति साकार हो उठती हे। गौण पात्र मुख्यत नाटक के मूल पात्र की सहायता के लिए होते है। ये पात्र कभी-कभी नाटक की मूल समवेदना को उत्तेजित करते है। दूसरी ओर ये पात्र मूल पात्र की आत्माभिव्यक्ति मे, माध्यम का कार्य करते है। इन पात्रो के द्वारा प्राय नाटक के कार्य-व्यापार और विविध प्रकार की घटनाओ की किसी-न-किसी प्रकार से सूचना मिला करती है।

एकाकी मे सब प्रकार के, सब स्तर के पात्र आ सकते है, लेकिन सफल एकाकी मे वही पात्र अत्यन्त शक्तिशाली सिद्ध होता है, जो अपने बाह्य कार्य-व्यापारो के साथ-साथ अपने चारित्रिक स्तर मे अन्तर्मुखी होते है। पात्रो के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से नाटकीय परिस्थिति भी पैदा होती है और उचित सघर्ष को भी स्थान मिलता है।

एकाकी का अन्तिम तत्त्व है, कथोपकथन। यही सभाषण, वार्तालाप या बात-चीत कहलाता है। कथोपकथन के सहारे ही पात्र नाटक की सम्पूर्ण वेदना लिये हुए अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचता है। इसी तत्त्व के द्वारा एकाकी की समूची गति निश्चित होती है। नाटक की पूर्ण सफलता और असफलता तो इसके अधीन होती है। कथोपकथन प्रौढ और स्वाभाविक होगे तो पात्रो को मूर्त रूप मिल सकेगा अन्यथा नही, निर्बल कथोपकथन सारा खेल बिगाड देते है। सतुलित कथोपकथन नाटकीय परिस्थितियो के अभाव मे भी एकाकी को सफल करते है। ऐसे ही सम्वाद दर्शको मे रस का उद्रेक कर पाते है। पात्रो के सम्बन्ध मे जो स्थान चरित्र के मनोविज्ञान का होता है, वही स्थान कथोपकथन मे वाक्चतुराई और उसकी स्वाभाविकता का है। स्थिति और भावो के अनुसार ही सम्वाद होने चाहिएँ।

कथोपकथन न तो वाद-विवाद का रूप धारण करे और न ही उपदेश या भाषण का। वे सक्षिप्त और वाक्पटुता से पूर्ण होने चहिए। कथोपकथन मे एकाकी की अनुभूति और भावविन्दु की मर्मस्पर्शिता हो तथा इसके प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक शब्द, प्रत्येक सकेत मे चरित्र की आन्तरिकता तथा उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व का सगीत हो।

तत्त्वो के बाद एकाकी के शिल्प-विधान पर भी थोडा विचार कर लेना चाहिए। विद्वानों का विचार है कि चरमसीमा ही एकाकी की शिल्प-विधि का मूलाधार है। इसकी कला मे चरमसीमा ही वह लक्ष्य-बिन्दु है, जहाँ एकाकी का समूचा

सविधान उसमे केन्द्रित होता है। शिल्प-विधान के प्रारम्भ, विकास और चरम-सीमा इसकी मूल गतियाँ है। इन तीनो को ही एकाकी का गुण अथवा विशेषता माना गया है।

एकाकी का आरम्भ रग-सकेत से शुरू होता है। इससे नाटक की समवेदना या देशकाल और परिस्थिति स्पष्ट होती है। नाटक की भावभूमि एव कार्यभूमि क्या है, किस रूप मे है, इसका उल्लेख होता है। दशक या पाठक के मन मे उत्पन्न एकाकी से सम्बन्धित पूरी पृष्ठभूमि स्पष्ट की जाती है तथा नाटक मे सम्पूर्ण रूप से नाटकत्त्व स्थापित करके नाटक की मूल भावना को प्रथम उद्दीप्ति देने तथा अभिनय के सहायतार्थ पात्रो की रूप-कल्पना के लिए इसकी अवतारणा नितान्त आवश्यक है। यह रग-सकेत पूरे एकाकी भर मे फैला रहता है और सर्वत्र इससे नाटकत्त्व की प्रतिष्ठा होती रहती है।

नाटक के आरम्भिक अश मे कौतूहल और जिज्ञासा तत्त्व का सन्निवेश इस कला की चरम सफलता है। इस आरम्भ अश मे एकाकी के लक्ष्य के बीज का प्रस्तुत होना सफल एकाकी के लिए आवश्यक है। इस बीज अश मे एक ओर नाटक की मूल समवेदना गुँथी रहती है और दूसरी ओर इसमे एकाकी के मुख्य पात्र स्थान पाते हैं।

एकाकी के विकास को तीन भागो मे विभाजित कर सकते है —

१ प्रथम मुख्य घटना या काय-व्यापार, जिसमे एकाकी के मूल भाव की सूचना होती है।

२ द्वितीय मुख्य घटना या कार्य-व्यापार, जिसमे कौतूहल का अश बहुत ही तीव्र होता है और जिसके द्वारा एकाकी के भाव पर प्रकाश पडता है।

३ तृतीय मुख्य घटना या कार्य-व्यापार, जिसमे एकाकी की समवेदना अपने चरमोत्कष पर पहुँचती है और उसके भावो मे असीम तीव्रता प्रस्तुत होती है।

चरमसीमा मे आकर एकाकी का कार्य समाप्त हो जाता है। चरमसीमा की प्रेरणा समूचे एकाकी के विस्तार मे इस तरह छिपकर नाटकीय तीव्रता को बढाती रहती है, जैसे बादलो की गति को पवन का आवेग। चरमसीमा मे कथा का सत्य-दर्शन होता है।

उक्त तीनो गुणो के अतिरिक्त सकलनत्रय का भी एकाकी शिल्प-विधान मे विशेष महत्त्व है। सकलनत्रय का अर्थ है—देश, काल और कार्य की एकता। तात्पर्य यह है कि एकाकी मे जो कथा ली गई हो वह एक ही स्थान, एक ही समय से सम्बन्धित हो और उसका कार्य भी एक ही हो।

वास्तव मे रचना-विधान की दृष्टि से एकाकी के सविधान मे प्रभाव और वस्तु की एकता अनिवार्य है। शेष देश और काल की एकता या विभिन्नता एक ओर

एकाकी की समवेदना पर निर्भर है, दूसरी ओर लेखक की प्रतिभा पर। विशुद्ध शिल्प-विधि की दृष्टि से परम शिल्पी लेखक वही है जो जीवन का एक पक्ष, एक घटना, एक परिस्थिति को उतनी ही स्वाभाविकता से अपनी कला मे सँवार ले, सजाले, जैसी स्वाभाविकता हमे अपने जीवन मे मिलती है। फिर चाहे सकलनत्रय की ओर ध्यान दिया गया हो, चाहे न दिया गया हो।

सफल एकाकी मे प्रभाव, वस्तु और कार्य-व्यापार की एकता आवश्यक है, देश काल की नही। उस तरह एकाकी मे एक ही अक के अन्तर्गत उसकी समवेदना के अनुसार, उसे पूर्ण नाटकीय अभिव्यक्ति देने मे दो-तीन दृश्यो की भी अवतारणा हो सकती है और अन्य प्रकार की समवेदना के लिए एक अक तथा एक ही दृश्य मे उसका सम्पूर्ण कार्य समाप्त हो सकता है।

एकाकी की कला और कसौटी पर इतना कुछ लिख देने के बाद प्रेमीजी के एकाकी-सम्बन्धी बिचार भी जान लेने चाहिएँ। 'बादलो के पार' की भूमिका मे उन्होने लिखा है —'आज आत्मा तक अन्तर्दृष्टि डालकर 'साहित्य' की उपयोगिता की परख करने का अवकाश थोडे व्यक्तियो को है। भौतिकवादी युग मे आँखे काया मे ही उलझकर रह जाती है। लेखक के दृष्टिकोण पर ध्यान कम जाता है और टेकनीक की चर्चा अधिक होती है। सन्तोष मुझे इस बात का है कि इन लघु नाटको मे मैंने तरुण हृदयो के सम्मुख राजनीति, समाजनीति और मानवता से सम्बन्ध रखने-वाले कुछ सघर्षो के चित्र रखे है।

टेकनीक को प्रमुख स्थान देने वालो के विवाद से दूर रहने के लिए ही मैंने नाटको को एकाकी नाटक नही कहा।'

इससे स्पष्ट है कि प्रेमीजी ने शास्त्रीय पक्ष की ओर उतना आग्रह नही रखा है, जितना उद्देश्य के पति। एकाकी के शिल्प-विधान की जटिलता में उलझने की उनकी इच्छा ही नही दिखाई देती। चाहे शास्त्रीय कसौटी पर आपके एकाकी खरे न उतरे किन्तु भाषा की सरलता, भावो की सरसता और सोद्देश्यता के कारण वे आकर्षण का विषय है। अपने पूर्ण नाटको की भाति एकाकी-रचना के लिए भी आपने इतिहास और समाज दोनो से प्रेरणा ली है। मुख्य विषय हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य, अछूत-प्रथा और साम्प्रदायिकता का विरोध है। अपने एकाकी नाटकों मे जीवन के सत्य का उपयुक्त प्रतिपादन करने की चेष्टा की है। यही कारण है कि आपने जीवन की यथार्थता और विषमताओ का चित्रण करने पर भी अन्तत किसी उपयुक्त समाधान के खोज करने की चेष्टा की है। इस दृष्टि से उनकी रचनाओ मे आदर्श जीवन-सत्यो के कल्याणकारी स्वरूप की स्थापना का स्पष्ट आग्रह वर्तमान रहा है। यथार्थ का चित्रण करने पर भी उनके नाटक अन्तत आदर्श से प्रेरित रहे है। यह

स्वाभाविक है। वर्तमान युग मे आदर्शो के प्रति मानव आग्रह क्रमश समाप्त होता जा रहा है। प्रेमीजी ने इस नवीन जीवन-दृष्टि से प्रेरणा लेते हुए अपनी रचनाओ मे आदर्श और यथार्थ को समन्वित रूप मे उपस्थित किया है।[1]

प्रेमी[illegible] के [illegible] नाटको [illegible] पहला [illegible] मन्दिर नाम से सन् १९४२ मे प्रकाशित हुआ था। दूसरा सग्रह सन् १९५२ मे 'बादलो के पार' नाम से प्रकाशित हुआ। 'बादलो के पार' मे 'मन्दिर' के सात एकाकी भी नाम परिवर्तन करके रख लिए गये और चार नए एकाकी भी शामिल कर लिए गए। अलग से भी एकाध एकाकी उपलब्ध होता है। इस प्रकार आपके एकाकी निम्नलिखित नामो से प्रसिद्ध रहे हे —

बादलो के पार (सेवामदिर), यह भी एक खेल है, घर या होटल (गृह-मदिर), प्रेम अन्धा है, वाणी-मदिर, रूप-शिखा, नया समाज (मातृ-मदिर), मातृभूमि का मान (मान-मदिर), यह मेरी जन्मभूमि है (राष्ट्र-मदिर), निष्ठुर न्याय (न्याय मदिर), पश्चात्ताप और बेडियाँ।

'बादलो के पार' या 'सेवा मदिर' का कथानक राधा नामक सुन्दर युवती से सम्बन्धित है। राधा माधव से प्रेम करती है, पर समाज का कठिन शासन राधा का सम्बन्ध जोड देता है एक रोगी ब्राह्मण से। तपेदिक का मरीज ब्राह्मण शीघ्र ही मर जाता है। राधा विधवा हो जाती है। युवती राधा की अतृप्त भावनाएँ समाज के प्रति, अपने प्रति विद्रोही हो उठती है, वह माधव से प्रणय की भिक्षा माँगती है। माधव इस याचना को पाप मानता है। राधा मे कठोर प्रतिक्रिया जागती है और वह यहाँ तक कह देती है—'मै गन्दे नाले का पानी पिऊँगी, मै पिशाचिनी हो जाऊँगी' माधव राधा को कर्त्तव्य मार्ग पर ले जाना चाहता है। वह राधा से विदा लेकर दूर चला जाता है। तभी आ जाता है, उसका देवर कमल। देवर की वासना भडकती है। राधा उसे फटकारती है। अब राधा को आदर्श का ध्यान आता हे। किन्तु राधा का दुर्भाग्य कुछ और ही काड रच देता है। राधा की सास राधा को कमल के साथ अकेले देखकर उसे घर से निकाल देती है, राधा गगा मे डूबने जाती है, तभी सन्यासी माधव उसे बचा लेता है। राधा माधव के आदश-प्रेम की स्वीकृति देकर कथा समास हो जाती है।

'सेवा-मदिर' व्यक्ति और समाज के जीवन की यथाथ कहानी है। प्रेम और विवाह की समस्या वर्तमान भारतीय समाज की प्रमुख समस्या रही है। समस्या का समाधान न मिलने से आत्म-हत्या, व्यभिचार, पलायन आदि बुराइयाँ समाज मे बढती जाती हैं। राधा के चरित्र द्वारा लेखक ने हमारे वर्तमान यथार्थ जीवन का अकन किया है, राधा की ये स्वीकारोक्तियाँ व्यक्ति के यथार्थ मन का उद्घाटन करती है —

---

१ सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ ७६८ ७६९

'तुम मेरे हृदय की भूख मिटाओ माधव । तुम मेरे प्राणो की प्यास मिटाओ मैं अपनी ही वासना के वेग से टुकडे-टुकडे हो जाऊँगी ।' और 'मै गन्दे नाले का पानी पिऊँगी । मै पिशाचिनी हो जाऊँगी ।' माधव का चरित्र भी इसी यथार्थ की भूमि पर है — जब तक तुम मुझे अप्राप्य थी, मै अपने पशु को पराजित कर सकता था, लेकिन अब, मै तुमसे भी अधिक दुर्बल हूँ । मै चला जाऊँगा, ताकि दुर्बल क्षणो मे कही, मुझे तुम्हारी मिट्टी का मोह न हो जाय ।'

यथार्थ जीवन को इस नाटक मे बडे ही कलात्मक ढग से प्रस्तुत किया गया है । नाटक मे राधा की वासना और माधव के कर्त्तव्य का, पाप और पुण्य का द्वन्द्व अकित किया गया है। इस द्वन्द्व मे ही नाटक का विकास हुआ है। राधा एक ओर तो वासना की ज्वाला मे जलती है —'मैं अपनी ही वासना के वेग से टुकडे-टुकडे हो जाऊँगी ।' दूसरी ओर नारीत्व की दीपशिखा भी उसे झकझोरती है—'फिर भी आँधी तूफान के भीतर मै नारीत्व की दीपशिखा को बुझने न दूँगी ।

कुतूहल और जिज्ञासा तो इस नाटक मे आरम्भ से ही हे । राधा आरम्भ मे ही जब कह उठती हे—'मेरा भविष्य एक भयानक अन्धकार है, उसमे इस बिजली-से रूप-यौवन को छिपाकर मै कैसे चलूँगी ।' तो पाठक राधा के अतीत के प्रति कौतूहल से भर उठता है तो भविष्य के प्रति सजग भी हो जाती है । माधव का यह कथन तो और भी अधिक जिज्ञासा जगाता हे —'तुम्हे याद है अपने बचपन के दिन । इन नदी-किनारे के कुजो मे हम आँख-मिचौनी खेला करते थे, तुम मुझसे छिपती फिरती थी, मे तुमसे ।'

जिज्ञासा की धीरे-धीरे शान्ति होती जाती है और घटना-क्रम खुलता-मुँदता चरमसीमा की ओर अग्रसर होता है । कमल की घटना से नाटक मे एक बार फिर उबाल आता है और माधव पुनर्मिलन से चरमसीमा उभरकर कथानक को धैर्य के साथ समाप्त कर देती है । चरमसीमा के बाद किसी प्रकार की घटना न देकर एकाकी कला की रक्षा की गई है । राधा और माधव के यथाथ को यहाँ आकर आदर्श का यह लोक मिलता है—'मेरे आगे न कभी दिन है, न कभी रात, न कही शून्य, न कही भीड, न कोई कुरूप है, न कोई सुन्दर । सब मेरी ही आत्मा के अश है । अपना ही हाथ पकडने मे मुझे भय किस बात का ?'

'बादलो के पार' का कथानक जितना सजीव और सुसगठित है, उतना ही चरित्र-चित्रण भी उत्कृष्ट है । इस नाटक मे चार पात्र है—माधव, राधा, कमल और दुर्गा । कथावस्तु और घटना-चक्र के अनुसार ही इनका चरित्र सँजोया गया हे । कमल और दुर्गा का उपयोग सामाजिक अनाचार और अत्याचार को दर्शाने के लिए किया गया है । कमल का चरित्र परिवार के भीतर रहनेवाले दुष्ट और मक्कार तत्त्वो का चरित्र है । कमल यथार्थ और सहानुभूति का ढोग रचकर राधा को ठगता

है। वह राधा से कहता है —'मै ऐसा नही कहता कि मनुष्य भी ऐसा ही करे। लेकिन मनुष्य भी जानवर है। वह अपनी वासना को छिपाना चाहता है और जानवर नगा है। वास्तव मे देखा जाय तो प्राणिमात्र का स्वभाव एक है। प्रत्येक ऋतु अपने उपहार और अपनी आवश्यकताएँ लेकर आती है और मनुष्य के जीवन की भी ऋतुएँ होती हैं। उन ऋतुओ के उपहार और आवश्यकताएँ होती है। उन उपहारो को ग्रहण करना और आवश्यकताओ को पूरा करना मानव-हृदय का स्वाभाविक धर्म है।'

इस यथाथ से वह राधा की वासना को उत्तेजित करता है, किन्तु जब परास्त होता है तो पासा बदल जाता है, कहता है—'मै तो समाज की निर्दय रूढियो के विरुद्ध विद्रोह करना चाहता हूँ।'

दुर्गा का चरित्र गलतफहमी का शिकार दकियानूसी सास का चरित्र है, जो परिवार के विनाश का कारण है। दुर्गा ने केवल दो वाक्य ही कहे है, किन्तु ये दो वाक्य ही उसके चरित्र की पूरी व्यजना करते है —

'बहू तुममे ऐसे लक्षण भरे है, यह मैं न जानती थी। आज सूर्योदय के पहले तुम्हारी छाया भी इस घर मे न दिखाई दे। समझी।' और 'अपराध! कलमुँही! अपनी आँखो से जो कुछ मैने देखा हे, उसके बाद मै कुछ नही सुनना चाहती।'

राधा और माधव के चरित्र प्रमुख है। दोनो ही स्वाभाविक रूप मे प्रस्तुत किये गये है। दोनो के चित्रण मे मनोविज्ञान से काम लिया गया है। युवती के हृदय की आकाक्षाओ कापनाओ को, उसकी भूख को प्रेमीजी ने भाँपा है, और इसीलिए उनकी राधा का चरित्र अधिक सजीव हो पाया है। माधव प्रेम को पाप मानता है तो राधा स्वाभाविकता। वह कहती है —'नही, मै एक दुर्बल नारी हूँ, मुझे भूख लगती है। मुझे प्याम लगती हे। मुझे भोजन चाहिए, मुझे पानी चाहिए। तुम मेरे हृदय की भूख मिटाओ माधव! तुम मेरे प्राणो की प्यास मिटाओ नही तो नही तो मैं गन्दे नाले का पानी पिऊँगी।' और 'मेरी साँसो की धडकन मे भूकम्प का आह्वान है, मै अपनी ही वासना के वेग से टुकडे-टुकडे हो जाऊँगी।'

आगे लेखक ने गीत के द्वारा राधा का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित किया है। राधा दुर्बल ही नही है। वह कर्त्तव्य को भी पहचानती है। कमल की घटना उसकी आँखे खोल देती है। माधव के मिलन से उन आँखो मे आदर्श का प्रकाश जगमगा उठता है।

माधव का चरित्र एक आदर्शवादी का चरित्र है। वह बचपन के प्रेम को बचपन तक ही सीमित रहने देता है। वह एक आध्यात्मिक मिलन पर जीवन को ले चलता है, सभी के जीवन को ले जाना चाहता है। परन्तु उसका यह रूप सामाजिक अवस्था की दृष्टि से है। वह समाज-भीरु है। उससे विद्रोह करके वह नही चल

सकता। चलना चाहता भी है तो आदर्श आकर उसे रोक लेता है। इस प्रकार उसमे मानव-सुलभ दुर्बलता भी हे तो मानव-सुलभ शक्ति भी है जो उसे गिरने से रोकती है। माधव के ये उद्गार उसके स्वाभाविक चरित्र पर प्रकाश डालते है —'दिन के प्रकाश मे समाज से विद्रोह करना चाहती हो। इतना बल तुममे हो सकता है, मुझ मे तो नही है। मुझे तुम्हारा लोभ बचपन से ही रहा है। मैं तुम्हारे अस्तित्व को अपने प्राणो मे भरे हुए ससार मे विक्षिप्त-सा घूम रहा हूँ। किसी कार्य मे मेरा मन नही लग रहा। मैने समझा था तुम दूर हो। स्मृति के आकाश मे तुम्हारी मूर्ति को स्थापित करके उसके चरणो पर आसुओ का अर्घ्य चढाना ही मै अपना धर्म समझता था। आज वह मूर्ति प्रकट होकर कह रही है, तुम मुझे ले लो। मै ससार की आँखो मे पापी बनने से नही डरता, लेकिन मेरी इष्टदेवि, तुम क्यो अपने आसन से नीचे उतरती हो ? भारतीय नारी की ऋषियो ने जो कल्पना की है, वह सासारिक वासना से बहुत ऊँची है। तुम वही बैठो राधा !'

इस चरित्र की सृष्टि कर प्रेमीजी ने स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी है कि यदि वासनाओ का जन्म यथार्थवाद है तो उनका दमन भी तो यथार्थ है, भले ही वह आदर्शवाद के नाम से पुकारा जाता हो। इस प्रकार उन्होने अपने पात्रो के स्वाभाविक रूप की रक्षा की है। एकागिता रखकर उसे अस्वाभाविक और अग्राह्य नही बनाया है।

प्रेमीजी कथोपकथन लिखने मे कुशल है। 'बादलो के पार' के कथोपकथन सरल, स्वाभाविक, सक्षिप्त, पात्रानुकूल तो है ही, नाटकीयता की सुरक्षा भी करते है। कुछ उदाहरण लीजिए —

"[घडे मे पानी भरकर सिर पर रखती है।]

अब मेरे सिर पर बोझ बढ गया है। रास्ते मे रपटन है। मुझे डर है कही मै गिर न पड़ूँ।" यह श्लेषात्मक प्रतीक योजना बडी ही व्यजक है। एक उदाहरण और—

'**राधा**—जब हमारे कपडे मैले हो जाते है, हम दूसरे पहन लेते है, मैले उतार देते है। (सन्यासी के वेश मे माधव का प्रवेश)

माधव—लेकिन हमे नगे होने का अधिकार तो नही है।"

स्थल और समय की एकता की ओर यद्यपि ध्यान नही दिया गया है, किन्तु घटना-चक्र इस ढँग से सँजोया गया है कि कार्य की एकता बराबर बनी रहती है। माधव नाटक का नायक है, वह आरम्भ से अन्त तक नाटक मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विद्यमान रहता है और अपने आदर्श से समस्त कथा पर छाया रहता है।

यह भी एक खेल है—ऐतिहासिक नाटक है। मालवगण के सेनापति जयकेतु की बहिन विजया से श्रीपाल युवक किसान प्रेम करता है। जयकेतु को यह बात

पसन्द नही। वह वगवाद की दीवारे खडी करता है। श्रीपाल इस बात से चिढ जाता है। वह विजया को पाने के सभी सभव-असभव उपाय रचता है। मालवा पर आक्रमण करने के लिए वह शको को आमन्त्रित करता हे, इस बात का पता जयकेतु को चल जाता हे। वह विजया से सारी बाते कह देता है। विजया पहले तो भाई से बहस करती है, किन्तु फिर देश को सर्वोपरि मानकर श्रीपाल को बन्दी बनाकर जयकेतु को सौप देती है।

यह कर्तव्य और प्रेम के द्वन्द्व की कहानी है। इस द्वन्द्व मे ही नाटक का विकास होता है, कर्त्तव्य की विजय पर नाटक समाप्त हो जाता है। यह दस मिनट मे समाप्त हो जानेवाला नाटक घटनाओ की तीव्रता लिए हुए है। जादू की तीव्रता से घटनाएँ घटती ह, और शीघ्र ही आदर्श की स्थापना हो जाती है। पात्रो के अन्तर्द्वन्द्व के लिए जैसे अवकाश ही नही। जैसे नाटक केवल इसी आदश की स्थापना के लिए लिखा गया हो—

'**जयदेब**—विजया, कर्त्तव्य और प्रेम के द्वन्द्व मे जो कर्त्तव्य को विजयी बना सकता हे वही सच्चा मानव है। तुम देश के महत्त्व को समझो। तुम्हारे पिता, तुम्हारे दादा और तुम्हारी न जाने कितनी पीढियो ने इस भूमि की रक्षा मे अपना रक्त सीचा है बहन! कितनी बहनो ने अपने भाइयो को रण-भूमि मे विसर्जित किया है—कितनी सुन्दरियो ने यौवन के प्रभातकाल मे पतियो को स्वग का मार्ग दिखाया है! यह एक विजया या एक श्रीपाल का प्रश्न नही है—यह देश का प्रश्न है।'

स्थल, समय और कार्य की एकता की दृष्टि से 'यह भी एक खेल है' अत्यन्त सफल रचना है। कथोपकथन तो इसके बहुत ही चुस्त, सरल और सक्षिप्त हे। शायद यही इसकी सबसे बडी विशेषता है। पात्रो के चरित्र, उनके इरादो और दृढता के प्रतीक ये कथोपकथन दशनीय हे —

'**श्रीपाल**—आकाश की तारिका की ओर पृथ्वी पर पैर रखकर चलनेवाला प्राणी कैसे हाथ बढा सकता है?

विजया—यदि वह तारिका आकाश से उतरकर तुम्हारी गोद मे आ गिरे तो?

श्रीपाल—मै उसे स्वीकार नही करूँगा।

विजया—क्यो?

श्रीपाल—मैं कृपा या दान नही चाहता।

वियजा—तो चोरी करना चाहते हो, डाका डालना चाहते हो। डाका डालना तो कायरता नही है।

श्रीपाल—मैं इतना छोटा नही बनना चाहता कि मुझे अपनी ही चीज़ की चोरी करनी पडे।

विजया—तब तुम क्या चाहते हो ?

श्रीपाल—बदला !

विजया—किससे ?

श्रीपाल—जयदेव से !

विजया—अच्छा, तो इसीलिए तुमने हल छोडकर शस्त्र पकडे है ?

श्रीपाल—जो हल पकडना जानता है, वह शस्त्र पकडना भी जान सकता है।'

जयदेव और विजया के बीच कथोपकथनो की भी यही ओजस्विता है। अन्तिम दो पृष्ठो मे लेखक ने जो नाटकीय परिस्थिति पैदा की है, वही इस सक्षिप्त से नाटक का गुरण है।

K.

घर या होटल—एक सामाजिक नाटक है। सुरेन्द्र इसका नायक है। वासना इसका जीवन है और गम्भीर चर्चा शत्रु। मदिरापान इसकी जीवनचर्या है। यह कुमुद को अपनी वासना का शिकार बनाता है, वह गर्भवती हो जाती है। ऐसी परिस्थिति मे वह इससे प्रणय की भिक्षा माँगती है, परन्तु सुरेन्द्र स्वीकार नही करता। समाज इसके विरुद्ध कुछ फैसला दे इससे पहले ही वह घर छोडकर चली जाती है। सुरेन्द्र पछताता है, परन्तु व्यर्थ। सुरेन्द्र का विवाह एक आधुनिका कला से हो जाता है। कला स्वच्छन्द है और अविनाश से मिलती-जुलती है। सुरेन्द्र को यह पसन्द नही। वह निराश होकर मदिरा को गले लगा लेता है। एक दिन मोटर-दुर्घटना हो जाती है और उसे अस्पताल आना पडता है। यहाँ नर्स के रूप मे कुमुद उसकी परिचर्या करती है। वह कुमुद से क्षमा माँगता है। इसी समय कला आ जाती है। यही सुरेन्द्र कुमुद के पुत्र से कला का परिचय कराता है। कला भी कुमुद से क्षमा माँगती है। कुमुद के पुत्र को अपना पुत्र मानती है और सुरेन्द्र को कुमुद को सौंपती है।

पश्चिमी देशो के अनुकरण से स्त्री-पुरुषो का आपसी सहयोग रूढिवादी समाज मे कितनी विषम समस्याएँ पैदा कर सकता है, यह दिखाना ही इस नाटक का उद्देश्य है। समाज व्यक्ति पर किस प्रकार विजय पाता है, सुरेन्द्र के उदाहरण से यह स्पष्ट है। गर्भवती कला को सुरेन्द्र इसलिए ग्रहण करने से हिचकता है कि समाज इसका विरोध करेगा। यह नाटक एक प्रकार से समस्यामूलक है। प्रेमीजी ने गृह को मन्दिर का रूप देकर यह बताने की भले ही चेष्टा की हो कि यदि पति-पत्नी माने तो घर मे एक अन्य स्त्री पत्नी की भाँति रह सकती है, परन्तु व्यवहार मे शायद ही ऐसा सम्भव हो। प्रेमीजी की यह अपनी कल्पना है और शायद वे इस प्रकार एकाधिक पत्नियो की सुविधा देना चाहते है, परन्तु क्या यह स्वाभाविक होगा ? या कही ऐसा होता भी है ?

पश्चिमी और पूर्वीय सभ्यता का द्वन्द्व ही इस नाटक की विशेषता है। पश्चिमी सभ्यता होटल की सभ्यता है, जहाँ सौदेबाजी है और भारतीय सभ्यता घर की सभ्यता है, जहाँ प्रेम और सेवा का, अपनेपन का भाव है। कुमुद घर की प्रतिनिधि है, और अविनाश होटल का। सुरेन्द्र भटका हुआ है, जिसे कुमुद का आदर्श माग सुझाता है। यही घटना-क्रम का आधारविन्दु है।

चरित्र-चित्रण मे प्रेमीजी का अपना कौशल यहा भी है। कुमुद एक आदर्श नारी है। सुरेन्द्र के चरित्र मे उतार-चढाव है, यही कला की स्थिति है। कला का चरित्र यद्यपि अस्वाभाविक कल्पना है।

कुमुद के द्वारा लेखक ने जीवन को जीने के लिए माना है। वह कहती है—'ससार से भागने मे आदमी सफल नही हो सकता। यह स्वाभाविक जीवन नही है।'

इस नाटक की एक भारी विशेषता यह हे कि कुमुद के माध्यम से उसके लेखक ने व्यक्ति को एक नई दृष्टि और एक नया सन्देश दिया है, और वह यह है:—

'समाज की कट्टरता मानव की गति को रोकती है। मै कहती हूँ समाज से खुलकर विद्रोह करने का साहस करो। छिपकर पाप करने की कायरता से हम समाज को जीत नही सकते।'

नारी स्वातन्त्र्य का राग अलापनेवाले वर्ग को लेखक का सन्देश है—'उसे आकाश मे स्वच्छन्द उडनेवाली तितली न बनने दो। पुरुष को कभी-कभी नारी पर शासन करना आवश्यक है। इसी तरह नारी को पुरुष पर अपना अधिकार स्थापित करना भी। आज जो पुरुष नारी स्वातन्त्र्य की आवाज़ उठा रहे है, वह केवल इसलिए कि दूसरे की नारियो से मिलने मे उन्हे सुविधा हो। यह उनकी मनुष्यता की नही पशुता की आवाज है। तुम पुरुष बनो और पुरुष की कठोरता ग्रहण करो।'

'प्रेम अन्धा है' ऐतिहासिक घटना क्रम को साथ लेकर कल्पना पर खडा किया गया नाटक है। औरगजेब ने अपने भाइयो का वध किया, अब वह अपने छोटे भाई मुराद को भी मरवाना चाहता है, इसके लिए वह अपनी दासी रोशन की सहायता लेता है। रोशन एक हिन्दू नारी है, जिसका सतीत्व मुराद ने नष्ट किया था, वह पहले प्रकाश थी, बाद मे रोशन हो गई। मुराद ने फिर बासती से प्रेम-लीला आरभ की। रोशन मे प्रतिशोध की भावना जाग उठी। उसने मुराद को अपने प्रेमजाल मे फँसाकर गिरफ्तार करवा दिया। मुराद को इसकी इच्छानुसार बासती के साथ ग्वालियर के किले मे कैद कर दिया गया। रोशन ने एकबार फिर मुराद से बदला लेने की चाल चली। वह किले मे आकर मुराद से मिली और उसे बादशाह बन जाने का प्रलोभन दिया। मुराद बासती को छोड़कर जाने के लिए तैयार हो

गया। बासती मार्ग मे आई तो उसे धक्के से गिरा दिया। बासती ने शोर मचाया और पहरेदारो ने मुराद को बन्दी बना लिया।

नाटक मे प्रेम को प्रमुख मानकर कथाचक्र चलाया गया है, किन्तु प्रेम का जो रूप इसमे दिखाया गया है, वह तो वासनाजन्य है, क्योकि रोशन और बासती दोनो के मुख से मुराद की रामकहानी इस प्रकार कहलाई गई है —

'**रोशन**—अचानक इस वन-कुसुम पर लालची भौरे की नजर पड गई। मुराद प्रारभ से ही रगीली तबीअत का आदमी है, उसकी अभिलाषा पर मुझे अपना सर्वस्व समर्पित करना पडा—लेकिन मधु के दो घूँट पीकर भ्रमर उड गया।'

'**बासन्ती**—जिसने मुझसे मेरी जन्मभूमि छुडाई, मेरे माँ-बाप छुडाये, मेरा सतीत्व नष्ट किया—वह बादशाहत के लोभ मे मुझे ठुकरा सकता है।'

फिर भी बासन्ती को तो प्रेम हो ही गया। और वह भी इतना अन्धा प्रेम कि उसने अपना हित-अनहित नही पहचाना। अपने प्रेमी के सुख मे अपना सुख नही माना। केवल इस लालसा के लिए कि अपने प्रेमी के चरणो मे प्राण विसर्जित कर सके, उसे बन्दी बनवा लिया। मिला क्या? जहर खाकर मर गई। पता नही लेखक ने इस नाटक द्वारा किस आदर्श की स्थापना की है?

न तो लेखक कोई आदश ही दे पाया और न ही एकाकी के अनुकूल कथा-सूत्र को सुसगठित कर पाया। जिस कथा को लेकर चला उसमे दूसरे दृश्य की क्या आवश्यकता थी? बासती का अन्तर्द्वन्द्व तो चलो ठीक हुआ। सरला, मोहम्मद और हसन से क्या सिद्धि हुई? व्यथ के पात्र और व्यथ का घटनाक्रम। तीसरे दृश्य के अन्त मे घटनाक्रम सँभला ही नही। रोशन ने इतना वडा षडयत्र तो रचा किन्तु वह गिरती हुई बासती का मुँह नही बन्द कर सकी, वही खडे-खडे मुराद को गिरफ्तार करवा दिया। घटनाएँ घट गई और रोशन वही जमी खडी रही, शायद यह प्रेम के अन्धेपन के प्रभाव की किकत्तव्यविमूढता हो! कार्य, स्थल और समय सभी दृष्टि से एकदम असफल रचना। चरित्र भी दुर्बल। बासन्ती का आदर्श प्रेम भी अन्धा निकला, अत ग्राह्य नही। पूरे नाटक की सामग्री को एकाकी के सक्षिप्त कलेवर मे भरने का यही फल होता है।

'**वाणी-मन्दिर**' एक सामाजिक नाटक है। इसका कथानक तीन परिवारो से सम्बद्ध है। कवि कुमार कविता का धनी है, परन्तु परिवार की आर्थिक दशा अच्छी नही। कवि की पत्नी सरला पति के गौरव मे अपना गौरव मानती है और भूख को भी सहन करती है। वह सुन्दरी भी है। कामुक घनश्याम उसके प्रति आकृष्ट होता है। दरिद्रता के प्रति सहानुभूति दिखाता और वासनात्मक प्रेम का प्रदर्शन करता है। सरला व्यग्य करती है, पर वह नही समझ पाता। सरला के कथनानुसार विष भिजवा देता है, उसे गलतफहमी हो जाती है कि सरला कुमार को मारकर मेरे साथ रहना

पश्चिमी और पूर्वीय सभ्यता का द्वन्द्व ही इस नाटक की विशेषता है। पश्चिमी सभ्यता होटल की सभ्यता है, जहाँ सौदेबाजी है और भारतीय सभ्यता घर की सभ्यता है, जहाँ प्रेम और सेवा का, अपनेपन का भाव है। कुमुद घर की प्रतिनिधि है, और अविनाश होटल का। सुरेन्द्र भटका हुआ है, जिसे कुमुद का आदर्श मार्ग सुझाता है। यही घटना-क्रम का आधारबिन्दु है।

चरित्र-चित्रण मे प्रेमीजी का अपना कौशल यहाँ भी है। कुमुद एक आदर्श नारी है। सुरेन्द्र के चरित्र मे उतार-चढाव है, यही कला की स्थिति है। कला का चरित्र यद्यपि अस्वाभाविक कल्पना है।

कुमुद के द्वारा लेखक ने जीवन को जीने के लिए माना है। वह कहती है— 'ससार से भागने मे आदमी सफल नही हो सकता। यह स्वाभाविक जीवन नही है।'

इस नाटक की एक भारी विशेषता यह है कि कुमुद के माध्यम से उसके लेखक ने व्यक्ति को एक नई दृष्टि और एक नया सन्देश दिया है, और वह यह है.—

'समाज की कट्टरता मानव की गति को रोकती है। मैं कहती हूँ समाज से खुलकर विद्रोह करने का साहस करो। छिपकर पाप करने की कायरता से हम समाज को जीत नही सकते।'

नारी स्वातन्त्र्य का राग अलापनेवाले वर्ग को लेखक का सन्देश है—'उसे आकाश में स्वच्छन्द उडनेवाली तितली न बनने दो। पुरुष को कभी-कभी नारी पर शासन करना आवश्यक है। इसी तरह नारी को पुरुष पर अपना अधिकार स्थापित करना भी। आज जो पुरुष नारी स्वातन्त्र्य की आवाज़ उठा रहे है, वह केवल इसलिए कि दूसरे की नारियो से मिलने मे उन्हे सुविधा हो। यह उनकी मनुष्यता की नही पशुता की आवाज़ है। तुम पुरुष बनो और पुरुष की कठोरता ग्रहण करो।'

'प्रेम अन्धा है' ऐतिहासिक घटना क्रम को साथ लेकर कल्पना पर खडा किया गया नाटक है। औरगजेब ने अपने भाइयो का वध किया, अब वह अपने छोटे भाई मुराद को भी मरवाना चाहता है, इसके लिए वह अपनी दासी रोशन की सहायता लेता है। रोशन एक हिन्दू नारी है, जिसका सतीत्व मुराद ने नष्ट किया था, वह पहले प्रकाश थी, बाद मे रोशन हो गई। मुराद ने फिर बासती से प्रेम-लीला आरभ की। रोशन मे प्रतिशोध की भावना जाग उठी। उसने मुराद को अपने प्रेमजाल मे फँसाकर गिरफ्तार करवा दिया। मुराद को इसकी इच्छानुसार बासती के साथ ग्वालियर के किले मे कैद कर दिया गया। रोशन ने एकबार फिर मुराद से बदला लेने की चाल चली। वह किले मे आकर मुराद से मिली और उसे बादशाह बन जाने का प्रलोभन दिया। मुराद बासती को छोड़कर जाने के लिए तैयार हो

गया । बासती मार्ग मे आई तो उसे धक्के से गिरा दिया । बासती ने शोर मचाया और पहरेदारो ने मुराद को बन्दी बना लिया ।

नाटक मे प्रेम को प्रमुख मानकर कथाचक्र चलाया गया है , किन्तु प्रेम का जो रूप इसमे दिखाया गया है, वह तो वासनाजन्य है , क्योकि रोशन और वासती दोनो के मुख से मुराद की रामकहानी इस प्रकार कहलाई गई है —

'**रोशन**—अचानक इस वन-कुसुम पर लालची भौरे की नजर पड गई । मुराद प्रारभ से ही रगीली तबीअत का आदमी हे, उसकी अभिलाषा पर मुझे अपना सर्वस्व समर्पित करना पडा—लेकिन मधु के दो घूँट पीकर भ्रमर उड गया ।'

'**बासन्ती**—जिसने मुझसे मेरी जन्मभूमि छुडाई, मेरे माँ-बाप छुडाये, मेरा सतीत्व नष्ट किया—वह बादशाहत के लोभ मे मुझे ठुकरा सकता है ।'

फिर भी बासन्ती को तो प्रेम हो ही गया । और वह भी इतना अन्धा प्रेम कि उसने अपना हित-अनहित नही पहचाना । अपने प्रेमी के सुख मे अपना सुख नही माना । केवल इस लालसा के लिए कि अपने प्रेमी के चरणो मे प्राण विसर्जित कर सके, उसे बन्दी बनवा लिया । मिला क्या ? जहर खाकर मर गई । पता नही लेखक ने इस नाटक द्वारा किस आदर्श की स्थापना की है ?

न तो लेखक कोई आदर्श ही दे पाया और न ही एकाकी के अनुकूल कथा-सूत्र को सुसगठित कर पाया । जिस कथा को लेकर चला उसमे दूसरे दृश्य की क्या आवश्यकता थी ? बासती का अन्तर्द्वन्द्व तो चलो ठीक हुआ । सरला, मोहम्मद और हसन से क्या सिद्धि हुई ? व्यथ के पात्र और व्यथ का घटनाक्रम । तीसरे दृश्य के अन्त मे घटनाक्रम सँभला ही नही । रोशन ने इतना वडा षडयत्र तो रचा किन्तु वह गिरती हुई बासती का मुँह नही बन्द कर सकी, वही खडे-खडे मुराद को गिरफ्तार करवा दिया । घटनाएँ घट गई और रोशन वही जमी खडी रही, शायद यह प्रेम के अन्धेपन के प्रभाव की किकत्तव्यविमूढता हो ! कार्य, स्थल और समय सभी दृष्टि से एकदम असफल रचना । चरित्र भी दुर्बल । वासन्ती का आदर्श प्रेम भी अन्धा निकला, अत ग्राह्य नही । पूरे नाटक की सामग्री को एकाकी के सक्षिप्त कलेवर मे भरने का यही फल होता है ।

'**वाणी-मन्दिर**' एक सामाजिक नाटक है । इसका कथानक तीन परिवारो से सम्बद्ध है । कवि कुमार कविता का धनी है, परन्तु परिवार की आर्थिक दशा अच्छी नही । कवि की पत्नी सरला पति के गौरव मे अपना गौरव मानती है और भूख को भी सहन करती है । वह सुन्दरी भी है । कामुक घनश्याम उसके प्रति आकृष्ट होता है । दरिद्रता के प्रति सहानुभूति दिखाता और वासनात्मक प्रेम का प्रदशन करता है । सरला व्यग्य करती है, पर वह नही समझ पाता । सरला के कथनानुसार विष भिजवा देता है, उसे गलतफहमी हो जाती है कि सरला कुमार को मारकर मेरे साथ रहना

चाहती है। सरला विष खाकर मरने की तैयारी करती है, किन्तु चन्द्रिका के प्रयत्न उसकी रक्षा के लिए होते है।

चन्द्रिका एक धनी युवती है, वह मालती के जीवन से पाठ लेती है और अपना धन गरीबो के हित मे लगाती है। यह मालती की सखी है। मालती 'आनन्द' पत्रिका के सम्पादक चन्द्रप्रकाश वर्मा की पत्नी है। वर्मा धन को ही अपना सवस्व मानता है। मालती को भी मार-पीटकर उसी रास्ते पर ले जाना चाहता है। मालती विद्रोह करती है और इस नरक-तुल्य जीवन से मृत्यु को कही अच्छा मानती है। सम्पूर्ण कथा को बड कौशल से एक सूत्र मे पिरोया गया है।

यह नाटक समाज की घोर दरिद्रता और वैभव-विलास के द्वन्द्व को लेकर चला है। किन्तु लेखक ने पैसे का सदुपयोग गरीबो की सहायता है, आदर्श प्रस्तुत किया है। यह आदश व्यक्तिवादी हुआ, सामूहिक रूप से समस्या का समाधान नही है। फिर कवि को लेकर जो निर्धनता दिखाई गई है, वह भी गरीबी के कारणो पर यथेष्ट प्रकाश नही डालती। कवि की निधनता कवि की अकर्मण्यता का प्रमाण मात्र है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह नाटक अवश्य ही सफल है। कवि-पत्नी सरला का दरिद्रता-ग्रस्त चरित्र स्वाभाविक रूप मे चित्रित हुआ है। वह घनश्याम से जब जहर लाने के लिए कहती है तो उसकी सम्पूर्ण कथा जैसे साकार हो उठती है — 'तुम ठीक कहते हो जीजाजी, मैं उनके सिर पर बोझ ही हूँ। मुझे दु ख है कि मैंने आपकी कृपा की अवहेलना की। इस समय आप जाये, कल इसी समय आये और साथ मे थोडा जहर भी लेते आये। मैं बहुत हल्की बनकर आपकी सेवा मे उपस्थित हो जाऊँगी। जो मुझे बोझा समझता है, वह स्वय भी मेरे ऊपर बोझा है। मैं सब तरह के बोझे उतारकर आपके पास उपस्थित हूँगी।'

सरला आदर्श पतिव्रता है। इसीलिए वह कहती है—'उनकी कला, जिसके चरणो पर ससार सिर झुकाता है, क्या साधारण वस्तु है!' सरला का आदर्श चरित्र ही कवि कुमार के मुख से यह कहला लेता है —'कवि को जीवित रखने के लिए तुम मर रही हो, शायद नही जानती कि मेरी स्फूर्ति तुम हो। मेरी प्रेरणा तुम हो। मेरी गरीबी तुमसे धन्य है। मेरी वेदना तुमसे धन्य है। तुम्हारी मूक सेवा, तुम्हारा नीरव प्यार और तुम्हारी कठिन तपस्या ही तो मेरी वीणा के तार है! मैं वाणी के मदिर का पुजारी हूँ। तुम तो साक्षात् वाणी हो। मेरे गीत मे तुम्हारा ही स्वर है, सरला।' ऐसा है सरला का चरित्र।

मालती और चन्द्रिका भी इसी साँचे मे ढली है। मालती तो अपने अन्यायी पति को भी नही छोड़ना चाहती। वह कुमार से कहती है—'मैं उन्हे बहुत प्यार करती

हूँ। वे आये दिन मुझे हटर से मारते है, फिर भी मैं उन्हे नही छोड सकती। वे मेरे टुकडे टुकडे कर डाले फिर भी मै उन्हे नही छोड सकती।'

आज समाज मे ऊँचा स्थान पाने के लिए जो आर्थिक स्पर्धा बढती जाती है, मनुष्य जिन दुर्गुणो का शिकार होता जाता है, वर्मा साहब उसके मूर्तिमान् स्वरूप है। वह मालती से कहते है—'ये लोग शराब पीते है, उनके साथ बैठने योग्य बनने के लिए मुझे भी पीनी पडती है। ये लोग वेश्याओ से जी बहलाते हैं, मुझे भी ऐसा करना आवश्यक है। ऐसा न करूँ तो वे मुझे पूछे ही क्यो?'

वास्तव मे निर्धनता और अर्थलोलुपता के सघर्ष मे ही इस नाटक का कथानक स्पृहणीय बन सका है। सरला ने इस द्वन्द्व के लिए जो टिप्पणी दी है, वह सम्पूर्ण नाटक के कथानक की भावधारा की ओर सकेत करती है। वह कहती है—'गरीबी, तू मनुष्य की कीमत इतनी कम कर देती है। और रुपया, तू मनुष्य को राक्षस बना देता है।' इस विषमता के चित्रित होने के लिए जो घटनाएँ सँजोई गई है, कथानक उनसे ही नाटकीय बन सका है। दरिद्रता मे पले हुए दो परिवारो से एक का आन के पीछे मरना, दूसरे का मर्यादा की सीमा को लाघकर धन की कामना करना विषमता को नगा करना है, और इसी नगेपन मे नाटक का प्रभाव सुरक्षित है।

'रूपशिखा' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एकाकी है। रूपमती नामक एक नृत्य-सगीत प्रवीण राजपूत रमणी मालव के सुल्तान को देखकर उस पर मुग्ध हो जाती है, वह भी रूपमती के प्रति श्रद्धा और आसक्ति से भर जाता है। रूपमती का पिता उसे उसके बराबर तौल का सोना लेकर मालव के सुल्तान बाजबहादुर के राजमहलो मे पहुचा देता है। रूपमती की कलाप्रियता बढती जाती है, वह अपने नृत्य गान के साथ मदिरा के प्यालो मे बाजबहादुर का जीवन डुबा देती है। समय पाकर सम्राट् अकबर का एक सेनापति आदमखान रूपमती को उडाने का षड्यत्र रचता है। मालवा पर चढाई होती है, बाजबहादुर भाग खडा होता है। अब रूपमती पर आदमखान अकबर के प्रभाव को डालकर उसे ले जाना चाहता है। रूपमती तैयार नही होती। फिर आदमखान अपनी बेगम बनाने का प्रस्ताव रखता है, उधर बाज-बहादुर की सेना का सेनापति वीरसिह भी रूपमती पर अपनी आसक्ति प्रकट कर देता है। रूपमती वीरसिह को फटकारती है और आदमखान सम्बन्धी बात को प्रकट कर देती है। वीरसिह को आश्चर्य होता है। किन्तु रूपमती ज़हर पी लेती है। तभी आदमखान आता है। इसी समय बाजबहादुर भी आ जाता है। आदमखान उसके देहान्त का समाचार सुनता है। बाजबहादुर अपनी गोली का स्वय शिकार होता है।

इस कहानी को लेकर लेखक ने मुगलो की विलासिता, उनके अनाचार का चित्रण तो किया ही है, साथ ही राजपूती शान की तसवीर भी अकित की है, रूपमती का

जीवन आदर्श क्षत्राणी का जीवन दिखाया गया है। अपने ऐतिहासिक कथानको के उद्देश्य की भाँति इसके कथानक द्वारा साम्प्रदायिक एकता का प्रयत्न भी किया है। रूपमती के मुख से लेखक ने कहलाया है —'प्रीत के ससार मे जाति और धर्म के दायरे नही है। वहाँ मनुष्य जाति एक है। हम दोनो इन्सान थे, हमने अपने प्राण एक कर लिये। न वह मुसलमान रहा, न मैं हिन्दू।'

इस नाटक का कलेवर बहुत बडा है, सग्रह के सब नाटको मे बड़ा है यह। सात दृश्य। पूरे नाटक की सामग्री। किन्तु कोई भी घटना, कोई भी दृश्य और कोई भी व्यक्ति फालतू नही। सबका केन्द्र है रूपशिखा रूपमती। सब कोई उसके लिए क्रिया-शील, उसके लिए आकुल। नाटक की कथा-वस्तु सुसगठित और सबल।

जिज्ञासा और कौतूहल इसका विशेष गुण है, जिसे लेखक अन्त तक बनाये रखता है। रूपमती के चरित्र ने इस कौतूहल को और भी रहस्यमय बना दिया है। प्रेम जिस प्रकार रहस्यमय है, वैसे ही रूपमती का जीवन भी। इसी रहस्य मे नाटक का प्राण है। रूपमती और बाजबहादुर की मृत्यु के साथ नाटक एक समवेदनात्मक प्रभाव छोडकर समाप्त हो जाता है, यही इस नाटक का गुण है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी यह नाटक सुन्दर बन पडा है। यो इस नाटक मे कई पात्र है, किन्तु रूपमती का चरित्र सबको आच्छादित किए हुए है। रूप-शिखा जो ठहरी। उसके रूपज्वाल के पतगे सभी बनते है, किन्तु वह अपने आदर्श से नही डिगती। राजपूत रमणी का यही तो चरित्र है। रूपमती प्रेम और कला की पुजारिन है। दोनो ही वस्तुएँ उसके जीवन की अक्षयनिधि है। इनके लिए ही वह जीवन की बलि देती है। वह कहती है—'मेरे लिए जीवन से बडी वस्तु है कला और कला से भी बडी वस्तु है प्रेम। प्रेम पर मै कला को भी निछावर करने को प्रस्तुत थी और हूँ।' कला और प्रेम को वह मनुष्यता की नीव मानती हुई कहती है— 'अपने मनुष्यत्त्व ने मुझे हरा दिया है, मैं एक की होकर अनेक की नही हो सकती। मै कला की साधना करना चाहती थी, वेश्या बनना नही।'

नाटकीय कला की दृष्टि से नाटक का छठा दृश्य बहुत उत्तम है। कथोपकथन, राजपूती चरित्र का अकन, कथा की पूर्वापर शृ खला की निबद्धता सभी दृष्टियो से इसका अपना महत्त्व है।

'नया समाज' हिन्दु-मुस्लिम-एकता का आदर्श प्रस्तुत करता है। यह एक सामाजिक नाटक है। हिन्दू मुस्लिम दगे मे नव-विवाहिता महिला मालती विधवा हो जाती है। मिर्जा अजीमबेग का पुत्र मुहम्मद उसे अपने घर लाता है। अजीमबेग एक सहृदय मुसलमान है, अत मालती को वहाँ आदर का भाव मिलता है। हिन्दू लोग मिर्जा पर आक्रमण करते है, मिर्जा की पोती रोशन और उनकी बेटी बेघर-

बार हो जाती है। भूख से व्याकुल रोशन की माँ इससे पहले कि उसके प्राण निकले रोशन को मालती की माँ के हवाले कर देती है। मालती और मुहम्मद साथ रहकर हिन्दू-मुस्लिम-एकता का प्रचार करते है। अन्त मे मुहम्मद को अपनी बेटी रोशन और मालती को अपनी माँ मिल जाती है।

नाटक की कहानी हिन्दू-मुस्लिम-दगे के कारणो, दुष्परिणामो का उद्घाटन तो करती ही है, साथ ही एकता का सीधा मार्ग भी प्रस्तुत करती है। नाटक का कथानक आरभ से ही जिज्ञासा और कोतूहल जाग्रत करता चलता है। चरमसीमा पर ही नाटक समाप्त नही हो जाता। मालती की माँ के उपदेश के साथ नाटक का अन्त होता है जोकि प्रेमीजी का उद्देश्य होता है।

सामाजिक और राजनैतिक समस्या पर विचार करनेवाला यह नाटक गाँधीवादी युग की राष्ट्रीय चेतना का इतिहास भी कहा जा सकता है। गाँधीवाद के व्यवहार-पक्ष का उद्घाटन करना ही उसका लक्ष्य है। कल्पनालोक नही, बल्कि व्यावहारिक जगत् का आदर्शवाद ही इस नाटक द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

नाटकीय सकेतो से पूर्ण इस नाटक मे उपदेशात्मकता ने शिथिलता भी ला दी है। इसी कारण से इसके कथोपकथन भी लम्बे हो गये है। उद्देश्य के प्रति इतनी जागरूकता भी समुचित नही है। वास्तव मे कला के प्रति इस नाटक मे इतना आग्रह नही है, जितना समकालीन राजनैतिक इतिहास के तथ्यो का वर्णन करने के प्रति रुचि। तथ्यो पर जिस सजगता से लेखक ने कलम चलाई है उससे विवेकशील पाठक का मन-मस्तिष्क उत्तेजना से भर उठता है और हृदय कुछ करने के लिए मचलता है। नाटक की कहानी को हम भूल जाते है और याद रह जाते है, ये वाक्य —

'**मिर्ज़ा**—अग्रेज समझते थे कि हिन्दुस्तान को उन्होने जीता है इसलिए उनका है—मुसलमान कहते है हिन्दुस्तान उनका है, क्योकि अग्रेज़ो के पहले उनका था। हिन्दू कहते है हिन्दुस्तान सिर्फ उनका है, क्योकि वे इसमे बहुत पहले से रहते आये है। अग्रेज़ो को हिन्दू और मुसलमानो ने मिलकर निकाल दिया—लेकिन साथ ही अपने घर का बँटवारा भी कर लिया।'

'**मालती**—गत दगो ने पाकिस्तानी और भारतीय दोनो सीमाओ मे लाखो आदमियो को मौत के घाट उतार दिया—लाखो ही हिन्दू और लाखो ही मुसलमानो के रक्त से धरती लाल हो गई। लाखो महिलाएँ विधवा हो गई—लाखो बहनो को नगी करके जुलूस निकाले गये—क्या नही हुआ—जिसका वर्णन करने मे भी वाणी को सकोच होता है। ऐसे काम मानव कैसे कर सका, यही आश्चर्य की बात है।'

'**मुहम्मद**—लाखो की तादाद मे अनाथ, अपाहिज, विधवाएँ आज बेसहारा

घूम रहे है। हिन्दू हिन्दुओ की बरबादी याद करके मुसलमान को राक्षस समझता है और उन्हें दुनिया के पर्दे से मिटा देना चाहता है और मुसलमान अपनी बरबादी को याद करके सारे हिन्दुओ से उसका बदला चाहते है। एक-दूसरी कौम के लिए नफरत का ज़हर नसो मे भर लिया गया है।'

इस सबसे उत्पन्न समस्याओ का हल खोजता हे, लेखक मालती के शब्दों मे। मालती कहती है —'लेकिन अब साम्राज्य स्थापित करने के दिन तो है नही, आज जनता अपने अधिकारो को समझने लगी है। अग्रेज़ो को भारत से हटाने का अर्थ न तो हिन्दूराज स्थापित करना है, न मुसलमान राज।'

'बल ! धन! वह महात्मा गाँधी ने हमे दिया है। हमारा बल है चरखा—धन है चरखा। इसी ने हमे अग्रेज़ो से स्वतत्र कराया है—यही हमे कुसस्कारो से मुक्त करेगा। यह हमे स्वावलम्बन और आत्म-विश्वास का गीत सुनाता है। हम अपना पेट इसकी सहायता से भरकर अपने जैसे दु खी और सर्वस्वहीनों को इस मन्दिर मे लायेगे, उन्हे भी चरखा रोटी देगा। यहाँ न कोई हिन्दू होगा, न कोई मुसलमान। हम किसी से भीख माँगने नही जायेगे।'

लेखक का अपना एक कर्त्तव्य होता है, उसके आगे वह कला की चिन्ता नही करता। कर्त्तव्य का निभाना ही बडी कला है। प्रेमीजी इस कला के धनी है। कहानियाँ तो सभी देते है, परन्तु विचार कितने देते है ! प्रेमीजी का यह नाटक कहानी चाहे न देता हो, विचार अवश्य देता है। क्या कला का यह काम नही ?

'मातृभूमि का मान' ऐतिहासिक नाटक है। चित्तौड के प्रतिभासम्पन्न महाराजा महाराणा लाखा सेनापति अभयसिंह को बूँदी के महाराव हेमू के निकट मेवाड की अधीनता स्वीकार करने की आज्ञा देकर भेजते है। बूँदी को यह बात पसन्द नही। किसी की अधीनता की अपेक्षा वह मृत्यु को श्रेयस्कर समझता है। फलत मेवाड और बूँदी मे युद्ध होता है। मुठ्ठी-भर हाडा सिसौदिया वश को हरा देते है। महाराणा प्रण करते है कि बूँदी के दुग पर अपना अधिकार करके ही अन्न-जल ग्रहण करेगे। चारणी इस कलह को रोकना चाहती है, किन्तु राजपूती हठ को कौन टाले ? चारणी उपाय निकालती है कि बूँदी का नकली दुर्ग बनाकर जीत लिया जाये, प्रतिज्ञा पूरी होगी। नकली दुर्ग बनता है तो मेवाडवासी एक हाडा वीरसिह बूँदी के सैनिकों को उत्तेजित करता है। मेवाड की सेना मे ही बूँदी के सैनिक भी है। अपनी जन्मभूमि बूँदी के गौरव की रक्षा के लिए मेवाड की सेना आपस मे टकराती है। खेल रूप मे भी मातृभूमि का अपमान क्यो हो ? वीरसिह देश की मर्यादा के लिए लडता हुआ मारा जाता है। मेवाड का झडा नकली दुर्ग पर फहराया जाता है। किन्तु महाराणा को अपनी यह जीत पराजय से भी अधिक भयानक लगती

हैं। उन्हे अपने व्यर्थ अहकार और अविवेक के लिए पश्चात्ताप होता है। वे अपने अपराध की क्षमा माँगते है। दोनो राज्यो मे फिर एकता हो जाती है।

राजपूतो की वीरता, शक्ति किन्तु अविवेक का उद्घाटन करना ही नाटक का उद्देश्य है। साथ ही यह भी बता दिया गया है कि प्रेम का ही अनुशासन स्वीकार किया जा सकता है, शक्ति का नही। जन्मभूमि का मान और पारस्परिक एकता ही इस नाटक का प्रतिपाद्य है। अपनी चरमसीमा पर समाप्त होता हुआ यह नाटक एक सन्देश छोड जाता है —'हम युग युग से एक है और एक रहेगे। सब देश, जाति और वश की मान-रक्षा के लिए प्राण देनेवाले सैनिक है। हमारी तलवार अपने ही स्वजनो पर न उठनी चाहिए।'

'यह मेरी जन्म-भूमि है' नाटक देश की राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक है। देश की स्वतन्त्रता के लिए उद्योग ही इसमे दिखाया गया है। गाधीजी की गिरफ्तारी के विरोध मे कॉलिज के विद्यार्थी जुलूस निकालते है। एक अग्रेज सैनिक अफसर कर्नल होम्स जुलूस को रोकने के लिए नियुक्त है। उधर अग्रेज़ो के खुशामदी रायसाहब सीताराम और अग्रेज़-भक्त देशद्रोही गुलाममुहम्मद षड्यन्त्र रचकर स्वतन्त्रता-आन्दोलन को असफल बनाने का प्रयत्न करते है। हिन्दू-मुसलमानो के इस सयुक्त जुलूस मे वे साम्प्रदायिक दगा करवाना चाहते हैं। मिस होम्स इस षड्यन्त्र को विफल करना चाहती है। इसके लिए वह रायसाहब के पुत्र मनोहरलाल और गुलाम मुहम्मद के पुत्र वलीमुहम्मद की सहायता लेती है। षड्यन्त्र असफल हो जाता है और स्वतन्त्रता आन्दोलन का जुलूस गाधीजी की गिरफ्तारी का विरोध करता हुआ आगे बढ जाता है। कर्नल होम्स जब देखते है कि उनकी पुत्री सत्याग्रह मे सक्रिय भाग ले रही है तो वे मशीनगन चलाने का आदेश देते है, किन्तु कलक्टर इस कठोर पग को उठाने की राय नही देता। जुलूस निकलता है।

इस नाटक से कई राजनैतिक तत्त्वो पर प्रकाश पडता है। पहली बात तो यह है कि भारत पर विदेशी शासन का कारण अग्रेज़ो की मनोवृत्ति नही, बल्कि स्वार्थ-बुद्धि थी। अग्रेज़ो मे भी मानवता है, जैसाकि मिस होम्स के चरित्र द्वारा दिखाया गया है। दूसरी बात यह है कि बुराई किसी एक देश या जाति विशेष तक ही सीमित नही है, वह कही भी हो सकती है। हिन्दू और मुसलमानो मे भी देश-द्रोही मिल सकते है। लेखक ने बडे ही सुन्दर ढग से राष्ट्रीय चेतना के युग की मानसिक हलचल का चित्र अकित किया है। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान और क्या अग्रेज —सभी के मन यह अनुभव करते थे कि भारत पर विदेशी शासन अनुचित है। सगठन की भावना अन्य नाटको की भाँति इस नाटक का भी प्राण है। हिन्दू-मुस्लिम एकता मे विघ्न डालनेवाली अग्रेज़ो की नीति ने अनेक स्वार्थी, धन-लोलुप प्राणियो को अपने ही देश

का विरोधी बना दिया था । इस नाटक मे सगठन द्वारा इस समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है ।

इस नाटक मे जहाँ एक ओर स्थल और समय की एकता का ध्यान न रखकर रगमचीयता की ओर ध्यान नही रखा गया, वहाँ मिस जेम्स की बेचैनी दिखाकर, उसका पुस्तको को फेकना और आरामकुर्सी पर पडे रहना व्यक्त करके नाटकीय सामग्री भी प्रस्तुत की गई है । मानसिक स्थिति का यह चित्रण नाटकीय वस्तु है ।

चरमसीमा पर समाप्ति इस नाटक का गुण है । इस नाटक की चरमसीमा वहाँ होती है जहाँ स्वय कर्नल होम्स, वलीमुहम्मद और सीताराम की सन्तान उनकी आज्ञा के विपरीत जुलूस का नेतृत्व करते है । इसी चरमसीमा पर नाटक समाप्त हो जाता है ।

स्वार्थ और आदश का, राज-भक्ति और देश-भक्ति का द्वन्द्व भली प्रकार से उभारा गया है । मानवता की स्थापना भी इस नाटक का उद्देश्य है ।

'निष्ठुर न्याय' की कथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है । मेवाड के राजकुमार अजयसिह भील कन्या श्यामा के प्रेम मे फँस जाते है । फलत वे समय पर सेना के अग्रभाग का सचालन नही कर पाते । मेवाड के महाराणा रत्नसिह को मेवाड के भावी शासक की यह विलास-वासना पसन्द नही । उनका न्याय दण्ड अजय-सिह पर भी चला । महाराणा के सामने जब अजय और श्यामा को प्रस्तुत किया गया तो दोनो को प्राण-दण्ड की आज्ञा सुना दी गई । परन्तु चारणी बीच मे पडती है । उसके कथनानुसार पहले दोनो का विवाह हो जाता है । अब राणा का न्याय श्यामा को निर्दोष और अजय को देश-द्रोही मानता है । प्राण-दण्ड की आज्ञा दी जाती है । काली की मूर्ति के समक्ष राजकुमार अजयसिह को खडा किया जाता है । सेनापति तलवार उठाते है । श्यामा चीत्कार करके चारणी के चरणो मे गिर जाती है ।

नाटक मे वध का दृश्य न दिखाकर भारतीय नाट्य-शास्त्र की परम्परा दिखाई गई है । राजपूतो के शौर्य, आन और बलिदान का चित्र भी प्रस्तुत किया गया है । नाटक का अन्त चरमसीमा मे होता है । यह चरमसीमा जहाँ एक आदर्श को लिये है, वहाँ एक करुण प्रभाव भी छोडती है । प्रेम को कर्त्तव्य से अधिक मानने वाला कुमार स्वय अपने पिता की आज्ञा से मृत्यु-दण्ड पाता है । कला और भाव-शैली की दृष्टि से यह नाटक अच्छा बन पडा है ।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी यह नाटक सुन्दर कहा जा सकता है । महा-राणा का चरित्र आदर्श न्यायप्रिय राजपूत का चरित्र है । न्याय के आगे वात्सल्य कुछ नही होता । हृदय के कोमल अश को ही सब कुछ माननेवाले इस चरित्र को अस्वाभाविक भले ही कहे, परन्तु राजपूती दृढता का यह सही प्रतिनिधित्व करता है ।

श्यामा का चरित्र बहुत ही सफलता के साथ अकित किया गया है। उसमे आत्म-गौरव है। भीलकन्या होने पर भी वह अपने को हीन नही समझती। वह अजयसिंह से कहती है —'आत्म-गौरव को ऐश्वर्य और शक्ति की तराजू पर नही तोला जा सकता भीलसमाज अपनी मर्यादा को किसी प्रकार राजपूतो के उच्चतम वश के आगे झुकाने को प्रस्तुत नही।' वह प्रेम को चोरी की वस्तु नही बनाना चाहती। कुमार का चोरी-चोरी मिलना उसे पसन्द नही है। वह कहती है —'अपनी लालसा को अँधेरी गुफा मे रखकर चोर न बनाओ, प्रकाश मे लाकर विद्रोही भले ही बनाओ।' चरित्र की यह उदात्तता ही इस नाटक का प्राण है।

प्रेम, वर्गहीन समाज और न्याय के सम्बन्ध मे नाटक की यह स्पष्ट घोषणा है। चारणी कहती है —

'न्याय-आसन पर बैठते समय आप न महाराणा है, न आपका उच्चकुल मे जन्म हुआ है। न्याय-मन्दिर का देवता एक निष्पक्ष, निर्विकार, जाति-कुल-हीन, ममता-माया के आवरण से मुक्त, यश-अपयश के परे रहनेवाला मनुष्य है। महाराणा यदि आप इस समय इन दोनो को दण्ड देगे तो ससार यही समझेगा कि मनुष्य का मनुष्य से प्रेम करना पाप है। हमने नीच और ऊँच की भावनाएँ प्राणो मे पालकर अपने देश को सैकडो टुकडो मे बाँट लिया है।'

'पश्चात्ताप' सग्रह का अन्तिम नाटक है। यह सामाजिक है। वर्तमान भारत की अछूत-समस्या ही इसका विषय है। रधिया एक अछूत-कन्या है। कन्हैया अछूतोद्धार मे लगा हुआ एक कुलीन युवक है। रधिया इससे प्रभावित होकर क्रान्तिवादी विचार रखती है। किन्तु न तो मन्दिर मे उसका आदर होता है और न ही वैद्य पचकौडीदास उसकी चिन्ता करते है। वह बीमार पड जाती है, तो वैद्यजी उसे देखने नही आते। तभी वैद्यजी का लडका बीमार पड जाता है, वे उसका इलाज नही कर पाते तो ईसाई डाक्टर बुलाया जाता है। डाक्टर किसी समय भगी था। वैद्यजी को मालूम होता है तो उन्हे दुख होता है। इसी समय वैद्यजी के पास रधिया की माँ आती है तो वे उसे फटकारते है। डाक्टर को इससे घृणा होती है। वह रधिया को देखने जाते है। इधर वैद्यजी के लडके की दशा बहुत खराब हो जाती है, उन्हे डाक्टर को लेने रधिया के घर जाना पडता है। डाक्टर इन्कार करता है। रधिया सिफारिश करती है, अब वैद्यजी को अपने व्यवहार पर पश्चात्ताप होता है।

लेखक ने अछूत-समस्या पर समुचित प्रकाश डाला है। पचकौडीदास के इस वाक्य-द्वारा कि 'वह चुडैल रधिया की माँ सब जान गई है। वह गाँवभर मे फूँक देगी।' लेखक ने यह बताने की चेष्टा की है कि मनुष्य भीतर से तो चाहता है कि

अछूत-भावना का अन्त हो, किन्तु समाज-भीरुता वैसा नही करने देती। रूढियो की जकडन ही बाधा है।

कन्हैया ने जो तथ्य प्रस्तुत किये है, वे इस प्रकार हैं —

'मनुष्य ही तो सच्चा देवता है। जो मनुष्य की पूजा नही करता वह भगवान् की पूजा कैसे कर सकता है?'

'ससार मे न कोई बडा है, न छोटा। विद्या प्राप्त करने का सबको अधिकार है। सबके साथ एक-सा बर्ताव होना चाहिए।'

'हमे तो ऊँची जातिवालो के हृदय को बदलने की और अछूत कही जाने वाली जातियो का रहन-सहन बदलने की ज़रूरत है।'

पहले, चौथे और अन्तिम दृश्य मे जो नाटकीय स्थिति पैदा की गई है, उससे यह नाटक और भी सुन्दर हो उठा है। रग-सकेत इसको और भी सजीवता प्रदान करते है। पहले दृश्य मे जो दृश्य-विधान प्रस्तुत किया गया है वह समस्त वातावरण को आँखो के आगे सजीव कर देता है। वैद्यराज पचकौडीदास की झाँकी देखिए— 'वे एक मैली धोती पहने है जो आधी पहन रखी है, आधी कन्धे पर है। बदन उघडा है। एक मैला और मोटा जनेऊ पहने हुए है।' अछूतो से घृणा करनेवाले ब्राह्मण का यह चित्र एक अच्छा व्यग्य-चित्र प्रस्तुत करता है।

यो कविता किसी की बपौती नही है किन्तु रधिया की कविता के लिए नाटक मे शायद ही गुजाइश थी। नाटक मे गीत रखने का लोभ सवरण नही हुआ तो रधिया की कविता ही सही। रधिया की माँ के पैरो मे पचकौडी का गिराना भी व्यर्थ था। इसके बिना भी अछूतोद्धार हो सकता था। रधिया का आग्रह ही डाक्टर के लिए पर्याप्त था।

'बेड़ियाँ' प्रेमीजी का फुटकर नाटक है। यह विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत कहा जा सकता है। किसी व्यापक समस्या की ओर इसमे सकेत नही है। कर्त्तव्य, प्रेम और आदर्श की सघर्षमय कथा को लेकर लिखा गया है।

कवि चातक के जीवन मे सहसा एक दिन आ जाती है नीता। उन दिनो चातक की पत्नी अपने मायके गई हुई थी। नीता ने समझा यह घर अब मेरा ही है, और मैं चातक से अलग नही हूँगी, किन्तु एक दिन आ जाती है चातक की पत्नी कमला। कमला नही चाहती कि नीता घर मे रहे। दोनो मे परस्पर वैमनस्य हो जाता है। नीता चाहती है कि कवि कमला को परिवारसहित छोड दे और उसे ही अपना ले। कवि अपनी विवशता उसे समझाता है। वह उसके आँसू पोछता है कि कमला देख लेती है। कमला से कवि का झगडा होता है। नीता चली जाती है। कवि कमला को समझाता है, नीता के प्रति अपने व्यवहार के औचित्य पर प्रकाश

डालता है कि नीता फिर लौट आती है। कमला और नीता मे विवाद बढ जाता है, दोनो के झगडे से तग आकर कवि घर से निकल चलता है। दोनो उसका रास्ता रोक लेती है। कवि अपने हृदय के उद्गार व्यक्त करता है। नीता और कमला दोनो को अपनी गलती का अनुभव होता है और वे कवि से क्षमा माँगती है।

इस नाटक मे दो समस्याओ पर प्रकाश डाला गया है, एक तो पति-पत्नी के बीच नासमझी के कारण उत्पन्न होनेवाली गलतफहमी से सम्बन्धित घर की अशान्ति से सम्बन्ध रखती है। दूसरी समस्या कर्त्तव्य-पालन की जिम्मेदारी को निभाने की है। कवि चातक की पत्नी कमला अशिक्षित है, अत गलतफहमियाँ उसे शीघ्र जकड लेती है, फलस्वरूप वह अपने गृहस्थ जीवन को अशान्त कर लेती है। वह न तो स्वय को समझ पाती है, न ही अपने कवि पति की उदारता को। नीता के प्रति सद्व्यवहार को वह उसकी प्रेमलीला मानती है। जब उसे असलियत का पता चलता है तो कहती है —

'मैं तो अनपढ हूँ, इसलिए इन्हे समझ न पाई और तुम पढी-लिखी हो, फिर भी तुमने इन्हे गलत समझा। मैंने तुम्हे भी गलत समझा, लेकिन तुम मेरे स्थान पर होती तो समझती कि मेरा गलत समझना स्वाभाविक है। एक बात तुमसे कहती हूँ कि पति की सेवा मे ही मेरा सुख है। तुमको दूर फेककर यदि वह सुखी नही रह सकते तो आज से तुम मेरी बहन हुई।'

कर्त्तव्य का पालन करता है चातक। नीता को सहारा देकर उसे मिलती है बदनामी। वह नीता और कमला दोनो की गलतफहमियो का शिकार होता है, किन्तु जिम्मेदारी से भागना नही चाहता। वह उदार दृष्टि और भावुक हृदय का व्यक्ति है। नीता को उसने इसीलिए अपनाया भी —'दु खो ने तुम्हारे सम्पूर्ण तन और मन को झुलस डाला था। फिर भी दु खो से खाए हुए तुम्हारे चेहरे पर कुछ ऐसा था जो हृदय की सहानुभूति छीन लेता था। सहसा मैंने भी तुम्हारे जीवन की सम्पूर्ण जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली।'

चातक हर प्रकार से नीता की सहायता करना चाहता है, किन्तु अपने बीवी-बच्चो के प्रति निर्दय होकर नही। वह अपने परिवार के प्रति भी अपनी जिम्मेदारी अनुभव करता है —

'अनेक सुख-दु खो की स्मृतियाँ लिए हुए वह भी मेरे जीवन का अग है। तुम भी नारी हो, वह भी नारी है। मुझे किसी नारी के प्रति अत्याचार करने को बाध्य मत करो। मेरी पत्नी और बच्चो का कोई अपराध नही। कम-से-कम उनका जीवन तो बर्बाद तुम न करो।'

एक समस्या और भी उठाई गई है। बेमेल विवाह की। कवि को जो पत्नी मिली वह उसकी अनिच्छा से। मिल भी गई तो वह उसके विचारो से मेल नही

खाती। चातक ने कमला से बाते करते हुए कहा —'मेरे पिताजी ने धनी घर मे सम्बन्ध जोडने के प्रलोभन मे बचपन मे ही मारपीटकर यह विवाह कर डाला।'

'तुम्हारे सस्कार दूसरे थे—मेरे दूसरे। तुमने कहा था, मैं कायस्थ के हाथ का पान नही खा सकती। मै तो सब तरह की छूतछात और ऊँच नीच को मनुष्यता के लिए कलक समझता रहा हूँ। तुम अपने अन्धविश्वासो और रूढिवाद के कुसस्कारो से छुटकारा न पा सकी, जितना ही तुम्हे उनसे दूर करने का मैने यत्न किया, उतनी ही तुम उनसे चिपट गईं।'

इतना होने पर भी कवि कमला के प्रति ईमानदार रहा है। लेखक यही कहना चाहता है कि बेमेल विवाह अभिशाप है, किन्तु समझदारी यही है कि पुरुष फिर भी ईमानदारी बरते। लेखक ने बडे अच्छे ढग से वैवाहिक जीवन, प्रेम-सम्बन्ध और कर्त्तव्यपालन की टीका प्रस्तुत की है।

सकलनत्रय की दृष्टि से भी यह नाटक सुन्दर बन पडा है। प्रेमीजी का यह एकमात्र नाटक है जिसे हम एक सैट का कह सकते है। रग-सकेतो की भी पूरी सहायता ली गई है। दृश्य-विधान समुचित ढग से वर्णित है। कवि चातक, नीता और कमला के चित्र इस प्रकार प्रस्तुत है —

कवि चातक की आयु लगभग ४५ वर्ष की है। वह केवल खादी का कुर्ता और धोती पहने है। सिर नगा है। सिर के बाल आधे काले और आधे सफेद है।

नीता लगभग पच्चीस वर्ष की युवती है। देखने मे सुन्दर भी नही है, असुन्दर भी नही है। उसकी आँखो, चेहरे और अन्य अवयवो से ऐसा जान पडता है जैसे मुसीबतो ने उसे पर्याप्त सताया है। वह सलवार, कमीज़ और चुन्नी पहने हुए है, जो काफी पुरानी जान पडती है। उसके हाथ मे एक कापी है, जिसे वह झटके के साथ बीच की गोल टेबल पर पटकती है।

कमला की आयु अडतीस वर्ष के लगभग है। शरीर से कुछ मोटी है। रग साँवला है। साधारण कपडे पहने हुए है।

पहला चित्र जीवन की सादगी और अनुभवशीलता का है। दूसरा चित्र परि-स्थितियो की चोट खाई किन्तु तेज तर्रार लडकी का है और तीसरा चित्र एक अवि-वेकी तथा फूहड महिला का। तीनो के कथोपकथनो मे इसी विशेषता की अभिव्यक्ति है। यही प्रेमीजी का कौशल है।

कथोपकथन सरल, भावानुकूल, मनोभावो के उद्घाटनकर्त्ता और चुभते हुए। सभी गुणो से युक्त यह एकाकी प्रेमीजी के सभी एकाकियो का सिरमौर है।

दस

प्रेमीजी के नाटकों की भाषा-शैली

भापा-शैली भावो का वाहन है। यह वाहन जितना परिचित, सरल, सीधा और उपयुक्त होगा उतना ही भावो की अभिव्यक्ति प्रभावशाली होगी और लेखक को अपने कार्य मे सफलता मिलेगी। नाटक एक सामाजिक वस्तु है, अत नाटककार को भाषा-शैली के सम्बन्ध मे सामाजिक दृष्टि से ही विचार करना पडता है। प्रेमीजी ने अपने नाटको की भूमिकाओ मे भाषा-शैली के सम्बन्ध मे जो अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, वह इस प्रकार है —

' सारे हिन्दुओ से हिन्दी ही बुलवाई गई है, किन्तु मुसलमान पात्रो के मुख से उनकी स्वाभाविक भाषा बुलवाई गई है। अभीतक हिन्दी-लेखको की यही परिपाटी रही है।' ('शिवा-साधना')

'मैंने अपने अन्य नाटको मे यह नियम रखा है कि हिन्दू-पात्रो की भाषा हिन्दी तथा मुस्लिम पात्रो की उर्दू रखी जाय। यह नाटक इसका अपवाद है। इसके लगभग सभी पात्र मुसलमान है, उनकी भाषा उर्दू रखने से नाटक हिन्दी-भाषियो के काम का न रहता।' ('स्वप्न-भग')

' मैने अपने 'रक्षा-बन्धन', 'शिवा साधना', 'प्रतिशोध', 'आहुति' आदि नाटको मे मुसलमान पात्र से उर्दू भाषा बुलवाई हे, किन्तु 'शतरज के खिलाडी' और 'स्वप्न-भग' मे ऐसा नही किया। 'स्वप्न-भग' के पात्रो मे मुसलमानो की बहुसख्या है और यदि उनसे उर्दू भाषा बुलवाता तो नाटक उर्दू भाषा का ही बन जाता। बस, मैंने उर्दू का मोह छोड दिया। पात्रो के धर्म या देश के अनुसार भाषा मे परिवर्तन करने का नियम रखा जाता तो 'रक्षाबन्धन' मे पोर्चुगीज़ पात्र से पोर्चुगीज भाषा बुलवानी पडती। किसी से हिन्दी, किसी से उर्दू, किसी से पोर्चुगीज, किसी से राजस्थानी—एक अच्छा-खासा मज़ाक बन जाता। अत अब मैं हिन्दी भाषा के नाटको मे हिन्दी भाषा का ही प्रयोग प्रत्येक पात्र के कथोपकथन मे करने लगा हूँ। ('शतरज के खिलाडी')

यही सफाई उन्होने 'विदा' नाटक की भूमिका मे दी है। इन स्पष्टीकरणो से यह बात प्रकट होती है कि प्रेमीजी बराबर लोकसामान्य भाषा की खोज मे रहे है। ऐसी भाषा की खोज मे जो स्वाभाविक भी लगे और जिसे सब समझ भी सके। दुरूहता या अपरिचितता के पक्ष मे प्रेमीजी कभी नही रहे। वास्तव मे उनके नाटको की भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण है। आपने प्रसादजी की भाँति सस्कृत की तत्सम पदावली से युक्त दुरूह भाषा नही लिखी।

"प्रेमीजी के नाटको की भाषा प्राय सरल रही है। उन्होने सस्कृत के तत्सम शब्दो के प्रयोग द्वारा अपनी भाषा को केवल उसी स्थिति मे क्लिष्ट होने दिया है, जब उन्होने गहन विचारो की अभिव्यक्ति की है। उनकी भाषा भावानुरूप परिवर्तित होती रही है। यही कारण है कि जहाँ शृगार, करुणा और शात आदि कोमल रसो के प्रयोग मे उनकी भाषा माधुर्य-गुण सम्पन्न रही है, वहाँ वीररस के प्रकरणो मे वह ओजगुणमयी हो गई है। तद्भव शब्दो के साथ-साथ उन्होने देशज शब्दो का भी प्रयोग किया है। लोक-साहित्य मे उपलब्ध शब्दावली भी उनके नाटको मे प्रचुरता से प्राप्त होती है। इसी प्रकार उन्होने अपने ऐतिहासिक नाटको मे तत्कालीन देश-काल को सुरक्षित रखने के लिए कुछ विशिष्ट पारिभाषिक शब्दो का भी प्रयोग किया है। सत्य तो यह है कि अभिनेय नाटक के लिए सरल और सक्षिप्त वाक्यो से युक्त जिस प्रवाहमयी भाषा की आवश्यकता होती है, उस पर उनका पूर्ण अधिकार रहा है।"[१]

प्रेमीजी ने पात्रानुसार भाषा का प्रयोग किया है। पात्रानुसार का अर्थ भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी पात्रो की भाषा नही, बल्कि पात्रो की मानसिक अवस्था, उनके बौद्धिकस्तर और पदानुसार ही भाषा का प्रयोग। मुगलो के मुख से शुद्ध हिन्दी बुलवाने के पक्ष मे वे नही रहे। उसे उर्दू के प्रचलित शब्दो की पुट देकर सरल बनाया गया। सरलता ही प्रेमीजी का गुण है। प्रसादजी की भाँति सभी पात्र किसी दार्शनिक गुत्थी को सुलझाने मे सलग्न नही दिखाई देते।

'रक्षाबन्धन' की श्यामा आरम्भ मे आत्मपीडा से तडपती दिखाई देती है, उस पीडा का कारण वह मेवाड के राजवश को मानती है, इस प्रकार के व्यक्ति का हृदय स्वाभाविक घृणा और व्यग्य से भर उठता है। श्यामा के मुख से निकली भाषा उसके पीडित और प्रतिशोध को व्यग्र हृदय का पता देती है —'आह! चारण और चारणी! ये मनुष्यता के लिए अभिशाप है, शान्ति को भस्मसात कर देनेवाले दावानल हैं। प्रेम के कुसुम को कुचल डालनेवाले उन्मत्त पशु है देशाभिमान, राष्ट्रीयता, वश-गौरव और न जाने किस-किस कृत्रिम भावना का नशा पिलाकर मनुष्य को रणोन्मत्त कर रक्त की नदियाँ प्रवाहित करानेवाले पिशाच है। चारणी! तुम मेरी आँखो के आगे से हट जाओ!'

जब प्रेमीजी श्यामा के भावावेश का चित्रण करते हैं तो शब्दो की झडी इस प्रकार लगती चलती है, जैसे टकसाल मे सिक्के गढे जा रहे है। एक के बाद एक स्वत आते चले जाते हैं। भाषा का ऐसा स्वाभाविक उद्दाम प्रवाह कम ही देखने को मिलेगा। चारणी को अपना परिचय देती हुई श्यामा कहती है —'मैं हूँ डाली से तोडी हुई, पैरो से रौंदी हुई कलिका। मैं हूँ मूर्च्छित हाहाकार। मैं हूँ

१ सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रथ, पृष्ठ ७६६-७६७

ऊपर से बन्द, किन्तु भीतर चिर प्रज्वलित ज्वालामुखी। मेरा जीवन है सूखी हुई सरिता, उजडा हुआ उपवन, ऊसर खेत, पतझड का पेड। मेरे जीवन मे भी एक दिन वसन्त आया था ।'

श्यामा जहाँ भी भावावेश मे आती है, वहाँ इसी प्रकार वाक्य कहती चली जाती है। इस प्रकार भाषा प्रभावशाली होकर अधिक नाटकोचित हो उठती है। विजय को समझाती हुई वह कहती है —

'मैं चाहती हूँ ठडे दिमाग से अपने सर्वस्व को करण-करण करके पीडितो की सेवा मे क्षय करना, मैं चाहती हूँ अपने हाथो अपने प्राण-प्रिय पति और पुत्र को मरण की ज्वाला मे झोककर जीवित रहना और उनके वियोग के एक-एक क्षण की दारुण कसक को आजीवन सहना, सहते-सहते हँसना, खेलना और काम करना, कलेजे पर पत्थर रखकर दुखियो की सेवा करना, अपने कलेजे को ऐसा बनाना कि वह पत्थर के नीचे दबा रहने ही को वीरता न समझे बल्कि उसे उठाकर दुनिया की उलझने सुलझाता हुआ जीवन के कटकमय पथ पर हँसता-खेलता, उछलता-कूदता चले।'

'शिवा-साधना' की ज़ेबुन्निसा का हृदय भी चोट खाया हुआ है। वह शाहज़ादी है, किन्तु इन्सान बनना चाहती है, शाहज़ादी नही। उसके बातो से भी उसके दिल की पीडा झाँक रही है।—'चुप रहो सलीमा! अगर बोलना है तो उसी तरह बोलो जिस तरह एक इन्सान दूसरे इन्सान से बोलता है। ऐसा डरावना नाम लेकर एक मुलायम दिल रखनेवाली लडकी को न पुकारो। तुम मुझे शाहज़ादी कहती हो, मगर मैं यह महसूस करती हूँ कि इस दुनिया मे मुझसे बढकर कगाल कोई इन्सान का जाया न होगा।'

'आहुति' के नायक हमीर के हृदय के असन्तोष का, अशान्ति का और हृदय के भीतर तरगे मारती उद्दाम लालसा का चित्र भी भाषा की सफलता का द्योतक है। हमीर कहता है —'मेरी तलवार प्यासी है चाचाजी! उसे नर-रक्त चाहिए! नर-रक्त! यह फागुन का महीना है, होली आनेवाली है। मेरा जी चाहता है कि एक बार जी भरकर रक्त की होली खेली जाय लेकिन मेरा तो हृदय फटा पडता है। मेरे पैर जमीन पर नही पडते, प्राणो मे ज्वालामुखी जल रहा है। हमीर विनाश की भैरव मूर्ति बनकर अपनी हुकार से भारत का प्रत्येक कोना कँपा देगा।' हमीर की महत्त्वाकाक्षा को चित्रित करनेवाली यह भाषा ओजगुण से पूर्ण है।

वीर हमीर का हृदय उत्साह और दृढता से परिपूर्ण है। वीरोल्लासमयी वाणी को मुखरित करनेवाली वेगवती भाषा देखिए —'जो अग्नि-पुत्र है, जिनकी माताएँ, पत्नियाँ और बहिने हँसते-हँसते आग मे जीवनाहुति चढा देती है, वे क्या आफतो से डरते है डरो मत! मीर! मेरे दिल मे जगह है और रणथभौर

के किले मे भी   तुम्हे गले लगाना फूलो का हार पहनना नही, काँटो पर सेज बिछाना है। देखता हूँ कौन रणथभौर की चट्टानो से अपना सर टकराने आता है।'

इस ओजमयी भाषा से केवल हमीर के वीर हृदय का ही पता नही चलता, बल्कि उसकी दृढता, उदाराशयता और शरणागत-वत्सलता तथा शौर्य का भी पता चलता है। ऐसी व्यजक भाषा प्रेमीजी ही लिख सकते है।

भावावेश की इस शैली मे प्रेमीजी काव्य की मधुर पुट देकर पात्रो के मन-मस्तिष्क का साक्षात्कार करा देते है। पात्रो की हृदय-मन्दाकिनी मे नीरस हृदय व्यक्ति भी स्नान कर सहज सुख का अनुभव करते है। 'उद्धार' मे हमीर की मा सुधीरा के भावुक हृदय का कवित्वपूर्ण चित्र देखिए —'प्रकृति तो मानव का दपरण है। मानव अपनी मनोभावनाओ को प्रकृति मे चित्रित पाता है। आज प्रभात की स्वर्ण-रश्मियो ने मुझे नवजागरण के लोक मे पहुँचा दिया है। जिस सत्य को मै रहस्य की घटाओ मे छिपाये रही हूँ वह आज प्रकट होने पर आतुर हो उठा है।' इसी प्रकार 'विषपान' की राजकुमारी कृष्णा भी रहस्मय भावुकतापूर्ण हृदय लिये कहती है —'हाँ, कृष्णा पागल हो गई है। वह मनुष्य से घृणा करती है। वह निर्जीव फूलो से बाते करती है। वह कोयल के अर्थहीन गीतो को सुनती है। वह आकाश के तारो से प्रेम करती है। वह ताल मे चन्द्र-किरणो का नृत्य देखती है।

तीखे व्यग्य और सहृदय कवित्व का स्वर्ण सयोग करने मे प्रेमीजी कुशल है। 'शपथ' की कचनी का कथोपकथन लीजिए —

'   यह तो बृहन्नला की भाँति नृत्य करता है, तुँबुरु की भाँति वीणा बजाता है, वाल्मीकि की भाँति छन्द-रचना करता है और पपीहे की तरह प्राणो की पुकार को गीतो मे भरता है। अत्यन्त कोमल प्राणी है यह, क्या वीर पुरुषो की तलवार चन्द्र-किरणो पर उठती है, कोमल कमलो को काटती है। अपने हाथो मे शक्ति है तो उस चट्टान का वक्षस्थल विदीर्ण करो जिसे मेरे गान की कोकिला, मेरे नृत्य के मयूर और मेरे रूप यौवन के राजहस अनुरागरजित नही कर सके।'

चुभती भाषा-शैली की छटा जितनी सामाजिक नाटको मे विकीर्ण हुई है, उतनी ऐतिहासिक नाटको मे नही। जहाँ भी इस प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग हुआ है, वहाँ कथोपकथन बडे ही चुस्त, तीखे और चुटीले है। 'सरक्षक' मे माधोसिह और दुर्गा के बीच वार्तालाप की भाषा का आनन्द लीजिए—

माधोसिह—राजकुमारी दुर्गा ?

दुर्गा—कौन माधोसिह ?

माधोसिह—केवल माधोसिह।

दुर्गा—नही तो क्या तुम्हे जंगली जानवर कहकर पुकारूँ ?

माधोसिह—राजकुमारी !

दुर्गा—क्यो दर्पण मे अपना भयानक मुँह देखकर क्रोधित हो उठे !'

चाहे ऐतिहासिक नाटक हो, चाहे सास्कृतिक और चाहे सामाजिक कही भी आलकारिक भाषा शैली का आश्रय प्रेमीजी ने नही लिया। बात को घुमा-फिराकर गूढ बनाकर कहना उन्हे रुचिकर नही, जो कुछ भी कहा है, स्पष्टत और सादगी के साथ। असल मे प्रेमीजी के पात्र किसी कल्पना-लोक मे भटकनेवाले व्यक्ति नही हैं, वे प्रेम की दुनिया मे भी प्रवेश करते है तो भी यथार्थ की भूमि पर पैर रखकर चलते है। ऐसी स्थिति मे अलकरण के लिए स्थान ही नही है। यदि कही आलकारिक भाषा के प्रयोग का अवसर आया भी तो छोटे-छोटे वाक्यो और सरलतम शब्द-योजना द्वारा ही भावाभिव्यक्ति का आश्रय लिया गया है। 'भग्न प्राचीर' मे भोजराज—तुम्हारी मधुर मुसकान मे 'तुम्हारी स्नेह भरी चितवन मे, तुम्हारे पास अमृत का अनन्त भडार है। मैं नित्य ही इस अमृत के सरोवर के किनारे बैठा-बैठा लौट जाता हूँ, मेरे भिखारी और प्यासे हृदय को तुम्हारी करुणा का एक कण भी कभी प्राप्त नही हुआ।'

यद्यपि प्रेमीजी के नाटको की भाषा मे ओज, प्रसाद, माधुर्य तीनो ही गुण वर्तमान है, किन्तु ओज की सत्ता सर्वोपरि है। उसका कारण है नाटको का युद्धप्रिय वातावरण। युद्ध का वातावरण प्रस्तुत करने के लिए और उसको अनुरजित करने के लिए लेखक ने प्राय सभी स्थानो पर ओजस्वी भाषा का प्रयोग किया है। प्रलय-कारी स्रोतस्विनी की भाँति भाषा उमडती चली जाती है। ऐसी स्थिति मे जैसा कि स्वाभाविक था, कथोपकथन भाषण या वक्तृता का रूप धारण कर गये है। 'रक्षा-बन्धन' मे कर्मवती की ओजमयी वाणी इस प्रकार सुन पडती है—'छि ! ऐसा कहना मेवाड के दिवगत बलि पथियो की अन्तिम रक्त-बूँदो का अपमान करना है, कभी किसी ने सुना कि मेवाड ने किसी के आगे झुककर सन्धि की प्रार्थना की थी ? तुम्हीने क्यो आज मेवाड के गौरव को मिट्टी मे मिलाने का निश्चय कर लिया है उठो, भूखे सिंह की तरह शत्रुओ पर टूट पडो, लडो और लडते-लडते मेवाड की मान-रक्षा करो, विजय और वीरगति दोनो श्रेयस्कर है। जो हाथ आ जाये उसीको गले लगाने के सिवा तुम्हे क्या करना है ? तुम राजपूत हो। क्षत्रिय हो, अग्निपुत्र हो, प्रलय और भूकम्प की भाँति अजेय हो, अनिवार्य हो। तुम्हारी हुकार से शत्रुओ की छाती टूक-टूक हो जायगी। उठो अब देर किस लिए ?'

जैसाकि पहले सकेत कर आये है व्यग्यात्मक शैली मे प्रेमीजी की लेखनी बहुत कुशल है। जहाँ भी प्रेमीजी व्यग्यपूर्ण भाषा-शैली का प्रयोग करते है, दिल चीर कर रख देते है। जहाँ-जहाँ भी सामाजिक रूढियो के प्रति जाति की कुप्रथाओ के प्रति, रोष का अवसर आया है, वहाँ उनकी लेखनी ने व्यग्य का ही आश्रय लिया है। 'छाया' और 'बन्धन' की भाषा-शैली तो प्राय व्यग्यात्मक ही कही जायगी। वैसे

'उद्धार', 'शपथ', 'शतरज के खिलाडी', 'प्रकाश-स्तम्भ' आदि मे भी व्यग्य के अच्छे तीखे छीटे देखने को मिलते है।

'बन्धन' मे लेखक ने वर्तमानकालीन शोषण के प्रति रोष प्रकट किया है। पूँजीपतियो की धन-लिप्सा के नग्न चित्र उतारे है। धन के लिए वे कितने घृणित हथियारो पर उतर आते है, यह सब भी बताया गया है। मानवता का किस प्रकार अपमान इन पूजीपतियो के हाथ होता है, इस पर करारी चोट की गई है। इस सबके लिए 'बन्धन' मे प्रकाश को माध्यम बनाया गया है। उसके मुख से निकला प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक शब्द एक तीखा व्यग्य-शर है।

मानव की सत्ता पूँजीपतियो के आगे कीट-पतग की भाँति है, इस मानवता का प्रचार प्रकाश मालती के आगे इस प्रकार करता है—

'आज बडा अच्छा जलसा हुआ बहन! पशुओ का शिकार तो मैं नित्य करता था, पर आज आदमियो का शिकार देखा। आदमी? ह ह ह आदमी! आदमी बनने से क्या लाभ? और यह बताओ, आदमी पशु नही तो क्या है? हमारे पिता! वह शरीफो के सिर मौर! वे कितने बडे पशु है?'

पूँजीपतियो ने विलास के साधन किस प्रकार के कार्य करके जुटाये है, नगरो का जीवन किस स्थिति मे व्यस्त माना जाता है आदि पर प्रकाश की करारी चोटे इस प्रकार है—

'काम तो बहुत हुआ। कई मजदूरो के सिर फटे। बहुत-सा कोलाहल हुआ। पुलिस आई, डाक्टर आये। शहर के नेता आये, सरकार के मैजिस्ट्रेट आये। इतना काम तो मिल मे पहले कभी नही देखा।' और भी—'हिसा करना ही मनुष्य की विजय है, देखती नही हो यह अपने विलास के साधन। सोने-चाँदी के बतन, सोफे-कौच, मोटर-बग्घी! ये सब क्या हैं? ये इन्सान की लाशे है। न जाने किस-किसको मारकर उनकी खाले हम जमा किये बैठे है।'

आज के कृत्रिम, आडम्बरयुक्त, स्वार्थी और अन्धकार मे दौड लगानेवाले मनुष्य के वास्तविक चित्र का उद्घाटन करते हुए प्रेमीजी बहुत ही कठोर हो उठते हैं। भाषा मे बहुत ही तीखापन आ जाता है। प्रकाश मालती से कहता है—'मालती' अन्धकार तो यह हमारी आँखो मे चमकनेवाला अभिमान है। अन्धकार तो हमारे प्राणो मे बोलनेवाली स्वार्थ की धडकन है, अन्धकार तो हमारे खून मे प्रवाहित होनेवाला लालच है। अरी पगली, हमारा घर तो उस जगल का एक पेड है, जिसमे सभी ओर से आग लगी हुई है। हमे चाहे दिखाई न देता हो, लेकिन हमारा अस्तित्व जलकर राख हुआ जा रहा है। मानव की पशुता ने शराब पी ली है। मनुष्य अपने ही शरीर के अगो को काट रहा है। पागल कुत्ते की तरह मनुष्य जीभ खोले घूम रहा है। जानवर बनकर आदमी खूबसूरत जान पडता है। यही

ठीक है, बहन ! मनुष्य का यही रूप वास्तविक है। मनुष्य जानवर था और उसे जानवर ही रहना चाहिए। वह कपडे फेककर नगा हो रहा है। ठीक रास्ते पर आ रहा है।'

'छाया' मे रजनीकान्त और माया की भाषा व्यग्यपूर्ण है। समाज के ठेकेदारो पर माया का व्यग्य देखिए—'पुण्य कमानेवाले रावी-स्नान को आते होगे, वे शहर के प्रतिष्ठित कवि के साथ एक बुरकेवाली को देखकर पाप की छाया देखेगे।'

आडम्बर के आवरण से लिपटे व्यक्ति पर व्यग्य कसता हुआ रजनीकन्त कहता है— आदमी रूपी जानवर जब अपनी वासना को कपडे पहनाता है तो मुझे हँसी आती है। उपकार, दया, सहानुभूति, प्रेम और ममता ऐसे न जाने कितने नाम इस वासना के आप लोग रखते है। किसी की याद आपको सोने नही देती, किसी की आँख आपको दिनभर काम नही करने देती, लेकिन आप लोगो मे इतना साहस भी नही कि अपनी इष्ट देवी से भी अपने हृदय की बात कह सके।'

क्योकि प्रेमीजी अपने नाटको मे आदर्शवाद को लेकर चले हैं, इसलिए कही-कही भावावेश मे आकर उनकी भाषा-शैली उपदेश का रूप धारण कर लेती है। साम्प्रदायिक एकता, राष्ट्र-प्रेम, बलिदान की भावना और सामाजिक आलोचना के प्रसगो मे उपदेशात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। 'प्रकाश-स्तम्भ' मे हारीत की भाषा उपदेश का रूप धारण कर लेती है। दूसरे अक के प्रथम दृश्य मे ज्वाला से बाते करते हुए हारीत के कथोपकथन किसी मच पर जनसम्प्रदाय के सामने खडे भाषण करते नेता के उपदेश जान पडते है। 'छाया' नाटक मे तो स्पष्ट ही उपदेश की भाषा अपनाई गई है। प्रकाश की पत्नी छाया का उपदेश सुनिए—'अन्धकार का चश्मा लगाए हुए सभ्य पुरुषो, जरा अपनी आँखो का इलाज कराओ। जिन्हे आप पाप का पेड कहते है, उनमे भी पुण्य के फल लगते है। पापी को हाथ पकडकर उठाना सीखो, उसके मुँह पर अपयश की कालिमा पोतकर नीचे गिराना नही।'

प्रेमीजी ने क्योकि ऐतिहासिक नाटक ही अधिक लिखे हैं, और ऐसे नाटको में इतिहास की घटनाओ का, पात्रो के चरित्र और जीवन से सम्बन्धित तथ्यो का उल्लेख भी करना होता है, अत शैली मे वर्णनात्मकता का आ जाना स्वाभाविक होता है। भाषा मे किसी गहन विचार की अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट साहित्यिक शब्द-योजना के स्थान पर सीधी सरल शब्दावली का सहारा लेना होता है। अत प्रेमीजी के नाटको मे वर्णनात्मक भाषा-शैली का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। कही-कही तो उनके पात्र इतिहासकारो की भाँति घटनाओ का, ऐतिहासिक भूलो का वर्णन करने ही बैठ जाते है।

'रक्षा-बधन' मे विक्रम चाँदखाँ से इतिहास का वर्णन इस प्रकार करता है—'इतिहास के कुछ ही वर्ष पहले के पृष्ठ उलटिये। महाराणा सग्रामसिहजी ने दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोधी को कितनी बार युद्ध मे पराजित किया था, पर जब वश पर सकट आया तो उन्ही राणा साँगा ने उसी इब्राहीम लोधी को कितनी बार

युद्ध मे पराजित किया था। पर जब लोधी वश पर सकट आया तो उन्ही राणा साँगा ने उसी इब्राहीम लोधी के पुत्र महमूद लोधी का साथ दिया, उसकी तरफ से बाबर से लडाई ली। मेवात के बादशाह हसनखाँ भी बयाना और सीकरी की लडाई मे उनके सहायक थे।' इत्यादि

'प्रकाश-स्तम्भ' मे हारीत के कथोपकथन भी वर्णनात्मक ही है। ज्वाला से राष्ट्र-भावना के लिए तर्क करता हुआ हारीत कहता है—' धम के नाम पर मगध के जैन धर्मावलम्बी राजा शालिशुक मौर्य ने, अहिसा के पुजारी शालिशुक ने जैन धर्म के नाम पर अपने साम्राज्य को लहूलुहान कर दिया। गुर्जर प्रदेश मे उसने अन्य मतावलम्बियो को बलात जैन धम ग्रहण करने को विवश किया, जिससे सम्पूर्ण प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। इसी का परिणाम था कि जब दिमित ने भारत पर आक्रमण किया तो जनता किकर्त्तव्य विमूढ हो बहुत समय तक निष्क्रिय एव निश्चेष्ट रही। कुछ धर्मान्धो ने विदेशी दिमित को 'धर्ममीत' कहकर पुकारा। शताब्दियो से भारत मे ये घटनाएँ दोहराई जा रही है। मगध के अशोक और उसके पश्चात् के सम्राट् बौद्ध या जैन हुए और अन्तिम सम्राट् विशेषरूप से ब्राह्मण-विरोधी हुए, तब ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने स्वामी का वधकर स्वय राजसत्ता हथिया ली। चक्र यही नही रुका। बौद्ध सघाराम षड्यत्र के केन्द्र बने और ब्राह्मण-राज्य को समाप्त करने के लिए विदेशी मिलिन्द को पुष्यमित्र पर आक्रमण करने के लिए बौद्धो ने उकसाया।"

'विदा', 'कीर्त्ति-स्तभ' और 'सवत्-प्रवर्तन' मे भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है। 'विदा' मे औरगजेब और दुर्गादास के कथोपकथनो मे वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। परन्तु इसके लिए लेखक को दोष नही दिया जा सकता। ऐतिहासिक तथ्यो का उद्घाटन करना उसके लिए आवश्यक था, क्योकि लेखक के सामने एक निश्चित उद्देश्य है। यदि बिना घटनाओ का वर्णन किये, बिना राजनैतिक ऐतिहासिक भूलो का चित्र प्रस्तुत किये अपने उद्देश्य तक पहुचा जाता तो शैली अधिक उपदेशात्मक बन जाती। वर्णनात्मक शैली से एक ओर जहाँ उपदेशात्मकता का दोष बच गया, वहाँ लेखक की रचनाओ को ऐतिहासिक प्रामाणिकता भी मिल गई। एक बात और, नाटकीय विधान की दृष्टि से भी वर्णनात्मकता अपेक्षित है। यदि समस्त कथा-वस्तु को दृश्य वस्तु के रूप मे ही प्रस्तुत किया जाये तो नाटक का कलेवर बढ जाता है, रगमचीयता पर भी आघात आता है, अत सूच्य-वस्तु का उपयोग करना होता है। सूच्य-वस्तु के उपयोग से भी वर्णनात्मकता आती है। कथानक की शृखला बनाये रखने के लिए, घटनाओ का पूर्वापर सम्बन्ध बनाए रखने के लिए वर्णनात्मकता का सहारा लेना ही पडता है।

सेना की विशालता, युद्ध की विभीषिका, हताहतो की सख्या, मोर्चेबदी की आयोजना आदि को प्रस्तुत करने के लिए वर्णनात्मक शैली का आश्रय लेने के अतिरिक्त

और कोई चारा भी नही है। 'भग्न प्राचीर' मे उस्ताद अलीकुलीखाँ मोर्चाबदी का वर्णन इस प्रकार करता है—'आप एक बार मोर्चेबन्दी देख लीजिए। सब अपनी आज्ञा के अनुसार हो गया या नही। सात सौ तोप एक पक्ति मे सामने की तरफ रख दी गई है। उन्हे चमडे के रस्से से आपस मे बाँध दिया गया है। एक-एक बडी ढाल हर तोप के साथ तोपचियो के लिए लगा दी गई है। तोपो के बीच मे जो जगह है, उसमे चार-चार बडी ढाले रखी गई है, जिनके पीछे हमारे तोरन्दाज़ खडे होगे।' इससे युद्ध का पूरा वातावरण भी आँखो के आगे नाचने लगता है।

'ममता' नाटक मे भी सूच्य वस्तु का आधार लेकर वर्णनात्मक शैली रखी गई है। यशपाल खून के मामले मे किस प्रकार फँसा, इसे वह अपने मुँह से बतलाता है। घटना घटती दिखाने मे नाटक के विस्तार का भय था। घटना-चक्र की उलझन भी बढ जाती। यही स्थिति लता की है, वह भी, किस प्रकार चाची और विनोद के चँगुल मे फसती गई, सभी घटनाएँ रजनीकान्त को अपने मुख से सुनाती है। अन्त मे मुशीजी से रजनीकान्त भी लता के अपहरण की घटना का वर्णन ही करता है। रगमचोपयोगी नाटक के सक्षिप्त कलेवर मे वर्णनात्मकता का आश्रय लेखक को लेना ही पडता है।

जो भी हो। चाहे लेखक ने भावावेश की शैली का प्रयोग किया है, चाहे समास-शैली का और चाहे व्यास-शैली का, चाहे व्यग्यात्मक शैली अपनाई है, चाहे वर्णनात्मक, एक बात तो स्पष्ट ही है कि भाषा को अधिकाधिक लोकसामान्य बनाने के प्रयत्न किये है। सरलता ही प्रेमीजी की भाषा का गुण है। वे अपने पात्रो की भाँति ही भाषा को भी जनसाधारण से परिचित रखना चाहते है। अत अपरिचित शब्दावली का प्रयोग करते ही नही। भाषा को मुहावरो और लोकोक्तियो से सजाकर और भी लोक-सामान्य बना देते है। स्वय ही वे ऐसे सरल और छोटे वाक्य लिखते हैं कि वे वाक्य लोकोक्ति या मुहावरा बन सकते है। 'रक्षाबन्धन' मे धनदास और मौजीराम के वार्तालाप के बीच लोकोक्ति और मुहावरे का प्रयोग जान डाल देता है —

'**धनदास**—बूडा वश कबीर का उपजा पूत कमाल। तू मेरी और वश की लुटिया ज़रूर डुबायेगा। इस सज्जनता की हवा लगते ही तिजोरियो का सारा धन हवा हो जाता है।' इत्यादि 'भग्न-प्राचीर' और 'कीर्त्ति-स्तभ' मे तो मुहावरो का खुला प्रयोग हुआ है। 'लोहे से लोहा बजना,' 'मेढकी को जुकाम होना', 'सावन के अन्धे को हरा ही हरा दीखना', 'आ बैल मुझे मार', 'आग बबूला हो जाना', 'दाता दान दे और भडारी का पेट फटे', 'चमडी जाये पर दमडी न जाये' आदि प्रयोग पग-पग पर मिल जाते है।

सरलता के साथ साहित्यिक स्तर को बनाये रखना प्रेमीजी का भाषा पर अधिकार सिद्ध करता है। जहाँ उर्दू की शब्दावली है वहाँ उर्दू भाषा का सुन्दर

दो-चार वर्षों मे जो नाटक उन्होने लिखे उनमे भाषा की दुविधा मिटा दी और सर्वत्र, सब पात्रो के द्वारा, एक रस भाषा का ही प्रयोग किया कराया। 'विदा' नाटक की भाषा को प्रेमीजी के मन की स्टैंडर्ड भापा कहा जा सकता है।

'विदा' का औरगज़ेब पहले नाटको के औरगज़ेब से सर्वथा भिन्न भाषा बोलता है—'तुम पशु-पक्षी और बेजान चीजो से मनुष्य के स्वभाव की तुलना करती हो। पशु-पक्षी बुद्धिहीन है। उनका स्वभाव सदा एकसा रहता है। वे सारे काम नियम के अनुसार एक ही ढर्रे पर करते रहते है। पाप और पुण्य, स्वर्ग और नरक आदि से उनका कोई परिचय नही। वह यह नही जानते कि खुदा कौन है और उसके पाक पैगम्बर ने क्या आज्ञाएँ दी है, लेकिन इन्सान तो इन्सान है और वह मस्तिष्क रखता है। वह खुदाई हिदायतो को समझता है, उसके अपने धर्म और समाज के प्रति कुछ उत्तरदायित्व है, उसका प्रत्येक कार्य अनुशासन से बँधा होना चाहिए।' इस नाटक की ज़ेबुन्निसा भी अन्य नाटको की ज़ेबुन्निसा से भिन्न किन्तु उक्त उदाहरण से मिलती भाषा बोलती है। अकबर, कासिमखाँ, दिलेरखाँ, उदयपुरी बेगम आदि भी इसी भाषा से परिचित है ? यह तो रही मुस्लिम पात्रो की बात, हिन्दू पात्र दुर्गादास, समरदास, रघुनाथ भट्टी आदि भी इसी भाषा को अपनाते हैं।

दुर्गादास की भाषा का नमूना देखिए—'डूबते डूबते भी सूर्य अपना विकराल रूप प्रदर्शित करता है। औरगज़ेब का भी वही हाल है, शाहज़ादा हुज़ूर ! अस्तगत सूर्य ने आकाश मे छाई हुई बादलो की टुकडियो को रक्त के रग मे रग दिया है। इन रक्तवर्णी मेघ-मालाओ की छाया पडने से ताप्ती की धारा भी लाल हो उठी है। औरगज़ेब के दुराग्रह ने हिन्दुस्तान की धरती को भी रक्त से भर रखा है। आज भले ही वह समझते हो कि उन्हे प्रत्येक दिशा मे विजय प्राप्त हुई है, किन्तु प्रत्येक दूरदर्शी व्यक्ति समझ सकता है कि उनकी यह विजय अस्थायी है, दीपक की अन्तिम चमक है। जिस दिन से उन्होने जज़िया का दड हिन्दुओ पर लगाया है, उसी दिन से देश के प्रत्येक कोने मे विद्रोह की भावनाएँ प्रज्वलित हो उठी है।'

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमीजी भाषा के सम्बन्ध मे भी अपने विचारो की भाति ही सीधी रेखा मे चलना पसन्द करते है। उनका यह सिद्धान्त ही उनकी भाषा को अधिक नाटकोचित और सर्वजन सुलभ तथा लोकप्रिय बना सका है। वास्तव मे प्रेमीजी के नाटको की भाषा अधिक नाटकोचित, भावमयी, स्पष्ट, चुस्त, प्रभावशाली और स्वच्छ है। ऐसी निर्दोष और भली भाषा कम लेखक लिख पाते है। ऐतिहासिक नाटक-लेखक अपनी भाषा मे स्थानीय पुट देकर उसे सर्वजन सुलभ नही रहने देते। प्रेमीजी स्थानीय बोलियो, विभाषाओ आदि के शब्दो के मिश्रण से भाषा का रूप नही बिगाडते। देश-काल के नाम पर जो ऐसा करते है, वे समस्त

राष्ट्र की रूपरेखा सामने रखकर नही चलते। भाषा की एकरूपता का निर्वाह भी वे नही कर पाते। प्रेमीजी ने अपनी भाषा को राष्ट्रभाषा का रूप दिया है, राष्ट्र के लिए जैसे उनके नाटको की उपयोगिता है, वैसे ही उनकी भाषा भी उपयोगी सिद्ध होगी।

भाषा की व्यापकता पर उनका आग्रह बराबर बना रहता है। व्यापकता के कारण ही वे लोक-प्रिय भाषा के सफल लेखक है। 'साँपो की सृष्टि' की भूमिका मे वे लिखते है —

'मै समझता हूँ—राष्ट्र-भाषा के पद पर आरूढ हिन्दी न केवल उर्दू के शब्दो को ग्रहण करेगी, बल्कि प्रान्तीय भाषाओ के शब्दो को भी। इस प्रकार हिन्दी का भडार भी बढेगा, उसमे प्रवाह भी आयेगा और वह लोक-प्रिय भी होगी।'

ग्यारह

प्रेमीजी के नाटक में शास्त्रीय पक्ष

काव्य आनन्दमय है। ज्ञानेन्द्रियो के माध्यम से ही काव्य के रस का हम पान करते है। ज्ञानेन्द्रियो के समस्त व्यापार-द्वारा ही आनन्द की प्राप्ति होती है, किन्तु व्यापार-क्षेत्र मे अपनी-अपनी प्रधानता के कारण काव्य का नाम दृश्यकाव्य, श्रव्य-काव्य आदि रखा जाता है। न दृश्यकाव्य केवल आँखो का विषय है और न श्रव्य-काव्य केवल कानो का। श्रव्यकाव्य को पढने या सुनने के समय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नही पडता कि अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ किस भाँति वहाँ अपना कार्य करती हैं, किन्तु हम अनुभव करते है कि जब किसी काव्य को कानो से सुन लेते है तब उसके साथ ही या उसके बाद कल्पना-जगत् मे काव्यगत भाव-चित्र का एक बिब उपस्थित हो जाता है जिसे सूक्ष्म आँखो से ही देखा जाता है, अन्य सूक्ष्म इन्द्रियो का व्यापार और भी सूक्ष्म रूप मे उसके साथ होने लगता है, जिसके फलस्वरूप वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होती है। किन्तु दृश्यकाव्य स्थूल इन्द्रियो के द्वारा भी रस-स्निग्ध करता है।

इस प्रकार दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य विशेष इन्द्रियो के भिन्न व्यापार-प्रधान विषय है। श्रव्यकाव्य मे जीवन के सम्पूर्ण विधानात्मक व्यापारो को केवल शब्द-द्वारा और दृश्यकाव्य मे शब्द के साथ-साथ व्यापार, क्रिया-द्वारा जीवन को अभिव्यक्त किया जाता है। दृश्यकाव्य मे श्रव्यकाव्य की विशेषता बराबर बनी रहती है, किन्तु श्रव्यकाव्य मे दृश्यकाव्य की नही। इससे स्पष्ट है कि दृश्यकाव्य मे श्रव्यकाव्य के भी गुण-धर्म वर्तमान है और अपने भी। दोनो प्रकार के काव्य-गुणो का ध्यान रखते हुए ही दृश्यकाव्य के तत्त्वो का विवेचन होना चाहिए।

काव्यत्व और रगमच के निरूपण और निर्वाह के लिए नाटकीय तत्त्व के विभिन्न अग निर्धारित किये गये है। भारतीय आचार्यों ने नाटक के तीन तत्त्व माने है—वस्तु, नायक और रस। केवल इन तीन को लेकर नाटकीय तत्त्वो की समग्रता प्रतिपादित नही होती। नाटक का उद्देश्य केवल मनोरजन नही है। नाटकीय व्यापार से यदि जीवनोपयोगी कोई महत्त्वपूर्ण शिक्षा नही मिलती तो उसका सम्पूर्ण प्रयत्न व्यर्थ समझना चाहिए। किसी वास्तविक या काल्पनिक कथानक के आधार पर अभिनेता पात्रो के आचरण और वार्तालाप द्वारा निश्चित समय और स्थान के अनुसार निर्धारित ढग से जो किसी निर्दिष्ट कार्य की परिणति दिखलाई जाती है, वही नाटक का मुख्य व्यापार है। इसके लिए वस्तु, नायक और रस का सयोग तब तक असभव है जब तक विषय-प्रतिपादन की निर्धारित प्रणाली न हो, न यह तब तक भी सभव है, जब

तक घटनाओ और कथावस्तु के विस्तार मे देशकाल का सयोजन न हो। इन बातो का ध्यान रखकर पाश्चात्य विद्वानो ने नाटक के छ तत्त्व माने है—कथा-वस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल, उद्देश्य और शैली। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानो के मतो का समन्वय करे तो नाटक के तत्त्व इस प्रकार स्वीकार किये जाने चाहिएँ—१ कथा-वस्तु, २ पात्र और चरित्रचित्रण, ३ कथोपकथन, ४ देशकाल, ५ उद्देश्य, ६ रस, ७ शैली। प्रेमीजी के नाटको के शास्त्रीय पक्ष की पडताल इन्ही तत्त्वो की दृष्टि से की जानी चाहिए।

१ **कथावस्तु**—जिस कथानक के आधार पर कलात्मक ढग से घटनाओ की योजना की जाती है, जिनको अभिनेता प्रत्यक्ष मे दिखाते हुए किसी विशेष अभि-प्राय की ओर निर्देश करते है, वही नाटक की वस्तु है। रसोत्पत्ति के लिए घटना का आधार सत्य होना चाहिए। ऐतिहासिक सत्य न भी हो तो भी काव्यगत सत्य अनिवार्य है। यदि सम्पूर्ण कलात्मकता के क्षेत्र मे भी दर्शक का ऐसा भाव बना रहा कि घटनाओ का प्रदर्शन काल्पनिक आधार पर होने के कारण उनकी निश्चयात्मकता मे सदेह है, तो रसोत्पत्ति मे बाधा उपस्थित होगी। वस्तु-निर्वाचन और उसके निरूपण मे इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि लोक-रक्षा और लोक मगल का मार्ग प्रशस्त हो। प्रेमी जी ने कथानक के चुनाव मे बराबर इन बातो का ध्यान रखा है। उनके अधिकाश नाटक ऐतिहासिक है। अत सत्य पर आधारित है और लेखक की कला द्वारा सत्य का उद्-घाटन भी करते है। घटनाक्रम मे भी निश्चयात्मकत्व है, असभावित या अस्वाभाविकता के लिए वहाँ स्थान ही नही है। लोक रक्षा और लोकमगल की भावना से प्रेरित होकर ही प्रेमीजी ने ऐतिहासिक नाटक लिखे है। सामाजिक नाटको मे भी वर्तमान जीवन का चित्रण कर उक्त भावना की रक्षा की गई है। आपके नाटको की कथा-वस्तु मे अतीत के प्रति अनुराग, देश-प्रेम की भावना, हिंदू-मुस्लिम एकता या साम्प्रदायिक एकता की आवश्यकता आदि पर बल दिया गया है।

प्रेमीजी एक जागरूक साहित्यकार है। जागरूक साहित्यकार सत्य की अभि-व्यक्ति के लिए इतिहास का आश्रय लेता है, क्योकि ऐतिहासिक कथानक इस लोक के पात्रो-द्वारा, सत्य की अभिव्यक्ति दिखाकर उसके सजीव, स्वाभाविक, विश्वसनीय एव व्यावहारिक रूप को सिद्ध करता है। इतिहास के सम्मिश्रण से साहित्य की कल्पना और अनुभूति इसी लोक की बन जाती है। ऐतिहासिक कथानक एवम् पात्र साहित्य-सिद्ध आदर्शों को सजीवता प्रदान करते है, साहित्यिक कल्पनाओ मे यथार्थ की चेतना भर देते है। प्रेमीजी के कथानको मे ऐतिहासिक तथ्य भी है और काव्यगत सत्य भी, आरम्भिक अध्यायो मे विस्तार से हम इस विषय पर प्रकाश डाल चुके है।

प्रेमीजी के दर्जनो ऐतिहासिक नाटक सत्य का उद्घाटन करते हुए अपनी नैतिकता और आदर्शवादिता के द्वारा लोकरक्षा और लोकमगल की भावना को पूरा

करते है । विषपान की भूमिका मे आपने लिखा है —'यथार्थवाद के नाम पर समाज के गन्दे अगो का चित्र खीच देना मेरे साहित्य का उद्देश्य नही है मैं यह चाहता हूँ कि मेरे देशवासी स्वस्थ विचारवाले, स्वाभिमानी, स्वाधीन-चेत्ता, वीर, पराक्रमी, सयमी, सदय और ईमानदार हो ।'

प्रेमीजी ने अपनी कथावस्तु को केवल मनोरजन का साधन नही बनाया है, समाज-सस्कार को वे साहित्य का उद्देश्य मानते हैं —'यदि साहित्य श्रेष्ठ विचार नही देता, केवल मनोरजन की भूख मिटाता है, तो उसकी सेवाओ का अधिक मूल्य नहीं है । साहित्यिक की लेखनी की रेखाओ से युग का निर्माण होता है । साहित्य द्वारा समाज के सस्कार बनते है ।'

वस्तुत 'प्रेमीजी के नाटको मे आदर्शवाद को मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है । युग के नैतिकतामय जीवन का चित्रण उन्होने अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया है । उनके प्रत्येक नाटक मे आदर्शवाद के स्वर प्रमुख रहे हैं और प्राय उनके किसी न-किसी पात्र ने घटनाओ को आदर्श प्रेरित रखने मे मुख्य योग प्रदान किया है । इस आदर्शवादिता की योजना के लिए उन्होने मनोविज्ञान और आचार शास्त्र का व्यापक आधार लिया है । उनके नाटको के कथानको मे साधारणीकरण के गुण की भी उपयुक्त व्याप्ति हुई है । अत उनका अध्ययन करने पर अध्येता का चित्र स्वभावत आदर्श ग्रहण की प्रेरणा का अनुभव करने लगता है । अपनी आदर्शवादी मनोवृत्ति के कारण ही उन्होने आधुनिक युग मे समाज-साम्य की स्थापना करने से सम्बन्धित विविध विचार-प्रणालियो को ग्रहण करने पर भी अतीतकाल के भारतवर्ष की उपलब्धियो की उपेक्षा न करने का सदेश दिया है । वह आधुनिक युग मे भौतिकता के प्राधान्य के कारण उभरनेवाली समस्याओ के निदान के लिए प्राचीन आदर्शों से सहयोग लेने का परामर्श देते है ।'[1]

साम्प्रदायिक एकता राष्ट्रभावना, सगठन, त्याग और बलिदान, मानवता का सरक्षण आदि भावनाएँ लेखक की लोकमगल की ही भावनाएँ हैं , जिनका प्रतिपादन प्रेमीजी के नाटको की कथावस्तु द्वारा किया गया है । 'रक्षा-बन्धन', 'शिवा-साधना', 'विषपान', 'स्वप्नभग', 'प्रतिशोध', 'शतरज के खिलाडी', 'आहुति', 'कीर्ति स्तभ' आदि नाटको मे एकता, सगठन आदि का ही जयघोष सुनाई पडता है । 'उद्धार' की भूमिका मे आपने बताया है कि नाटक की कथावस्तु राष्ट्रीयता की भावनाओ को बल देती है — उद्धार की घटनाएँ ऐतिहासिक है, किन्तु वतमान राजनीति और समाजनीति की अनेक उलझनो का समाधान इसमे है । मेरा देश स्वतत्र हो गया, किन्तु देशवासियो ने अपनी राष्ट्रीयता के महत्त्व को समझा नही, इसलिए राष्ट्रीयता की भावनाओ को उत्साहित करनेवाले साहित्य की आज आवश्यकता है ।'

---

१. सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ७५५

'स्वप्न-भग' के द्वारा लेखक मनुष्य का सस्कार कर उसकी नैतिकता को ऊँचा उठाना चाहता है। भूमिका मे अपनी भावना इस प्रकार व्यक्त की है —' धर्म जाति, सम्प्रदाय, देश और सामाजिक एव राजनैतिक विचारधाराएँ और इसी प्रकार की अनेक बाते मानव को मानव का शत्रु बनाए हुए है। सबकी जड मे व्यक्ति का स्वाथ है। जब व्यक्तियो के सस्कार सुधरेगे, वह स्वाथ से छुटकारा पाकर दूसरे के हित के लिए त्याग करने मे आनन्द पाएँगे, तब ससार स्वर्ग बन जायेगा।' 'सरक्षक', 'सवत्-प्रवतन' आदि की रचना भी इसी उद्देश्य से हुई है।

कथावस्तु को रोचक, प्रभावशाली और स्वाभाविक बनाने के लिए पाश्चात्य विद्वान् विरोध और सघर्ष को कथावस्तु का प्राण मानते है। किन्तु भारतीय दृष्टि उद्योग और सफलता के महत्त्व को प्रतिपादित करती है। प्रेमीजी की कथावस्तु दोनो का ऋण स्वीकार करके चली है। प्रेमीजी इस बात को मानते है कि दो विरोधी शक्तियो के पारस्परिक विग्रह ही मे नाटकीय कथावस्तु की उत्पत्ति होती है। आपके नाटक दो विरोधी भाव, पक्ष, सिद्धान्त या दल लेकर चले है और इन्ही दोनो के विरोध के साथ कथावस्तु का विकास हुआ है।

'पाताल-विजय' आपका पौराणिक नाटक है। इसमे पुण्य और पाप का सघर्ष दिखाया गया है। पाताल के दुरात्मा राजा, पातालकेतु और महात्माप्रकृति के अयोध्या के राजकुमार के रूप मे सच्चे वीर और दुष्ट बलवान का विरोध है। ऐतिहासिक नाटक 'रक्षा बन्धन' मे मेवाड का महाराणा विक्रमादित्य आप ही अपने तामस भावो का दमन करता है। 'स्वप्न-भग' का वीर दारा मानवता की चरमसीमा का पालन करता हुआ भी दुर्भाग्य अथवा विकट परिस्थितियो का सामना करता है। इस नाटक के प्रथम दृश्य मे नाटककार ने बडे कौशल से औरगजेब की क्रूरता, असयम और विद्रोह का चित्रण, रोशनआरा की षड्यन्त्रप्रियता और दुष्टता का चित्रण इस प्रकार किया है — 'उसमे आकर्षण है, जलन है, तेज है, वेग है और है ओज। वह निर्माण की कल्याणमयी मूर्ति नही, विध्वस की तडित् रेखा है।' औरगजेब की क्रूरता और विद्रोह, रोशनआरा के षड्यत्र और दारा, शाहजहाँ और जहाँनारा की शातिप्रियता और सरलता के बीच जो सघर्ष चल रहा है, वही 'स्वप्नभग' की कथावस्तु मे व्यक्त हुआ है।

'शिवा-साधना' मे भी द्वन्द्व और सघष का अद्भुत चित्रण है। शिवाजी के भीतर स्वातत्र्य-साधन का द्वन्द्व चल रहा है। शिवाजी के पिता का बीजापुर सुल्तान आदिलशाह द्वारा बन्दी होना, शिवाजी की यवनो से लोहा लेने की दुर्बलता और उनकी माता जीजाबाई का सकल्प आदि बाते इस द्वन्द्व को और भी बढा देती है। नाटक की कथा-वस्तु विकसित ही इस प्रकार होती है कि यह सघर्ष और द्वन्द्व बढता चला जाता है। सघर्ष की क्रिया प्रतिक्रियाएँ विविध-घटनाओ और प्रसगो के रूप मे दिखाई पडती है।

'विषपान' मे भी ईर्ष्या, द्वेष और षड्यन्त्रो का द्वन्द्व चित्रित है। 'कीर्ति-स्तम्भ' मे मेवाड की अन्त कलह का चित्रण है, 'उद्धार' मे लम्पटता और स्वार्थ का सघर्ष, राजनीति और समाजनीति से उत्पन्न मानव हृदय का द्वन्द्व दिखाया गया है। प्रेमीजी के सभी नाटक इसी प्रकार के द्वन्द्वो को लेकर चले है।

जहाँ एक ओर उनकी कथावस्तु इस प्रकार पाश्चात्य विचारधारा का ऋण लेती है, वहाँ भारतीय उद्योग और सफलता के सिद्धान्त से भी अनुप्राणित है। 'शिवा-साधना' मे शिवाजी उद्योग और सफलता के प्रतीक है। वे अपनी सफलता के लिए भवानी से आशीर्वाद माँगते है —'माँ भवानी, इस उज्ज्वल आकाश की आग को अपने आशीर्वाद से तीव्र करदो। बल दो, साहस दो और वह अदम्य पागलपन दो, जिससे स्वातन्त्र्य साधना मे केवल सासारिक सुखो की ही नही, बल्कि प्राणो की आहुति भी दे सकूँ।' रामदास उसके प्रेरक है, माता का आशीष उसके साथ है, इसलिए सफलता मिलने पर माता उससे कहती है —'तुमने जो किया है, वह किसी दूसरे के लिए सभव न था।'

'शपथ' का विष्णुवर्धन भी उद्योग और सफलता का उदाहरण है। इन्ही गुणो के कारण वह जन नायक बन पाया। विष्णुवर्धन का गान इन शब्दो मे हुआ है—'जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधर्मन ने उन प्रदेशो को जीता, जिन पर गुप्त-सम्राटो का आधिपत्य नही था और न ही जहाँ राजाओ के मुकुट को परास्त करनेवाली हूणो की आज्ञा ही प्रवेश कर पाई थी। लौहित्य से लेकर महेन्द्र पर्वत तक और गगा से—स्पष्ट हिमालय से—लेकर पश्चिम पयोधि तक के प्रदेशो के सामत उसके चरणो पर लोटे। मिहिरकुल ने भी, जिसने भगवान् शिव के अतिरिक्त और किसी के सामने सिर नही नवाया, अपने मुकुट-पुष्पो के द्वारा उसके युगल चरणो की अर्चना की।'

'उद्धार' के जन-नायक हमीर की भी यही गाथा है। 'प्रतिशोध' मे भी छत्रसाल के माध्यम से उद्योग और सफलता का प्रतिपादन किया गया है। छत्रसाल के पिता चपतराय का जीवन जितना सघर्षमय, जितना कष्टमय और जितना तेजस्वी रहा है, उतना वीरतम जातियों के इतिहास मे थोडे ही व्यक्तियो मे मिलेगा। उनके मरने के बाद अनाथ, दरिद्र, दाने-दाने को मोहताज, अल्पवयस्क छत्रसाल किस प्रकार केवल अपने वश के पूर्व गौरव को प्राप्त करने मे ही नही, बल्कि बुदेलखड से मुगल साम्राज्य की सत्ता को निर्वासित करने मे सफल हुए, यह लगन, कष्ट-सहन और साहस का उच्चतम उदाहरण है। यही छत्रसाल 'प्रतिशोध' की कथावस्तु का केन्द्र है। 'सवत् प्रवर्तन' मे विक्रमादित्य की भी यही कहानी है। उसने अपने उद्योग से ही देश से शको को खदेडा। इस प्रकार प्रेमीजी ने अपने नाटको की कथावस्तु को रोचक, स्वाभाविक और प्रभावशाली तो बनाया ही है, उसे सोद्देश्य भी रखा है।

ऐतिहासिक नाटक ही नही, सामाजिक नाटको मे भी प्रेमीजी ने कथावस्तु का यही रूप रखा है । 'छाया' मे एक ओर जहा प्रेम का द्वन्द्व है, वहाँ दूसरी ओर शोषक और शोषित का सघर्ष भी है । नाटक की नायिका छाया उद्योग और सफलता का ही आदर्श प्रस्तुत करती है । 'बन्धन' मे भी मालिक-मजदूर, स्वार्थ और त्याग का सघर्ष है । मोहन, सरला और मालती उद्योग और सफलता के प्रतीक है । 'ममता' व्यक्तिगत द्वन्द्व की कहानी है । यहाँ यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि 'ममता' का दृष्टिकोण यथार्थवादी है, अत उद्योग और सफलता के प्रति इसमे वह आग्रह नही है जो पूर्व के नाटको मे ।

नाटक क्योकि जीवन का प्रतिबिम्ब है, अत जीवन की भाँति नाटक मे भी नायक आदि पात्रो की स्थिति व्यक्तिगत और निर्वैयक्तिक होती है । जहाँ पात्र वैयक्तिक जीवन लेकर चला है, वहाँ उसे अन्य के सहयोग की आवश्यकता नही है । किन्तु निर्वैयक्तिक जीवन की साधना मे अन्य लोगो का सहयोग सर्वथा उपेक्षित रहता आया है । इसी बात को ध्यान मे रखकर नाटकीय कथावस्तु के दो रूप कर दिये गये है—आधिकारिक और प्रासगिक । सम्पूर्ण जीवन को लेकर चलनेवाली कथा-वस्तु आधिकारिक है और प्रसगवश बीच-बीच मे आकर आधिकारिक वस्तु की पूर्णता का प्रतिपादन करनेवाली वस्तु प्रासगिक है । सब नाटको मे दोनो ही प्रकार की कथावस्तु रहे, यह कोई जरूरी नही है । प्रेमीजी ने कही इसे अनिवायता दी है, कही नही । ऐतिहासक नाटको मे तो प्राय प्रासगिक कथावस्तु ले ली गई है । मूल कथा के साथ अनेक उपकथाएँ तक चलती है । फिर भी प्रसादजी के नाटको की भाँति कथाओ का कोलाहल प्रेमीजी के नाटको मे नही मिलेगा ।

'रक्षाबन्धन' मे अनेक कथाएँ है । एक ओर राजपूत अपनी शरण मे आये हुए की रक्षा के लिए बहादुरशाह से लडाई ठानते है, दूसरी ओर हुमायूँ और शेरखाँ का युद्ध, हुमायूँ के भाइयो का षड्यत्र, तीसरी ओर श्यामा और उसके पुत्र विजयसिंह की कथा और भीलपरिवार से सलग्न घटनाएँ । किन्तु लेखक ने बडे कौशल से इन सबको एक सूत्र मे पिरोया है ।

✓ 'शिवासधना' मे भी उपकथाएँ चलती है । एक ओर शिवाजी का बीजापुर नरेश से सघर्ष है और दूसरी ओर बीजापुर के सुलतान आदिलशाह के दुश्मन औरग-ज़ेब का बीजापुर को विध्वस्त करने का प्रयत्न, शिवाजी का षड्यत्र और इससे सम्बन्धित अनेक उपकथाएँ है । सिंहगढ को जीतने और शिवाजी के राजतिलक की कथा का नाटक से आशिक सम्बन्ध ही है । 'रक्षा बन्धन' की अपेक्षा इसकी कथा-वस्तु अधिक दुर्बल है ।

इन नाटको के बाद जो ऐतिहासिक नाटक लिखे गए, उनमे उपकथाओ को कम करने की प्रवृत्ति पाई जाती है । 'कीर्ति स्तम्भ' मे कुछ अधिक उपकथाएँ है, किन्तु

अनावश्यक कोई नही हे। प्राय सभी नाटको मे वे ही प्रासगिक कथाएँ ली गई है जिनका मुख्य कथा के विकास मे योग रहा है। 'स्वप्नभग', 'विदा', 'सरक्षक' और 'सवत्-प्रवर्तन' मे प्रासगिक वस्तु के प्रति आग्रह सर्वथा कम हो गया है। सामाजिक नाटको मे तो यह सावधानी बरती गई है कि केवल वही प्रसग रखे गये हे, जो कथावस्तु के उद्देश्य मे सहायक है, अन्य नही। 'छाया' मे माया और ज्योत्स्ना की उपकथाएँ है, किन्तु वे सामाजिक चित्र प्रस्तुत करने और छाया के जीवन मे सहयोग देने के लिए ही है, जो कि प्रकाश के जीवन से जुडी है। 'बन्धन' मे तो प्रामगिक कथावस्तु सर्वथा विलुप्त है। 'ममता' मे यशपाल की कहानी उपकथा के रूप मे है, किन्तु आगे चलकर वह भी मुख्य कथा के विकास मे मिल जाती है।

आधिकारिक कथावस्तु हो, चाहे प्रासगिक, नाटकीय व्यापार की उद्दीप्ति अपेक्षित हे। वस्तु-विन्यास मे 'अथ प्रकृति', 'अवस्था', 'सधि' आदि का जो विधान है वह नाटकीय व्यापार को उद्दीप्त करने मे बडा सहायक होता है। नाटको मे इनकी योजना मान्य तो होनी चाहिये, किन्तु इनकी उलझन को लेकर चलने से नाटक मनोरजन के स्थान पर मस्तिष्क के व्यायाम का कारण बन जाता है और इसके साथ ही पाठको या दर्शको के लिए शिरोवेदना का कारण भी। प्रसादजी के नाटको मे प्राचीन नियमो का यथातथ्य पालन हुआ है, इसीलिए वे सामान्यजन से दूर की वस्तु है। नाटक तो सामाजिक वस्तु है। उसे सामान्यजन का ध्यान रखकर ही लिखना होगा। प्रेमीजी ने इस झमेले से दूर ही रहना अच्छा समझा है। उसका कारण शायद दृष्टिकोण का अन्तर भी है। प्राचीन भारतीय नाटक धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिए लिखे जाते थे, जबकि प्रेमीजी ने अपने नाटको की रचना वर्तमान लक्ष्य की पूर्ति के लिए की है।

भारतीय आचार्यो के अनुसार नायक के मन मे किसी प्रकार का 'फल' प्राप्त करने की उत्कठा होती है और इसी उत्कठा से नाटक का आरभ होता है। फल की प्राप्ति के लिए प्रयत्न होता है, और उसकी प्राप्ति की आशा होती है। यही 'प्राप्त्याशा' है। फल की प्राप्ति का निश्चय होना 'नियताप्ति' है और फल की प्राप्ति 'फलागम' है। इन पाच अवस्थाओ की सिद्धि पाँच चमत्कारपूर्ण अर्थप्रकृतियो से होती है — बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। अवस्थाओ और अर्थप्रकृतियो मे मेल कराने का कार्य पॉच सन्धियो-द्वारा होता है—मुख, प्रतिमुख, गभ, विमर्श, निर्वहण। परन्तु प्रेमीजी ने इनका अनुगमन न करके आधुनिक पाश्चात्य कार्यावस्थाओ की ओर ही झुकाव रखा है, वह भी ऐतिहासिक नाटको मे। सभी नाटको मे उनका भी आग्रह नही है।

पाश्चात्य आचार्यो के मतानुसार कथावस्तु की पाँच अवस्थाएँ है —प्रारभ, विकास, चरम सीमा, उतार और अन्त। सन्धि और अर्थप्रकृति के लिए वहाँ स्थान नही है। प्रेमीजी के कुछ नाटको मे इन अवस्थाओ का निर्वाह हुआ है। प्रारम्भ मे कुछ सघर्षमयी घटना का आरम्भ होता है, यह सघर्ष या विरोध दो विभिन्न आदर्शों,

उद्देश्यो, दलो, सिद्धान्तो आदि किसी का भी हो सकता है। विकास मे पारस्परिक विरोधी घटनाओ के घटित होने से बृद्धि होती है। पात्रो अथवा आदर्शो का सघर्ष एक निश्चित सीमा तक बढ जाता है। चरमसीमा मे किसी एक पक्ष की विजय के लक्षण दिखाई देने लगते है। उतार मे यह विजय निश्चित हो जाती है और अन्त मे सम्पूर्ण सघर्ष का अन्त हो जाता है।

'रक्षा-बन्धन' मे काय की अवस्थाओ का यही क्रम रखा गया है। चाँदखाँ को आश्रय देने से बहादुरशाह और महाराणा के बीच सघर्ष का आरम्भ होता है। यवनो और राजपूतो का युद्ध, कर्मवती का हुमायूँ को राखी भेजना और रक्षा की आशा करना सघर्ष को विकसित रूप देना हे। युद्ध मे विजय की आशा न होने पर कर्मवती की राखी को हुमायूँ द्वारा स्वीकार करना और राजपूतो की रक्षा करने की शपथ चरमसीमा है। कर्मवती का जौहर न करके हुमायू की प्रतीक्षा करने से उतार आरम्भ हो जाता है। अन्त की अवस्था राजपूतो की हार और स्त्रियो के जौहर मे है। हुमायूँ समय पर नही पहुँच पाता और पश्चात्ताप करता है।

'शिवा-साधना' मे शिवाजी का अपने साथियो की उपस्थिति मे स्वातन्त्र्य साधना का प्रण करना आरम्भ की अवस्था है। साहसिक आक्रमण और सगठन मे विकास की अवस्था है। शाहजी, शिवाजी आदि का बन्दी हो जाना चरमसीमा है। शिवाजी का कैद से भाग निकलना उतार की अवस्था है। सिहगढ आदि की विजय पर रामदास से एक बार पुन प्रोत्साहन पाकर कर्म-पथ मे जुट जाना अन्त है।

'आहुति' मे अलाउद्दीन खिलजी के कोप पात्र मुसलमान सरदार मीर महिमा को शरण देकर हमीर का अलाउद्दीन का कोपभाजन बन जाना आरभ है। अलाउद्दीन का आक्रमण, राजपूतो का साहस से युद्ध करना, युद्ध का निर्णय न होना आदि विकास की अवस्था है। राजपूत सेना की विजय से वस्तु उतार की ओर बढती है। स्त्रियो का जौहर, हमीर की आहुति से अन्त हो जाता है।

'शतरज के खिलाडी' की कथावस्तु का आरम्भ जैसलमेर के लोगो द्वारा अला-उद्दीन के खजाने को लूट लेने की घटना से होता है। मित्र के विरुद्ध युद्ध का निर्णय न होना, युद्ध-सामग्री मे आग लग जाना आदि विकास की अवस्था है। रत्नसिह द्वारा पुत्र को महबूब को सौपना वस्तु की चरमसीमा है। अन्त होता है रत्नसिह और महबूब के गले मिलने के अवसर पर रत्नसिह के वाक्यो से।

वस्तु की अवस्थाओ का यही क्रम 'उद्धार', 'प्रतिशोध', 'शपथ', 'विषपान', 'प्रकाश-स्तभ', 'कीर्ति-स्तभ', 'सरक्षक' और 'विदा' आदि मे भी देखा जा सकता है। परन्तु जैसाकि हम पहले कह आये है, प्रेमीजी इस प्रकार के बन्धन के प्रति विशेष आग्रहशील नही दिखाई देते। वास्तव मे समय की गति अब इतनी तीव्र हो गई है कि इन नियमो का ज्यो-का-त्यो पालन आज की स्थिति मे सभव नही है। वस्तु-

विकास मे इतना ही होना चाहिए कि कथानक के नाटकीय रूप को प्राप्त होने मे उसके तीन भाग रखे जावे —आरम्भ, मध्य और अन्त ।

आरभ मे वस्तु को साधारण रूप से प्रस्तुत कर घटनाओ का इस भाँति समावेश किया जाये कि आगे की घटनाओ के लिए उत्कठा बढती रहे । वस्तु के मध्य मे दर्शको या पाठको का ध्यान परिणाम की ओर मुड जाना चाहिए । अन्त मे सब उत्कठाओ की समाप्ति होकर कार्य की प्राप्ति हो जानी चाहिए । प्रेमीजी के नाटको मे कथावस्तु के ये तीन मोड सफलता के साथ निभाये गए हैं । उदाहरण के लिए हम यहाँ उनके सामाजिक नाटको को लेगे । 'छाया' के आरम्भ मे लेखक ने नारी-जीवन की स्थिति और लेखक की दुर्दशा का उद्घाटन किया है। ज्योत्स्ना, माया, छाया, और प्रकाश के बारे मे जानने को पाठक आकुल हो उठता है । प्रकाश का ज्योत्स्ना और माया के यहाँ अधिकतर समय बिताये जाने की घटनाएँ उत्सुकता को चरमसीमा पर पहुँचा देती है । छाया का अपने घर सकटो मे दिन बिताना और प्रकाश का ऋण मे डूबते जाना, शकर आदि का भी उसके विपरीत हो जाना मध्य की अवस्था है । ज्योत्स्ना और रजनीकान्त का प्रकाश के प्रति झुकाव परिणाम की ओर हमारा झुकाव बढाता है । नाटक का अन्तिम दृश्य उत्सुकता को अन्तिम बिन्दु पर लाकर सब शकाओ का समाधान कर देता है । माया, ज्योत्स्ना आदि के सम्बन्ध मे सब बाते स्पष्ट हो जाती है । प्रकाश की भी कष्टो से मुक्ति हो जाती है । 'बन्धन' मे भी इसी क्रम को अपनाया गया है । किन्तु 'छाया' की अपेक्षा इसका वस्तुसगठन कही उत्तम है । व्यक्ति के भीतर चलनेवाला द्वन्द्व, समाज के भीतर चलनेवाला द्वन्द्व इसकी विशेषता है । साथ ही जिज्ञासा और उत्कठा जो नाटक का प्राण होता है, उसका पूरा निर्वाह किया जाता है । निम्न मध्य-वर्ग की दुरवस्था के चित्रण से नाटक का आरम्भ होता है, मज़दूरो की हडताल इस आरम्भ को उत्कठा की अग्नि प्रदान करती है । रायबहादुर का अत्याचार, प्रकाश, मालती की हलचल, मोहन की गिरफ्तारी 'मध्य' भाग है । प्रकाश का अपने को फँसाने का प्रयत्न करना और मोहन का अपने-आपको, परिणाम की ओर उत्कठित करते है । दोनो की मुक्ति मे नाटक का अन्त होता है । 'ममता' मे आरम्भ का भाग कही अधिक कौतूहल-जनक है । कला, यशपाल और लता की घटनाएँ आरभ से ही उत्कठा को बढाती है । मध्य मे जाकर विनोद की चालाकियाँ, कला और लता की परस्पर ईर्ष्या, लता का गुम हो जाना, रजनीकान्त के मन मे दुविधा का जागना आदि घटनाएँ अन्त की ओर जिज्ञासा को अग्रसर करती है । विनोद की गिरफ्तारी का समाचार, लता का न मिलना जिज्ञासा को चरमसीमा पर ले जाते है । अन्त होता है लता के बलिदान और कला तथा रजनीकान्त के विवाह से । इस प्रकार लेखक ने कथानक के सगठन के लिए किसी शास्त्रीय पक्ष का आग्रह विशेष नही रखा, बल्कि जिज्ञासा, कौतूहल और प्रभावशाली उद्देश्य के प्रति ही वह जागरूक रहा है ।

नाटक की कथावस्तु को दृश्य और सूच्य दो भागो मे विभक्त किया जाता है। दृश्य कथावस्तु का वह भाग है, जिसमे कि घटनाओ का अभिनय रगमच पर प्रस्तुत किया जाता है। दृश्य कथावस्तु मे समाविष्ट घटनाओ के अतिरिक्त बहुत-सी घटनाएँ ऐसी है जो कि रगमच पर अभिनीत रूप मे तो नही दिखाई जा सकती, किन्तु कथावस्तु के तारतम्य को बनाए रखने के लिए उनकी सूचना अवश्य दी जाती है। अत नाटकीय कथावस्तु के तारतम्य को बनाए रखने के लिए जिन महत्त्वपूर्ण घटनाओ की किसी-न-किसी रूप मे सूचना दे दी जाती है, वह सूच्य-वस्तु कहलाती है। सूच्य कथावस्तु की सूचना देने के जो साधन है, उनको अर्थोपेक्षक कहते है। ये पाँच है—विष्कभक, चूलिका, अकास्य, अकावतार और प्रवेशक। प्राचीन सस्कृत नाटको मे इनका प्रयोग होता था, आज इनकी ओर ध्यान नही दिया जाता। वास्तव मे सूच्य-वस्तु से यही लाभ है कि कथावस्तु अनावश्यक विस्तार से बच जाये, रगमच के निर्देशक को कठिनाई का सामना न करना पडे और घटनाओ का क्रम बना रहे। यदि कुशल लेखक यह सावधानी बिना अर्थोपेक्षक के नामाकित किये ही बरत लेता है तो इस झझट मे पडने की कोई आवश्यकता नही। प्रेमीजी रगमच की आवश्यकताओ को भलीभाँति समझते है, अत उन्होने सूच्य-वस्तु का पूरा-पूरा लाभ उठाया है। अत हम कह सकते है कि कथावस्तु के सम्बन्ध मे जो भी अनिवार्य सावधानियाँ बरती जानी चाहिएँ, प्रेमीजी ने उनका बराबर ध्यान रखा है और कथावस्तु की दृष्टि से आपके नाटक सफल ही है।

'साँपो की सृष्टि' का कथानक बडी ही सफलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। कथा से सम्बन्धित अनेक ऐतहासिक-घटनाओ को यदि दृश्य-वस्तु के सहारे कहा जाता तो कथानक अनावश्यक रूप से विस्तृत भी हो जाता और उलझ भी जाता। रगमच पर उनका दिखाना सभव नही था। सूच्य-वस्तु के उपयोग से सभी घटनाओ को ले लिया गया और अलाउद्दीन खिलजी का पूरा काल नाटक के सीमित कलेवर मे समा गया। कमलावती, काफूर, माहरू, अलाउद्दीन के मुख से समस्त घटनाओ का उल्लेख कर दिया गया है।

ऐतिहासिक घटनाओ के सकलन की दृष्टि से 'साँपो की सृष्टि' का अपना महत्त्व है। कल्पना के लिए इस नाटक मे शायद ही गुजायश निकाली गई हो। पूर्ण और विशुद्ध ऐतिहासिक कृति हम इस रचना को कह सकते है। इतिहास की भावना, नाम, घटनाएँ सभी का सरक्षण इसमे मिलेगा। साथ ही इसके कथानक मे सघर्ष, प्रेम, प्रतिशोध, युद्ध, छलना, कूटनीति, बलिदान, विश्वासघात आदि की व्यापकता भी मिलेगी।

कथानक को रगमच की सुविधा से सुघटित किया गया है। 'साँपो की सृष्टि' का घटना-काल बहुत छोटा है। घटनाओ के घटने के स्थान भी होते है, दिल्ली और ग्वालियर। पहला अक कमलावती के महल के सामने समाप्त हो जाता है। दूसरा

अलाउद्दीन के महल मे। तीसरा ग्वालियर के किले के एक महल के सामने के उद्यान मे। इस प्रकार यह नाटक रगमच पर भी सुविधा के साथ खेला जा सकता है।

हाँ, एक बात अवश्य कही जा सकती है और वह यह कि प्रेमीजी की कथा-वस्तु के चुनाव की रुचि एक जैसी ही है, उसमे विविधता नही है। वही युद्ध, वही सधियाँ, वही सहायताए", वही साम्प्रदायिक एकता, वही राष्ट्र-भावना के स्वर, वही हार, वही जीत। सब नाटको का एक-जैसा ही क्रम। अनेकरूपता के लिए कही स्थान नही। इसके लिए प्रेमीजी ने अपने नाटको की भूमिकाओ मे जो स्पष्टीकरण किया है, वह आक्षेप का समाधान प्रस्तुत करता है—

'हमारे इतिहास के गभीर अध्ययन मे हमारे जन-जीवन की जिन निर्बलताओ पर प्रकाश पडता है और जिनके कारण हम विभाजित रहकर पराजित, पद-दलित और पराधीन होते आये है, वे ही निर्बलताएँ भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् फिर अधिक प्रबल हो उठी है। इस अँधेरे से, इस धुएँ से हमे लडना ही है। इसलिए मै इस प्रकार के नाटक लिखना नही छोड सकता, मैं समझता हूँ, अभी इनकी आवश्यकता है।' ('शतरज के खिलाडी')

' भारत सदियो की पराधीनता के पश्चात् स्वतन्त्र हुआ है और अब इसे नवार्जित स्वतन्त्रता की रक्षा भी करनी है एव राष्ट्र को सुखी, समृद्ध और शक्तिशाली भी बनाना है। प्राचीन इतिहास हमारी शक्ति और दुर्बलता का दर्पण है। मैने बार-बार यह दर्पण अपने देश-वासियो के सम्मुख रखा है ताकि हम अपने देश के अतीत को देखकर व्यक्तिगत, सामाजिक एव राजनैतिक जीवन से उन दुर्बलताओ को दूर करे जिन्होने हमे पराधीनता के पाश मे बाँधा, उन गुणो को ग्रहण करे, जिन्होने हमे अभी तक जीवित रखा और फिर स्वतन्त्र किया तथा उन गुणो का विकास करें जिनकी राष्ट्र के नव-निर्माण मे अपेक्षा है।' ('कीर्त्ति-स्तभ')

२. पात्र और उनका चरित्र चित्रण—नाटक की सफलता घटनाओ की सम्पन्नता को प्रत्यक्षता देने मे है। वस्तु-विधान मे पात्रो का समुचित विनियोग करने के बाद ही घटनाओ की सम्पन्नता प्रत्यक्ष की जा सकती है। कथावस्तु के अनुसार ही पात्रो की योजना करनी चाहिए। वस्तु-विधान और पात्रो की योजना यथार्थ मे परस्पर ऐसे सम्बद्ध है कि एक के बिना दूसरे का विन्यास सभव नही। वस्तु मे पात्रो का चरित्र गफित रहता है और चरित्रो के गुफन से वस्तु निर्मित है। इसलिए कथा-वस्तु का जैसा विकास अभिप्रेत हो उसाके अनुसार पात्रो की याजना करनी चाहिए। यदि कथावस्तु विस्तृत हो तो पात्रो की सख्या अधिक आर सक्षिप्त है तो कम की जानी चाहिए। हर स्थिति मे पात्रो का सम्बन्ध कथानक से होना चाहिए। प्रेमीजी ने इस दिशा मे सावधानी बरतने की चेष्टा की है। पात्रो के सम्बन्ध मे उनका वक्तव्य इस प्रकार है—

'इस नाटक मे पात्र-सूची पर्याप्त लम्बी हो गई है, लेकिन इससे नाटक के गठन मे कोई शिथिलता नही आई, क्योकि अनेक पात्र ऐसे है जो एक-एक या दो-दो दृश्यो मे आते है, मुख्य पात्र तो शिवाजी, जीजाबाई, रामदास, और औरगजेब ही है, जिनका अस्तित्व पहले अक से अतिम अक तक बना रहता है। इन्ही पात्रो के कारण नाटक के दृश्य अन्त तक एक सूत्र मे बँधे रहते है। ('शिवा-साधना')

'ऐतिहासिक कथानको मे पात्रो की सख्या अधिक होती है और उन सबको नाटक मे स्थान दिया जाय तो सबका चरित्र-विकास हो ही नही सकता। नाटक खेलने के लिए इतने अभिनेताओ को जुटाना भी एक असाध्य समस्या हो जाती है। प्रस्तुत नाटक मे मैने महाराणा राजसिह, छत्रपति शभूजी और औरगजेब के अन्य पुत्रो जैसे महत्त्वपूर्ण पात्रो तक को छोड दिया है—यह कदाचित् कुछ लोगो को ठीक न जँचे, लेकिन ऐसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो को केवल एक-दो दृश्यो मे ही रगमच पर लाना भी उनके साथ अन्याय है। इसलिए मैने उनके कार्यो को अन्य पात्रो के कथोप-कथनो द्वारा व्यक्त करा दिया है।' ('विदा')

'नाटक मे पात्रो की सख्या अधिक नही होनी चाहिए। थोडे पात्रो के चरित्र विकसित करने मे सुविधा रहती है। इस नाटक मे मालवा के सुलतान, गुजरात के बादशाह, दिल्ली के बादशाह, सग्रामसिह की माता, सिरोही नरेश और उसकी पत्नी, मेवाड की राजकुमारी आनन्ददेवी, राव सूरतान आदि जिनका कथानक से कुछ सम्बन्ध है, रगमच पर लाए ही नही गए। किसी पात्र को एक-दो दृश्य मे लाना कुछ जँचता नही है। उनके चरित्रो को भली-भाति प्रकट करने के लिए उनसे सम्बन्ध रखनेवाले दृश्य बढाने पडते है और नाटक उपन्यास की भाँति वृहदाकार हो जाता है।' (कीर्ति-स्तम्भ')

स्पष्ट है कि प्रेमीजी पात्रो की सयोजना के सम्बन्ध मे सदा सावधान रहे है। प्राचीन नाटको मे नायक, नायिका, प्रतिनायक, विदूषक, विट और चेट तो अवश्य होते थे, शेष पात्र कहानी के अनुसार रख लिए जाते थे। आज इस सम्बन्ध मे पर्याप्त विचार बदल गए हे। फलस्वरूप प्रेमीजी भी इनका आग्रह मानकर नही चले। नायक, प्रतिनायक तो सघर्ष के लिए अवश्य रख लिए गए है, किन्तु विदूषक, विट और चेट की समाप्ति कर दी गई है। इन तीन पात्रो का समावेश हास्यरस की अभिव्यक्ति के लिए मुख्य रूप से होता था। प्रेमीजी ने हास्य या विनोद की सृष्टि विदूषक को अस्वाभाविक रूप मे स्थान न देकर, किसी पात्र का निर्माण करके की है। जैसे 'रक्षाबन्धन' मे धनदास, 'उद्धार' मे जाल और 'शपथ' म धर्मदास व जगदेव इसीलिए रखे गये है।

पात्रो का महत्त्व उनके चरित्र-चित्रण मे है। नाटककार अपने पात्रो के विषय मे स्वय कुछ नही कहता, वह कथावस्तु, घटनाओ और कथोपकथन द्वारा पात्रो के

चरित्र का उद्‌घाटन करता है । चरित्र-चित्रण की उत्कृष्टता पर ही नाटक की सफलता निभर करती है। नाटक मे चरित्र-चित्रण के कई प्रकार हैं, जिनमे मुख्य हे— १ कथोपकथन द्वारा, २ स्वगतकथन द्वारा, ३ सम्मति द्वारा और ४ क्रिया-कलाप द्वारा। प्रेमीजी ने प्राय सभी प्रकारो का उपयोग किया है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमीजी के नाटक उत्तमोत्तम कहे जा सकते है ।

चरित्र-चित्रण मे प्रेमीजी ने आदर्शवादी शैली को अपनाया है। प्रगति या यथाथवाद के नाम पर चरित्रो का कुत्सित पक्ष उन्होने प्रस्तुत नही किया। विषपान की भूमिका मे उन्होने कहा भी हे —'यथार्थवाद के नाम पर समाज के गन्दे अगो का चित्र खीच देना मेरे साहित्य का उद्देश्य नही है। यूरोपीय साहित्य और सभ्यता से प्रभावित हिंदी के कुछ नवीन समालोचक मेरे नाटको म नैतिकता का दोष निकालते है। मैं यह चाहता हूँ कि मेरे देशवासी स्वस्थ विचारवाले, स्वाभिमानी, स्वाधीन-चेता, वीर, पराक्रमी, सयमी, सहृदय ओर ईमानदार हो। मै समझता हू ऐसी इच्छा करना पाप नही है। फिर भी समाज मे जिन्हे नीच, घृणित समझा जाता हे, उनके प्रति मेरा दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है।'

इसका यह अर्थ नही है कि प्रेमीजी पुराने सस्कारो और रूढियो से जकडे हुए है। वे कहते हे:—'मै प्राचीन कूडे-कर्कट का पोषक नही हूँ। फिर भी प्राचीन होने के कारण ही कोई चीज़ बुरी है, यह मैं मानने को प्रस्तुत नही हू।'

अपने उद्देश्य के अनुकूल प्रेमीजी ने अपने नायक धीरोदात्त ही रखे है। वास्तव मे प्रेमीजी के नाटको का निर्माण ऐसे वातावरण मे होता रहा है जब सामाजिक और राजनैतिक रूप मे भारतीय जनता विनाशक रूढियो और विदेशी शासन से सघष करती रही हे या फिर उसे साम्प्रदायिक वैमनस्य का मुकाबला करना पडता रहा है । ऐसे वातावरण मे भारतीय व्यक्ति-पूजा मे विश्वास करते रहे है। सस्कृत महाकाव्यो के युग से लेकर आजतक यही व्यक्ति-पूजा चली आ रही है। जहाँ व्यक्ति-पूजा होगी वहाँ व्यक्ति मे आदर्श की स्थापना अपने-आप हो जायगी ।

सभी नाटको के नायक एक आदर्श चरित्र की सृष्टि करने के कारण धीरोदात्त है, अन्य पात्र भी आदर्श प्रस्तुत करते है। प्रेमीजी ने अपने पात्रो मे जहाँ मानव-जीवन की साधारण और व्यापक भावनाओ का चित्रण किया है, वहाँ असाधारण और विशेष भावनाओ का चित्रण भी किया है। हम्मीर, जीजाबाई, शाहशेख औलिया, रामदास, चारणी, विष्णुवर्धन, दारा, विक्रमादित्य आदि असाधारण व्यक्तित्व लिये हुए है। मालदेव, जवानदास, धनदास, सुरजनसिह आदि मे मानव-सुलभ दुर्बलताएँ दिखाई गई है ।

प्रेमीजी के प्रधान पात्र प्राय विचारशील प्रकृति के है। उनके हृदय मे क्षमा, दया आदि उदात्त गुण वर्तमान है। हिसा, क्रूरता के वे शत्रु है। आदर्शवादी चरित्र-

चित्रण मे प्रेमीजी ने आकस्मिकता तो बडा महत्त्व दिया है। वे अपने उदात्त चरित्र पात्रो के सम्वाद-द्वारा अनुदात्त पात्रो के चरित्र मे सहसा परिवर्तन करा देते है। 'रक्षा-बन्धन' मे चारणी श्यामा के चरित्र मे परिवर्तन करती है। माया अपने पति धनदास का सुधार करती है। अपनी चित्रण-पद्धति मे प्रेमीजी ने प्राय प्रत्येक नाटक मे घटना के साथ एक ऐसा भी मनुष्य रखा है जो विषमता मे सफलता लाने का उद्योग करता है। सस्कारो मे परिवर्तन, देश-प्रेम, सगठन का भाव, अधम पर धर्म की विजय और कठोरता पर कोमलता का प्रभुत्त्व स्थापित करता है।

आपके उदात्त पात्रो मे सभी उच्चगुण पाये जाते है। जन्म-भूमि के प्रति श्रद्धा, वीरतापूर्ण अह, कुल का अभिमान, सामन्ती गव, बलिदान की भावना, निर्भयता और क्षमा से वे सम्पन्न है। पुरुष-पात्रो के समान नारियाँ भी आदर्श गुणो से युक्त है। वे वीरागनाएँ हे। निर्भयता, आत्म-त्याग, दूरदर्शिता, उदारता, सहिष्णुता, सेवा परायणता, एकनिष्ठता आदि गुण उनमे भी हे। ऐतिहासिक नाटको के चरित्रो मे रग भरते हुए प्रेमीजी ने भारतीय रस-सिद्धान्त का बहुत ध्यान रखा है। 'साधारणीकरण' के अनुसार ही अधिकतर चरित्रो का निर्माण किया है, यद्यपि जीवन के उत्थान-पतन, मानस का द्वन्द्व और भावसघर्ष भी समान और उचित अनुपात मे मिलता है। परन्तु वर्तमान जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले नाटको के चरित्र-निर्माण मे व्यक्ति-वैचित्र्य का स्वरूप स्पष्ट है।

'रक्षा-बन्धन' का नायक हुमायूँ आदर्श पुरुष है। नीति, धर्म, मानवता, दया, उदारता आदि गुणो का वह अवतार है। अपने राज्य और व्यक्तिगत सुरक्षा को खतरे मे डालकर भी वह कर्मवती की राखी को स्वीकार कर लेता है। एक उदारमना सच्चे मानव की भाँति वह कहता है—'हमे दुनिया की हर किस्म की तगदिली के खिलाफ जिहाद करना चाहिए। हमारा काम भाई के गले पर छुरी चलाना नही, भाई को गले लगाना है। भाई को ही नही दुश्मन को भी गले लगाना है।' 'रक्षा-बन्धन' मे विक्रमादित्य एक औसत व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। इसमे मानवीय गुण भी है और कमियाँ भी। विलासी भी परले दर्जे का था तो धीरता, त्याग, देशभक्ति, शूर-वीरता, निर्भयता भी चरमसीमा पर आई। स्वगतकथन से विक्रम का चरित्र देखिये—'वे गोरा-बादल की आत्माएँ मुझे शाप दे रही है। स्वर्ग मे देवी पद्मिनी हँस रही है, उनकी व्यग्यमयी मुस्कान मानो कह रही है, इससे स्त्रियाँ ही अच्छी। अभिशाप, ग्लानि, घृणा और अपयश के बोझ से दबा हुआ जीवन मै कब तक ढो सकूँगी। मै मेवाड का महाराणा था—अब तो राह का भिखारी हूँ—पर उससे भी अधिक दु खी हूँ। अब तो चला नही जाता। हाय ! चित्तौड का न जाने क्या हुआ ?'

श्यामा का चरित्र भी दिव्य है । इसका चित्रगा करने मे प्रेमीजी ने अत्यन्त कौशल से काम लिया है । श्यामा मेवाडी वशाभिमान की शिकार, सामती न्याय के पैरो तले कुचली हुई अबला और समाज बहिष्कृत एक व्यथाविह्वल नारी है । उसका रोषभरा नारीत्त्व कहता हे—'देशभक्ति के अन्ध उन्माद ने, न्याय के निष्ठुर अभिमान ने, एक दिल की हरी-भरी बस्ती को जलता हुआ मरुप्रदेश बना दिया । इच्छा होती है, चोट खाई हुई नागिन की भाति फुफकार कर सम्पूर्ण मेवाड को डस लू ।' किन्तु साथ ही वह अपना रोप दबाकर अपने पुत्र को मेवाड की रक्षा के लिए युद्ध करने की प्रेरणा भी देती है । सदा अपने को एकान्त स्वाभिमान के साथ मेवाड के राजसुख से अलग रखती हे, यह उसका स्पर्धा के योग्य गुरण हे ।

बहादुरशाह का चरित्र भी प्रेमीजी ने कुशलतापूर्वक चित्रित किया है । भाई के रक्त-पिपासु, प्रतिशोध की अग्नि मे झुलमते हुए बहादुरशाह के हृदय को सफलता के साथ अकित किया गया है ।

कमवती के आदश के सामने तो पुरुषपात्र भी विशेप ऊचे नही दिखाई देते । अपने पुत्र के लिए राजमुकुट न माँगकर क्रीडा के लिए तलवार माँगनेवाली कमवती आरम्भ से ही आकृष्ट करती हे । वास्तव मे यह नाटक की आत्मा है । शरणागत की रक्षा के लिए युद्ध की हिचकिचाहट देखकर वीरो के हृदय मे स्फूर्ति भरनेवाली कर्मवती की वाणी सुनिए —

'पाताल फोडकर निकलेगी सेना । आसमान से टपकेगी सेना । मेवाड के वीरो प्राण का मोह ! यह सधि शब्द आपने किससे सीख लिया ? यदि प्राणो का इतना मोह है तो चूडियाँ पहनकर घर बैठो, लाओ यह तलवार मुझे दो । उठो, भूखे सिह की तरह शत्रु की सेना पर टूट पडो तुम राजपूत हो, क्षत्रिय हो, अग्निपुत्र हो तुम्हारी हुकार से शत्रु की छाती टूक-टूक हो जायगी ।' कर्मवती भ्रातृत्त्व और मनुष्यत्त्व पर पूरा भरोसा रखती हे । कठिन-से-कठिन परिस्थिति मे भी अपना साहस नही छोडती ।

'शिवा-साधना' के नायक शिवाजी धर्मवीर, युद्धवीर, कमवीर और दानवीर है । वे स्वतन्त्रता के दीवाने शूरवीर है । स्वतन्त्रता की साधना मे जीवन की आहुति देने पर ही उन्हे शान्ति मिलती है । अपने बल पर ही वे औरगजेब जैसे शक्तिशाली शत्रु से लडाई मोल लेते हे । देहबल के साथ उनमे बुद्धिबल भी है । शिवाजी केवल वीर ही नही, शत्रु के प्रति भी उदार हे । युद्ध के बाद बन्दियो को क्षमा देना, सिपाहियो को सन्तुष्ट करना, शत्रु-पक्ष की महिलाओ के साथ माता-बहिन का वर्ताव करना शिवाजी की उदारता का प्रमाण है । अफजलखाँ की मृत्यु के बाद उसकी क्रिया-कम के लिए कहते है —'हमारा किसी व्यक्तिविशेष से द्वेष नही, हम तो एक महान् साधना के साधक हे । वीर शत्रु की लाश का उचित आदर होना चाहिए । उसकी

अप्रतिष्ठा मराठो के गौरव के प्रतिकूल है।' शिवाजी का चरित्र शील-सम्पन्न है। शत्रु-नारी के प्रति उनके हृदय की भावना देखिए —'डरो मत माँ ! डरो मत ! तुम्हे देखकर मेरे हृदय मे केवल यह भाव उठ रहा है कि यदि तुम मेरी माँ होती तो विधाता ने मुझे सोन्दर्य की दौलत देने मे इतनी कजूसी न की होती।'

देवकोटि के इस चरित्र मे मानव-सुलभ दुर्बलताएँ भी है। मानव अपनी मानवता से ही व्यक्ति को प्रभावित करता है। शिवाजी को राज्य पर गर्व होता है। गर्व मानव हृदय की स्वाभाविकता है। किन्तु रामदास द्वारा भ्रम दूर होता है और उनके चरित्र मे फिर महानता आती है। इस प्रकार चरित्र मे एक क्रमिक विकास होता है। यही प्रेमीजी के चरित्र-चित्रण की कुशलता है। पात्रो को स्वाभाविक स्थिति मे रखना ही प्रेमीजी का गुण है। राक्षस कोटि का कोई भी पात्र वे नही रखते। अवगुण के भडार व्यक्ति मे भी किसी-न-किसी गुण की स्थापना वे करते है। अनेक अवगुणो का भण्डार होने पर भी ओरगजेब वीरता से परिपूर्ण है। वह गुण ग्राहक भी है। अपने शत्रु की वीरता की भी प्रशसा करता है। वह सादा जीवन व्यतीत करता है। जीवन के आनन्द-विलास को छोडकर, आमोद-प्रमोद से दूर एक वैरागी बनकर रहता है। एक लगन, एक ध्येय लिये हुए अविश्राम गति से चलता है।

जीजाबाई का चरित्र एक आदश माता का चरित्र है। कर्त्तव्य और देश-सेवा का व्रत लिये ही वैधव्य जीवन बिता देती है। वह बलिदानी आत्मा है। पति के जीवन को सकट मे पडे देखकर भी कर्त्तव्य-पथ से च्युत नही होती। देश-प्रेम की भावना से भरी पुत्र का प्रेरित करती है —'उठो बेटा, मै पिता, पति, बन्धु-बान्धव, सुख-स्वार्थ कुछ नही जानती, मै केवल देश को जानती हूँ और तुम्हे आदेश करती हू कि देश की स्वाधीनता ही तुम्हारे जीवन की चरम साधना हो।'

'प्रतिशोध' का नायक छत्रसाल वीर, साहसी, चतुर और लगनवाला व्यक्ति है। वह अपने प्रयत्नो से ही मुगल साम्राज्य की सत्ता को निर्वासित करने मे सफल होता है। बलदिवान के शब्दो मे छत्रसाल मे विपत्ति मे धैय, ऐश्वर्य के क्षणो मे क्षमाशीलता, शस्त्र-सचालन मे पूण कुशलता आदि गुण विद्यमान है। इतना होने पर भी उसमे अहकार नही है। नम्रता ही उसका गुण है। वह कहता है —'जनता के विनम्र सेवक छत्रसाल के लिए यह हर्ष का विषय है कि वह फिर जनता के बीच मे उसकी सेवा के लिए लौट आया है।' नाटक के दूसरे पात्र चपतराय (छत्रसाल के पिता) यदि साहस और वीरता के बालारुण थे तो छत्रसाल प्रचण्ड मार्तण्ड थे। प्राणनाथ और बलदिवान के चरित्र भी आदर्श है।

'आहुति' का नायक हम्मीरसिंह शरणागतवत्सल, आन का पक्का और शूरवीर है। हम्मीर की हठ प्रसिद्ध है—'तिरिया तेल हमीर हठ चढे न दूजी बार।'

नाटक मे उसकी हठ वीरता मे परिवर्तित हे । प्रजा की मुक्ति के लिए यह अलाउद्दीन के विरुद्ध युद्ध का अभियान करता है। विश्राम करना तो इसने सीखा ही नही महारानी देवल भी उसीके अनुकूल वीर क्षत्राणी ह, वे हँसते-हँसते अपने पुत्रो और भाई को युद्ध की बलिवेदी पर चढा देती ह । मीर महिमा मे सच्ची बात निर्भयता के साथ कहने का गुण है । मित्र के लिए वह अपने अन्तिम क्षणो तक लडता है ।

'स्वप्नभग' का दारा एक असाधारण व्यक्ति ह । वह शान्तिप्रिय और आदर्श व्यक्ति है । गृह-कलह से उसका अन्तःकरण काँप उठता है । वह सदा ही अपने कर्त्तव्य पर आरूढ रहता है । दारा साहित्य-प्रेमी भी हे । विचारो से वह दार्शनिक है। नादिरा एक आदर्श पत्नी हे । वह बडी-से बडी आपत्ति मे भी उसका साथ नही छोडती । श्री 'नलिन' के शब्दो मे चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'स्वप्न-भग' प्रेमीजी का सर्वश्रेष्ठ नाटक है । इसमे सभी चरित्रो का विकास स्वाभाविक और विस्तृत हुआ हे । प्रेमीजी के किसी भी अन्य नाटक मे चरित्रो का उद्घाटन इतना सुन्दर नही । औरगजेब, रोशनआरा, जहाँनारा, प्रकाश आदि सभी मे विकास दिखाई देता है। नाटक मे प्रेमीजी न चरित्रो के बाहरी चोले को त्यागकर उनके अन्तर मे प्रवेश किया हे ।

औरगजेब कट्टर, निरकुश, निर्दय, कठोर, वीर, धूर्त और निर्भय योद्धा है । सहृदयता या भावुकता की धडकन उसके हृदय मे होती ही नही । सम्राट् बनने की महत्त्वाकाक्षा उससे उसके भाइयो का वध करा देती है । पिता को वह पानी तक के लिए तरसाता है । किन्तु जब यह दानव महत्त्वाकाक्षा के घटाटोप से मुक्त क्षणो मे आता है, कपट के परिवेश से बाहर निकलता है, तब उसके हृदय की दुविधापूर्ण स्थिति का चित्र इन शब्दो मे सामने आता है —'ससार मे सब प्राणियो के स्नेह से वचित औरगजेब, तुझे बहन रोशनआरा के अतिरिक्त और भी कोई प्यार करता है ? नही । रोशनआरा का स्नेह मरुभूमि मे जलते हुए मरे जलहीन जीवन का एक-मात्र सरोवर है । वह कयामत से भी तेज लडकी—वह तलवार से भी अधिक तीखी धारवाली लडकी—वह बिजली से भी अधिक ज्योतित आँखोवाली लडकी—आज औरगजेब को सर्वनाश की आग लगाने को कह रही है । मै मन्त्रमुग्ध साँप की तरह उस सँपेरिन के इशारे पर नाचूँगा । जो वह कहेगी, वही करूँगा ।'

रोशनआरा एक ओर जहाँ कयामत से तेज, तलवार से अधिक तीखी, बिजली से अधिक ज्योतित आँखोवाली, विनाश से खेलनेवाली और अपने भाई को इशारो पर नचानेवाली है, वहाँ दूसरी ओर उसके हृदय मे नारी-सुलभ कोमल भाव भी अँगडाइयाँ लेते हे —'ईर्ष्या की आँधी मे उडकर मै कही आगई हूँ । मै नारी हूँ । नारी का अस्तित्व प्रेम करने के लिए है, ससार को स्नेह के निर्मल झरने

वाली हूँ। कोई दिल मे बार-बार कहता है —'रोशनआरा जरा सोच ! आगे कदम बढाने के पहले उसके परिणामो पर विचार कर।'

'शतरज के खिलाडी' मे किरणमयी, ताण्डवी, महाकाल आदि के चरित्र आदर्श कहे जा सकते है। किरणमयी का चरित्र कर्मवती की भाँति तेजस्वी है और ताडवी का चारणी की भाति प्रेरक। रत्नसिह बलिदानी वीर है। वह कर्म करने का आदी है, फल की इच्छा नही रखता। कहता है—'बलिदान देनेवाला परिणाम को नही देखता, महबूब ! वह तो यज्ञ मे अपनी आहुति डालता है। वह नही जानता कि उसे आत्मसात् करके अग्नि जो धुआँ आकाश मे भेजती है—उससे सुख, ऐश्वर्य और नवजीवन की वर्षा होती है। वह नही जानता कि उसकी भस्म राष्ट्र के प्राणो मे एक ऐसी ज्वाला धधका देती है जो कायरता को भस्म कर देती है, राष्ट्र जाग पडता है और लक्ष्य की सिद्धि करता है।'

'विषपान' की कृष्णा सास्कृतिक और साम्प्रदायिक एकता की प्रतीक है। वह असाधारण विचारशील और दार्शनिक प्रकृति की महिला है। चित्रकारी और सगीत ही उसका जीवन है, भावुकता उसमे कूट-कूटकर भरी हुई है। राजकीय बन्धनो को वह अच्छा नही मानती। सग्रामसिह का चरित्र एक कर्मवीर का चरित्र है। वह दृढता से कर्म करता है और उसका फल भगवान् के हाथ छोड देता है। अपने स्वत्व की प्राप्ति के लिए नीच उपायो का अवलम्बन उसके स्वभाव मे नही है।

'उद्धार' का नायक हम्मीर वीरता, निर्ममता, शौर्य, धीरता, चातुरी, नेतृत्व आदि गुणो से भरपूर है। सुवीर, नीति-धर्म और सच्चरित्रता की प्रतीक है। कमला देशभक्त, दूरदर्शी, सरलचित्त और वीर नारी है। मालदेव का चरित्र एक यथार्थवादी की भाँति चित्रित किया गया है। सुजानसिह का चरित्र भी अनुकरणीय है। उसका स्वप्न है जातियो की सीमाओ को तोडकर मानवता का निर्माण, प्रान्तीयता की दीवारो को गिराकर राष्ट्रीयता की स्थापना।

'भग्न-प्राचीर' मे मुख्य पात्र है सग्रामसिह और बाबर, कर्मवती और मीरा। सग्रामसिह गम्भीर, प्रशान्त और प्रौढ शासक है। उसका चरित्र महत्ता और गौरव का प्रतीक है। बाबर दूरदर्शी, राजनीतिज्ञ, वीर और महत्त्वाकाक्षी है। कर्मवती देश प्रेम और पति भक्ति मे पूर्ण है। वह आदर्श क्षत्राणी है, नारीत्त्व की भावनाओ से पूर्ण साहस और शूरवीरता की मूर्ति है। इसका हृदय करुणा, क्षमा, दया, त्याग, उदारता आदि गुणो से पूर्ण है। मीरा का चरित्र भक्ति, प्रेम, भावुकता और कोमलता का जगमगाता रूप है। भोजराज देश-भक्त, निष्कपट, स्वार्थरहित और दूरदर्शी है। कर्त्तव्य और प्रणय के द्वन्द्व मे इसका चरित्र निखर उठा है।

'शपथ' मे विष्णुवर्धन, वत्स भट्ट, अभयदत्त, पार्वती, मदाकिनी, कचनी, उमा आदि अनेक आदर्श पात्र है। समस्त पात्र अपने चारित्रिक महत्त्व से नाटक मे

सास्कृतिक वातावरण की सृष्टि करते है । विष्णुवर्धन ओजस्वी, आत्म विश्वासी और वीर तथा साहसी है । वह एक आदर्श जन-नायक हे । अपनी शपथ का पक्का हे । उसका लक्ष्य है जनता मे निर्भयता, आत्म-विश्वास, आस्था का जीवन, देश के प्रति कर्त्तव्य-भावना पैदा करना । स्वार्थ से उसे घृणा हे । वत्स के शब्दो मे विष्णुवर्धन का चरित्र इस प्रकार हे —'जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधमन ने उन प्रदेशो को भी जीता जिन पर गुप्त सम्राटो का आधिपत्य नही था और न ही जहा राजाओ के मुकुट को ध्वस्त करनेवाली हूणो की आज्ञा ही प्रवेश कर पाई थी । लौहित्य से लेकर महेन्द्र पवत तक और गगा से—स्पष्ट हिमालय से—लेकर पश्चिम पयोधि तक के सामन्त उसके चरणो पर लोटे । मिहिरकुल ने भी, जिसने भगवान् शिव के अतिरिक्त और किसी के सामने सिर नही नवाया, अपने मुकुट के पुष्पो के द्वारा उसके युगल चरणो की अर्चना की ।' वत्स भट्ट मे एक सच्चे कवि और आदश मित्र के गुण मौजूद है । कचनी मे त्याग, देशप्रेम, वीरता आदि गुण मौजूद है। आत्म-सन्तोष उसका भारी गुण है । विष्णुवर्धन कहता हे —'देशकार्य की स्वयसेविकाओ मे तुम सबसे आगे रही ।'

'प्रकाशस्तभ' मे बाप्पा, हारीत, ज्वाला और हमीदा आदर्श पात्र हे । मेवाड का राजवश अपने आदिपुरुष बाप्पा रावल पर गर्व करता हे । उसके व्यक्तित्व के साथ जनश्रुतियो मे अनेक दैवी और चमत्कारपूर्ण घटनाएँ प्रचलित हे, किन्तु प्रेमीजी ने बडी कुशलता के साथ बाप्पा का चरित्र अकित किया है , उसे कही भी मानवेतर नही बनने दिया । बाप्पा आदर्श प्रेम को महत्व देता है, बचपन की प्रतिज्ञाओं को भी पूरी करता है, उन्हे केवल बच्चो का खेल नही मानता । जाति-पॉति का भेदभाव उसे पसन्द नही, रूढियो का वह विरोधी है, समाज मे समता चाहता हे । बाप्पा भगवान् का अवतार, महात्मा अथवा धर्म प्रवर्तक होने का गौरव प्राप्त करना नही चाहता । किसी दैवी, शक्ति अथवा अद्भुत आध्यात्मिकज्ञान या बल का गर्व भी वह नही करता । वह तो मनुष्य रहकर सीमित शक्तियो द्वारा मनुष्य के स्वार्थ और दभ से युद्ध करना चाहता है। वह नीच और ऊँच के, क्षत्रिय और भील के, राजा और प्रजा के बीच विषमता की खाई को पाट देना चाहता है ।

हारीत मानव स्वतत्रता के समर्थक है। विभिन्न सस्कृतियो का समन्वय ही लक्ष्य है। ज्वाला से वह कहता है--'यह आर्य है, यह द्राविड और यह यवन इस प्रकार सोचने की मनोवृत्ति हमे त्यागनी होगी । हमे किसी पर अपना धर्म, अपने व्यवहार, अपनी परम्पराएँ लादने की अभिलाषा छोडनी होगी, हमे एक-दूसरे से सामाजिक सम्पर्क बढाने होगे, हमे विजयी और विजित की भावना को नष्ट कर समान बन्धु बनकर रहना होगा ।' हारीत देश-प्रेम के मान से भरा है, उसका विचार है कि देश को मॉ समझने की भावना ही वह आधार है, जिसका अवलम्ब लेकर भारत के सम्पूर्ण मानव-समाज

को सगठन मे बाँधा जा सकता है। वर्ण-व्यवस्था का विरोधी है और अछूतो का उद्धारक। प्रजा का अपमान करनेवाले शासक को वह परमेश्वर का अपमान करने वाला मानता है।

पद्मा महत्त्वाकाक्षिणी हे। वह अपने प्रेमी को भी उच्चतम देखना चाहती है। दर्शन की भाषा वह जानती है किन्तु यथार्थ को छोडकर चलना नही चाहती। बाप्पा उससे पूछता है कि क्या तुम प्रेम के हेतु राजमहल छोडने को प्रस्तुत नही हो ? तो वह कहती है —

'मै तो राजमहल छोडकर धूल मे, मरघट की ज्वाला मे भी आसन जमाने को प्रस्तुत हूँ। कि तु मैं चाहती हूँ कि मेरा प्रेमी धूल से ऊपर उठे, प्रचड मार्तंड की भाँति प्रकाशित हो। अन्त मे तो सभी को मिट्टी मे मिल जाना है, जहाँ कोई बडा है न कोई छोटा, लेकिन जबतक साँसे चलती है मनुष्य को उच्च से उच्चतर और उच्चतम होने का यत्न करना चाहिए।' पद्मा के विचार मे निर्धनता, निर्बलता और दैन्य ससार के सारे पापो से बडे है, घोर अभिशाप है। वह एक वीर क्षत्राणी है, इसीलिए कहती है—'मै क्षत्रिय बाला हूँ, वैरागियो सा त्याग मुझे तो नही भा सकता, मुझे तो उन बलशाली भुजाओ का पाश मान्य होगा जो पर्वतो का मस्तक चूर करने की साध मे व्याकुल हो।' देश के सम्बन्ध मे इसके विचार भी हारीत की भाँति है।

'कीर्ति-स्तभ' का नायक सग्रामसिह है। उसमे गम्भीरता, दूरदर्शिता, सहिष्णुता, धीरता, त्याग, सगठन कुशलता, शिष्टता, वीरता, उदारता आदि गुण है। पृथ्वीराज मे अदम्य उत्साह, अनियन्त्रित शौय, उद्दण्डता, निर्भीकता, महत्त्वाकाक्षा, हठवादिता, अदूरदर्शिता, पौरुष पर विश्वास आदि दुर्बलता-सबलता का मिश्रित रूप है। सूरजमल की भी यही स्थिति है। रायमल का चरित्र कुछ विविधतापूर्ण है। देशनिष्ठा, कुलगौरव, पूर्वजो मे आस्था, उदाराशयता, प्रजानुरजन, कर्त्तव्यपरायणता, रसिकता, न्याय-प्रियता, प्रजा-पालन, क्षमाशीलता, अभिवादनशीलता, दूरदर्शिता आदि गुण विद्यमान है। राजयोगी पूर्णतया देशभक्त हे। शृगारदेवी मे रूपगर्व, विलासप्रियता, ईर्ष्या, स्वार्थपरता, वाक्पटुता आदि विशेताए है। ज्वाला मे अपने नाम के अनुकूल असीम स्वाभिमान, प्रतिशोध भावना, प्रगलभता, निभयता, वाक्पटुता, हठवादिता, कूटनीति, कठोरता आदि मौजूद है। तारा मोहक रूप, मधुर सगीत, अद्भुत पराक्रम, प्रकृति-प्रेम, दूरदर्शिता, दृढ सकल्प, प्रेमनिष्ठा आदि से सम्पन्न है।

इस नाटक मे चरित्र-चित्रण के लिए घटनाओ, सम्वादो, सम्मतियो और रग-सकेतो का प्रचुरता से उपयोग किया गया है। वैसे इस नाटक के चरित्र घटनाओं के माध्यम से ही व्यक्त हुए है। अन्तर्द्वन्द्व इसमे कम है।

'सरक्षक' मे दुर्गा का चरित्र ही उज्ज्वलतम है। लेखक उसी के चरित्र को उभार भी पाया है। देश-प्रेम की उदात्त भावना से उसका हृदय ओतप्रोत है। वह

ऐसे किसी भी व्यक्ति को अपने जीवन मे नही आने देना चाहती जो देश के प्रति श्रद्धा न रखता हो। वह वीर राजपूतानी है, उसकी दृढता के आगे किसी की पार नही बसाती। समाज मे ऊँच-नीच की भावना उसे नही जँचती। प्रेम के क्षेत्र मे वह एकनिष्ठता को महत्त्व देती है, सदुद्देश्य के लिए प्राणो को उत्सर्ग करना ही वह श्रेयस्कर मानती है। वह प्रत्येक व्यक्ति के लिए समाज मे मानवोचित अधिकारो की समर्थक है। उसमे सगठन-शक्ति है। किसानो मे घूम-घूमकर उनका सगठन करती है। स्वतत्रता की पुजारिन है —'स्वाधीनता की लडाइयाँ गुप्त मार्गो से नही लडी जाती। मैं गुप्तचरो से नही डरती। स्वाधीनता की लडाई तो खुली लडाई है, और हमारा सबसे बडा बल बलिदान की प्रबल इच्छा है।' अन्याय के विरुद्ध वह निर्भयता से लडती है। निराशा उसे कभी भी छू नही सकी, क्योकि राजनीति की चाल वह भलीभाति जानती है। समस्त नाटक पर दुर्गा जिस प्रकार छाई हुई है; उस प्रकार अन्य नाटको मे कोई भी नारी-पात्र नही। इसके चरित्र के आगे किसी पात्र का चरित्र उभर नही पाया।

'विदा' एक प्रकार से वर्णन-प्रधान और सुझावात्मक नाटक है। किन्तु फिर भी इसमे पात्रो का चरित्र 'सरक्षक' की अपेक्षा अधिक उत्तमता से अकित किया गया है। औरगजेब, अकबर, दुर्गादास, जेबुन्निसा, उदयपुरी बेगम के चरित्र विशेष उभरकर सामने आते है। वैसे छोटे-से-छोटे पात्र मे भी अपनी कुछ-न-कुछ विशिष्टता अवश्य है।

औरगजेब कलाओ का शत्रु है, अत भावुकता और सहृयता उससे विदा ले चुकी है। वह क्रूर, कठोर और अस्वाभाविक जीवन जीता है। धार्मिक अनुशासन को ही समाज और जीवन का निचोड मानता है। वह कट्टर मुसलमान है, जो कि कट्टरता से रहित है। उसी के प्रति यह क्रूर हो जाता है। वह हठी भी है, जो पग एक बार उठा लेता है, उसे वापस लेना नही जानता। तानाशाही को पसन्द करता है, स्वतत्र चिन्तन का समर्थक नही है। मस्तिष्क का सन्तुलन किसी भी दशा मे बिगडने नही देता, औरगज़ेब का विचार है कि साम्राज्य को सुदृढ बनाने के लिए और घोर उत्तेजना के समय भी मस्तिष्क का सन्तुलन स्थिर रखना पडता है। वह कूटनीतिज्ञ भी पहले दर्जे का है —'ये राठौर क्या कभी सर झुकानेवाले है? इन्हे धीरे-धीरे समाप्त करना होगा। मीठा जहर देकर'—इस प्रकार की उक्तियाँ इसका समर्थन करती है। लेकिन जो कुछ भी वह करता है, इस्लाम के प्रचार की दृष्टि से ही करता है, निजी स्वार्थ की सिद्धि के लिए नही। वह ईश्वर के प्रति भी विश्वासी है, इस्लाम का प्रचार भी वह ईश्वर की आज्ञा से ही करता है। इस प्रकार औरगजेब के दुर्गुण भी किसी प्रकार दुर्गुण नही जान पडते। औरगजेब का यह नया चित्र प्रेमीजी ने ही अकित किया है।

अकबर का चरित्र एक आदर्शवादी व्यक्ति का चरित्र है। वह देश की सब जातियो और धर्मो मे सद्भावना स्थापित करना चाहता है। अपने इस उद्देश्य के लिए वह अपने पिता औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह की आवाज उठाता है। उसका हृदय आत्म विस्तार की भावना से भरपूर है, उसका एक ही ध्येय है —'मै हिन्दुस्तान के प्रत्येक व्यक्ति—राजपूत, मुसलमान, सिख, मराठे—सभी का विश्वास पाने का यत्न करूँगा। मै केवल मुसलमानो का बनकर नही रहूँगा।'

जेबुन्निसा का चरित्र भी अकबर की भाँति ही आदर्श है। वह कला के प्रति आसक्ति रखती है, इसीलिए भावुकता उसका गुण है। मानवता के प्रति उसमे कोमल भावनाएँ है। वह धर्म के अस्वाभाविक अनुशासन को नही मानती। वह पिता से कहती है —'धर्म क्या यह कहता है कि मनुष्य अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियो का गला घोट दे।' वह सौन्दर्य और कला की पुजारिन है। अपने लक्ष्य के लिए वह भी अपने भाई की तरह बलिदान देने को तैयार रहती है —तो आप मेरी हत्या कर दीजिए। आपके जीवन का कुछ उद्देश्य है तो मेरे जीवन का भी कोई लक्ष्य है। मै उस लक्ष्य के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने को प्रस्तुत हूँ। आप अपने अब्बाजान से विद्रोह कर सकते है तो मैं भी अपने अब्बाजान से कर सकती हूँ।' प्रजा के प्रति वह नम्रता के व्यवहार की हामी है। दारा की भाँति जेबुन्निसा का स्वप्न था, सारे देश मे मनुष्यता का राज्य हो। अपने उद्देश्य के अनुकूल पात्रो का चरित्र चित्रित करके पाठको की दृष्टि मे उन्हे महान् बना देना प्रेमीजी को खूब आता है।

दुर्गादास एक वीर, साहसी, विश्वसनीय और आदर्श देश-भक्त के रूप मे चित्रित किया गया है। दुर्गादास विश्वास करना जानता है, इसीलिए एक मुसलमान कासिम उसकी आज्ञा का पालन कर राजकुमार की रक्षा करता है। उसके चरित्र की उदात्तता का ही यह फल था कि उसने मेवाड और मारवाड की सम्मिलित सेना का नेतृत्व किया। उसमे सगठन-शक्ति भी अद्भुत थी। दुर्गादास का दृष्टिकोण विशाल है, वह सकुचित सीमाओ को त्यागकर देश की अखण्डता मे ही देश का कल्याण मानता है। कहता है —'जब तक हम इन सीमाओ मे घिरे रहकर सोचेगे तब तक स्वतन्त्र भारत का उदय नही होगा।' और 'मै चाहता हूँ कि भारत मे एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना हो जिसके पीछे जनबल हो, जिसमे प्रत्येक धर्म को विकसित होने का अवसर मिले।' इस प्रकार वीर दुर्गादास अविराम गति से अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर बढता रहता है। इस नाटक मे पात्रो का जितना परिष्कृत रूप मिलता है, उतना अन्यत्र नही।

'सवत् प्रवर्त्तन' मे विक्रमादित्य, भर्तृहरि, आचार्य कालक, उषवदात और सरस्वती के चरित्र ही अधिक उत्कृष्ट है। विक्रमादित्य नाटक का नायक है। शको को देश से खदेडकर जनता-राज्य देश मे स्थापित करता है। वह वीर है किन्तु वीरता

का दुरुपयोग नही करता। वह कहता ह —'माँ, तुम्हारे विक्रम को तलवार अन्धा नही बना सकती। विक्रम तो अन्धो को आँखे देने के लिए तलवार बाँधता है।' कामवासना, दुराचार और पाप से इसे घृणा है। इस सम्बन्ध म यह अपने पिता के लिए भी दु शब्दो का प्रयोग करने मे सकोच नही करता। कहता है —'यदि मैं वास्तव मे ऐसे कामी और कापुरुप का पुत्र हूँ तो मुझे धिक्कार है—और धिक्कार है उन अमात्यो और राज्याधिकारियो को जो राजाओ के ऐसे अत्याचारो को निर्विरोध सहन करते है।' बिना किसी साम्प्रदायिक भावना के मानवता की सेवा ही इसका लक्ष्य है। सरस्वती के सामने भगवान् से प्रार्थना करता हुआ कहता है —' मै भगवान् महाकाल और हरसिद्धिदेवी के मन्दिर मे प्रार्थना करता हुआ सदा यही वरदान माँगता रहा हूँ कि मुझ मे प्राणो का मोह कभी उत्पन्न न हो—अत्याचारी के आगे मै कभी मस्तक न झुकाऊँ—मानवता की सेवा करने मे ही अपना सम्पूर्ण जीवन उत्सग कर दूँ।'

विक्रमादित्य मे उत्साह, कार्यशीलता, तत्परता और उद्योग है। वह फल की इच्छा नही रखता, भाग्य और देवी-देवताओ के भरोसे भी नही बैठता। वह अन्धविश्वासो के अन्धेरे मे भटकना नही चाहता, ज्ञान की आँखो से काम लेता है। विक्रमादित्य के जीवन का आदर्श उसी के शब्दो मे सुनिए —'आज हमे धर्मो के आधार पर स्वाधीनता का सग्राम नही लडना है—बल्कि भारतीयता और मनुष्यता के नाम पर एक झण्डे के नीचे खडे होकर शत्रु को पराजित करना है।' जनता का पूर्ण नेतृत्व करता हुआ भी अपने को नम्रतापूर्वक एक सैनिकमात्र मानता हे। सब कुछ प्राप्त करके भी वह भर्तृहरि को ही सौपना चाहता हे, यह उसके हृदय की विशालता है।

भर्तृहरि विक्रम का भाई है। यह कवि है और अपनी कविता का उपयोग देश की सोई शक्ति को जगाने के लिए करता है। यह निर्भीक और स्वतन्त्र बुद्धि का व्यक्ति है। अपनी इच्छा से सब जगह स्वतन्त्र होकर विचरता है, सरस्वती और बेताल से कहता है —'जो कायर और मूर्ख नही है, जो स्वार्थी और विलासी नही है, जिसकी आत्मा मर नही गई है, जिसने साहस और आत्म-विश्वास को गँवा नही दिया है, जो पराधीनता की पीडा को समझता है, वह शको के निर्मम राज्य मे बसकर अपनी इच्छा का स्वामी है।' पराधीनता को यह मनुष्य के लिये सबसे बडा सकट मानता है। गुलामी की जजीरो को काटने के लिए नीति से काम लेना जानता है। जनता के दिल और दिमाग का इसने अच्छा अध्ययन किया है, यह जानता है कि जनता अलौकिक चमत्कारो के पीछे पागल होकर व्यक्ति का साथ दे सकती है। विक्रम को भी यही बात समझाता है। यह सर्वथा निस्पृह और शान्तिप्रिय है —'नही बन्धु, भर्तृहरि अपने मस्तक पर राजमुकुट धारण करने के लिए अपने देश-वासियो का रक्त नही प्रवाहित करना चाहता। मेरी एकमात्र कामना यह है कि

मेरा देश विदेशियो की अधीनता से मुक्त हो। मुझे काव्य-रचना मे जो आनन्द मिलता है वह स्वर्ग-सिंहासन पर बैठने से भी नही मिल सकता। तुम मेरे मन मे राजसत्ता की भूख जगाने मे सफल न हो सकोगे बन्धु !'

भर्तृहरि दृढ है, परन्तु कठोर नही, पापी के सुधार की भी राह है, ऐसा इसका विचार है, आचार्य कालक के सम्बन्ध मे कहता है —'मानव स्वभाव के अनुसार महान् व्यक्तियो से भी कभी कभी प्रमाद हो जाता है, किन्तु यदि एक बार पतित होने पर किसी व्यक्ति को उठाने का अवसर प्रदान न किया जाए तो मनुष्य रसातल की ओर ही बढता रहे। समाज तो गगाजल की भाति पवित्र है, वह अपनी करुणाधारा से पापियो को भी पवित्र बना देता है।'

सरस्वती राजा की वासना का शिकार एक सताई हुई महिला है, प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की ज्वाला इसके हृदय मे भभक रही है किन्तु इसका चरित्र इतना गम्भीर और आदर्श है कि वह निजी स्वार्थ को प्राथमिकता न देकर देश को ही सर्वोपरि मानती है। देश की रक्षा के लिए लडनेवाले राजा गर्दभिल्लदर्पण की प्रशसा मुक्तकठ से करती है —'राजा गदभिल्लदर्पण स्वाभिमानी, साहसी और वीर पुरुष थे—एक चतुर सेनापति भी, उनकी सेना रणकौशल मे निपुण और अस्त्र-शस्त्रो से सज्जित थी। वह शको के दाँत खट्टे करते रहे।' यह अपने भाई आचार्य कालक को भी फटकारती है, यद्यपि इसका भाई इसीके लिए राजा से बदला लेने के प्रयत्न कर रहा था। विशाल दृष्टिकोण उसके सामने रखकर उसे भी अपने पक्ष मे कर लेती है —'तो भैया क्या तुम नही सोच पाए कि केवल सरस्वती ही तुम्हारी बहन नही है ? भारत की प्रत्येक नारी—और भारत की ही क्यो विश्वभर की नारियाँ तुम्हारी बहनें हैं।'

आचार्य कालक धुन का पक्का, बहन के सम्मान की रक्षा करनेवाला और जनता पर प्रभाव डालकर उसका सगठन करनेवाला सबल व्यक्ति है। आरम्भ मे यह निजी स्वार्थ को लेकर देशद्रोही के रूप मे हमारे सामने आता है। किन्तु सरस्वती की प्रेरणा से देशभक्त भी बन जाता है। निर्भयता आचार्य कालक की सबसे बडी विशेषता है। गर्दभिल्लदर्पण को भी खरी-खोटी सुनाता है, उसके राज्यानुशासन की तनिक भी चिंता नही करता। शकक्षत्रप नहपाण के समक्ष भी निर्भीकता से कहता है —' किन्तु देखता हूँ कि मैंने हिंसक सिहो को हिरन बनाने का यत्न किया। जहरी साँपो को दूध पिलाया।' बालक को मिथ्या भाषण का भी अभ्यास नही है। आत्म-ग्लानि ही इसका उत्थान करती है।

उषवदात एक वीर योद्धा है, साथ ही राजनीति-कुशल व्यक्ति भी है। जल्दबाजी से कोई पग नही उठाता, सोच-विचारकर दूरदर्शिता से काम लेता है।

मित्र को पहचानता है और शत्रु को भी मित्र बनाना जानता है। बुद्धि मे यह बडे-बडो के कान काटता है।

'साँपो की सृष्टि' मे मुख्य पात्र छ ही है। सुलतान अलाउद्दीन खिलजी, मलिक नायब काफूर, खिजरखाँ, माहरू, कमलावती और देवल सभी पात्रो का अपना अलग व्यक्तित्व है। अलाउद्दीन एक वीर योद्धा, विजेता और क्रूरकर्मा है तो प्रेमी हृदय वाला भी है, किन्तु उसकी क्रूरता प्रेम को असफल रखती है। उसका गृहस्थ जीवन बडा ही दयनीय और असफल है। न तो वह अपनी पहली बेगमो से ही सुख पा सका और न ही माहरू और कमलावती से। माहरू और कमलावती तो एक प्रकार से उससे प्रतिशोध ही लेती रही। असल मे अलाउद्दीन के हृदय मे प्रेम की भावना नही थी, लालसा का उद्वेग था। माहरू कहती भी है —"जब यह सुलतान हो गये तो इनकी लालसाओ ने पख फैलाए। इनके हाथो मे शक्ति आई। जिस नारी पर इनकी नजर पडती उसे प्राप्त करके ही मानते।'

कमलावती वीरागना, इरादे की दृढ, कूटनीतिज्ञ और प्रतिशोध की ज्वाला से पूर्ण है। अपनी सस्कृति की रक्षा की भावना शाही हरम मे भी लिये हुए है। देवल और काफूर से कमलावती ने जो कुछ कहा उसमे इसका कूटनीतिज्ञ और प्रबल प्रतिशोध लेनेवाली का चरित्र बोल रहा है। देवल से कहती है —'काले नाग को दूध पिलाऊँगी। मैं नेवले और साँप की लडाई देखूँगी। दिल्ली के तख्त के लिए जो ताडव नृत्य होनेवाला है—उसमे भी एक वाद्य बजाऊँगी। वह वाद्य जिसकी ताल पर सब नाचेगे ?' काफूर से कहती है—'जहरीले साँप को मार डालने मे कोई पाप नही है। जिसका अस्तित्त्व ही विश्वासघात और हिंसा के आधार पर स्थापित है, उससे विश्वासघात करना मनुष्यता की सेवा करना है।'

काफूर क्रूरकर्मा, शाह का विश्वासपात्र किन्तु बडे ही गूढ चरित्र का व्यक्ति है। प्रतिशोध, हिंसा, षड्यत्र, कूटनीति ही इसका जीवन है। दया करना तो यह किसी पर जानता ही नही। अपने उपकारी अलाउद्दीन पर भी इसने दया नही की। उसके सभी बालको की आँखे निकलवाली।

खिजर और देवल कलाप्रेमी है, अत भावुक हृदय और मानवतावादी। देवल खिजर को सच्चे दिल से प्यार करती है, वह भी इसे चाहता है। देवल की निगाह मे खिजर राक्षसो की नगरी मे अकेला देवता है और खिजर उसे किसी भी मूल्य पर अपने से दूर नही होने देता। खिजर पुण्य की जीवित प्रतिमा है, उसकी आँखो मे मनुष्यता का प्यार है। इन दोनो क सच्चे प्रेम के द्वारा ही माहरू और कमलावती के सम्बन्ध भी फिर से अच्छे बनते है।

प्रेमीजी के चरित्र चित्रण की भारी विशेषता यह है कि उनके ऐतिहासिक पात्र अपने ऐतिहासिक व्यक्तित्त्व को सुरक्षित रखते हुए भी वर्तमान जीवन का प्रतिनिधित्त्व

करते है। श्री 'नलिन' के अनुसार ऐतिहासिक नाटको के चरित्रो मे रग भरते हुए 'प्रेमी'जी ने भारतीय रस-सिद्धान्त का बहुत ध्यान रखा है। साधारणीकरण के अनुसार ही अधिकतर चरित्रो का निर्माण किया है। यद्यपि जीवन के उत्थान-पतन, मानस का द्वन्द्व और भावसघर्ष भी समान और उचित अनुपात मे मिलता है।

सामाजिक नाटको के पात्रो के चरित्र निर्माण मे व्यक्ति-वैचित्र्य के प्रति आग्रह है। 'बन्धन' मे प्रकाश का चरित्र, उदाहरण के लिए लिया जा सकता है। वह शरारती है, शिकारी है, किन्तु उसके हृदय मे मानवता का सागर उमडता हुआ दिखाई देता है। लक्ष्मण को दस रुपये दे जाता हे, उसे अपने बाप की तिजोरी की चाबी दे देता है, जिससे कि वह वहाँ से रुपया चुरा सके । लक्ष्मण जब पिस्तौल चलाकर भागता है और रायबहादुर घायल होकर गिरता हे तब भी वह सारा अपराध अपने ऊपर ले लेता है। प्रकाश का चरित्र विस्मयजनक उलझन और अभूतपूर्व विलक्षणता से ओत-प्रोत है। इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण सबसे अलग और कौतूहलजनक हे। अधिकतर लोग अनेक कष्टो, अपराधो या असफलताओ को भूलने के लिए शराब पीना आरम्भ कर देते है, परन्तु प्रकाश मानवता भूलने के लिग शराब पीता है। यदि वह मानवता को जागृत रखता है तो अपने पिता के शोषण का उसे विरोध करना पडता है। होश मे रहकर विरोध नही करता तो मानवता से गिरता है। विरोध करता है तो पिता के मार्ग मे काँटा बनता है। इस प्रकार वह अपने चरित्र का आप ही प्रतिनिधि है। किसी वर्ग का प्रतिनिधि नही। प्रेमीजी ने इसके माध्यम से व्यग्यात्मक शैली अपनाकर नाटक को भी प्रभावोत्पादक और विचारोत्तेजक बनाया है।

मालती, मोहन और सरला आदर्शवादी पात्र है। मोहन और सरला गाँधीवादी दृष्टिकोण रखते है। प्रेम द्वारा हृदय-परिवर्तन ही इनके जीवन का लक्ष्य है। सरला का चरित्र आदि से अन्त तक गाँधीवादी आदर्श से जकडा हुआ है। मोहन और प्रकाश ने पूँजीवाद के विरुद्ध लडे, मजदूरो की सहायता कर मानवता का परिचय दिया, परन्तु सरला को उनका मार्ग पसन्द नही। हिसात्मक क्रान्ति वह नही चाहती थी। अहिसा का समर्थन करती है। सरला के द्वारा वास्तव मे लेखक ने हिंसा पर अहिंसा की विजय दिखाई है।

'छाया' के चरित्रो को भी प्रेमीजी ने आदशवादी ही रखा है, यद्यपि रजनीकान्त और माया के चरित्रो को पर्याप्त मात्रा मे यथार्थवादी बनाने की चेष्टा की गई है। माया सब कुछ करके भी प्रकाश की सहायता कर आदर्शवाद के शिखर पर आ बैठती है। रजनीकान्त मे व्यक्ति-वैचित्र्यवाद की झलक है, किन्तु वह भी शकर को उपदेश करता हुआ आदर्शवादी भावनाओ से जकड जाता है। यथार्थ जीवन जीता

हुआ भी माया और ज्योत्स्ना का भाई बना रहता है। छाया एक गौरवशालिनी आस्थावान् पत्नी है ही। एक आदर्श भारतीय पतिव्रता नारी की भाँति यह अपने पति की दुर्बलताओ का भी समादर करती है।

प्रेमीजी के सामाजिक नाटको मे क्रमश यथार्थवाद की ओर पगनिक्षेप दिखाई देता है। 'बन्धन' मे थोडा यथार्थवादी चित्रण है, 'छाया' मे यथार्थवादी नीव मजबूती के साथ रखी गई है। 'ममता' मे यथार्थवाद उभरकर आया है। रजनीकान्त, विनोद, लता, कला और यशपाल के चरित्र किसी विशेष आदर्श के प्रति आग्रहशील नही दिखाई देते। कला के प्रति आसक्त होते हुए भी लता से विवश होकर विवाह कर लेने मे आदर्शवाद की झलक भले ही आ गई हो, किन्तु यह विवाह किसी महान् आदर्श से प्रभावित होकर नही किया गया। लता और कला के चरित्रो मे स्त्री-सुलभ स्वाभाविक ईर्ष्या रखी गई है। विनोद आरम्भ से अन्त तक चालाक और मक्कार है। यशपाल के चरित्र मे कोई विशेषता नही दिखाई देती। यदि यह किसी प्रकार का आक्षेप न माना जाय तो कहा जा सकता है कि प्रेमीजी सामाजिक नाटको मे चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उतने सफल नही है जितने ऐतिहासिक नाटको मे। सामाजिक नाटको मे, विशेषकर चरित्र-प्रधान नाटको मे जिस अन्तर्द्वन्द्व के उभरने की अपेक्षा होती है, वह नही है। इसका कारण शायद यह हो कि इन सामाजिक नाटको मे भी प्रेमीजी घटनाओ के प्रति आग्रहशील रहे है। 'ममता' नाटक तो एक प्रकार से है ही घटना-प्रधान। विनोद को छोडकर अन्य पात्रो का चरित्र विशेष उभरकर सामने नही आया।

अन्त मे एक बात और। प्रेमीजी के नाटको मे विभिन्न प्रकार के पात्रो का समावेश हुआ है। उनके नाटको मे शैशव मे वृद्धावस्था तक के विभिन्न आयु के पुरुष तथा नारीपात्रो एव विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाले चरित्रो का उपस्थापन हुआ है। प्रेमीजी के नाटको मे उपलब्ध होनेवाले पुरुष-पात्रो को विविध वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है। जैसे—

१ राजनीतिक कुचक्रो के सघर्षशील स्वरूप से विरक्त होकर जीवन में माधुर्य का सचार करने के आकाक्षी राज-पुरुष —दारा, मेवाड के महाराणा।

२ राजनीतिक षड्यत्रो की योजना करने अथवा उनमे भाग लेनेवाले राज-पुरुष तथा इसी प्रकार के अन्य राजकीय व्यक्ति —'शपथ' मे धन्यविष्णु और 'विषपान' मे अजीतसिंह और जवानदास।

३ देश-रक्षा के लिए सन्नद्ध एव शास्त्र-सचालन मे कुशल उत्साही वीर युवक — 'शपथ' मे विष्णुवर्धन, वत्सभट्ट, जयदेव, धर्मदास।

४ प्रेम की मधुर कल्पनाओ मे लीन अथवा प्रेम की सजीव प्रतिकृति लगनेवाले युवक पात्र — 'शपथ' मे विष्णुवधन और सुहासिनी।

५ समाज के आर्थिक वैषम्य से पीडित मानवतावादी श्रमिकवर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्ति —'बन्धन' के पात्र ।

नारी-पात्रो का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है —

१ राज-नियन्त्रण से त्रस्त होकर राजकीय जीवन से विरत होने की इच्छा रखनेवाली राजमहलो की नारिया —'विषपान' की कृष्णा ।

२ राजनीति मे सक्रिय रूप से भाग लेनेवाली —जहाँनारा, सुहासिनी, मन्दाकिनी, उमा, सरस्वती, जेबुन्निसा आदि ।

३ प्रेम की अनुभूति मे लीन —सुहासिनी, मन्दाकिनी ।

४ ललितकलाओ की प्रेमिकाएँ —स्वप्नभग की बालिका, विषपान की कृष्णा ।

उल्लेखनीय बात यही है कि उनके पात्र विशिष्ट गुणो से सम्पन्न होने पर भी अतिमानवीयता से युक्त नही होने पाये है ।*

३ कथोपकथन —नाटक का अन्तर्दर्शन पात्रो की बातचीत से ही हो सकता है । कथावस्तु की व्याख्या भली प्रकार कथोपकथनो के आधार पर ही की जा सकती है । पात्रो के चरित्र की पहचान के लिए उनके सम्वादो से बढकर दूसरा सुलभ साधन और नही है । कथानक का विकास और पात्रो के चरित्र का निदर्शन कथोपकथनो द्वारा ही होता है । इस दृष्टि से आवश्यकता इस बात की है कि नाटक के उद्देश्य और वृत्ति के अनुकूल उनमे भाव और भाषा की सगति बनी रहे । कथोपकथनो की भाषा भावानुकूल हो । प्राचीन आचार्यो ने कथोपकथन के तीन भेद दिये है—नियतश्राव्य, सर्वश्राव्य और अश्राव्य या स्वगतकथन । प्रेमीजी के कथोपकथन जहाँ भावानुकूल भाषा से युक्त है, वहाँ उन्होने कथोपकथन की उक्त तीनो प्रणालियो का यथावसर उपयोग किया है । वर्तमान नाटककारो मे स्वगतकथन की प्रवृत्ति कम होती जाती है, स्वय प्रेमीजी इस सम्बन्ध मे कहते है —'इस नाटक मे स्वगत एव एकान्त-भाषण सर्वथा नही है । स्वगत-भाषण तो अस्वाभाविक है ही और एकान्त-भाषण कही स्वाभाविक हो सकता है—जैसे किसी पागल के चरित्र मे—किन्तु अधिकाश मे अस्वाभाविक ही होता है । एकान्त-भाषण मे पात्र के मस्तिष्क मे चलनेवाला विचार-सघर्ष ही प्रकट होता है । किन्तु क्या स्वाभाविक जीवन मे कोई इस प्रकार सोचने की क्रिया करता है कि वह चिल्लाकर बडबडाने लगे ?' (कीर्ति-स्तम्भ) बाद के कुछ नाटको मे एकान्तकथन के प्रति आग्रह कम है, किन्तु जहाँ भी पात्र के मस्तिष्क मे चलनेवाले विचार-सघर्ष की अभिव्यक्ति का अवसर आया है, वहाँ एकान्तकथन है ही ।

*सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रथ, पृष्ठ ७५९ ७६०

सच तो यह है कि एकातकथन रखते हुए भी उनमे भद्दापन प्रेमीजी ने नही आने दिया। धीरे धीरे एकातकथन कम करते जाने मे ही उनकी कला का विकास हुआ है। 'स्वप्न भग' नाटक को छोडकर प्राय सभी नाटको मे एकानकथन का सन्तुलन है। इस नाटक मे एकातकथनो की अच्छी-खासी भीड लगी है। भावोच्छ्वास से पूर्ण होने के कारण शायद ऐसा हुआ है। आवेश या उत्तेजना की अवस्था मे ताज, बादल, तारे या चॉद को देखकर एकातकथन चल पडते है। औरगजेब, दारा, शाहजहाँ, रोशनआरा, जहाँआरा, प्रकाश, मालिन, सैनिक सभी कोई एकात भाषण मे व्यस्त दिखाई देते हे। इसके अतिरिक्त दूसरे नाटको मे यह त्रुटि नही है। 'उद्धार', 'शतरज के खिलाडी', 'कीर्ति-स्तम्भ', 'शपथ', 'सरक्षक', 'सवत्-प्रवर्त्तन, 'ममता' आदि इस त्रुटि से सर्वथा दूर है। 'शिवासाधना', 'छाया' और 'रक्षा-बन्धन' मे एकातकथन उपयुक्त और यथास्थान आये है।

पात्रो के चरित्र की विशिष्टता के समय विशेषकर एकातकथनो का प्रयोग हुआ है। षड्यत्र के लिए उद्यत, प्रतिशोध की ज्वाला से प्रज्वलित, युद्ध की विभीषिका से तग, प्रेम की व्यथा से पीडित, कर्त्तव्यपथ पर चलने के लिए मूक बलिदान की इच्छा रखने आदि के अवसरो तथा अतृप्त भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए एकात-कथनो का प्रयोग किया गया है। 'शिवा-साधना' और 'प्रतिशोध' मे इस प्रकार के कथोपकथन उपलब्ध होते ह। रोशनआरा, जेबुन्निसा, औरगजेब, आदि के एकात-कथन इसके लिए देखे जा सकते हैं।

जैसाकि पहले कह आये है, सफल सभाषण वही हैं जो कथानक को अग्रसर करे या चरित्र पर प्रभाव डाले। प्रेमीजी के नाटको के पहले ही दृश्य मे प्राय ऐसे कथोपकथनो का प्रयोग किया गया है जो सघषण या अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति कर कथा की ओर सकेत करते है। 'रक्षाबन्धन' मे धनदास, महाराणा और यवनो के परस्परित युद्ध का सकेत करता है। इस प्रकार आनेवाले युद्ध की सभावना आरम्भ से ही दिखाई देने लगती है। आगे चलकर महाराणा के विलासी चरित्र और विक्रमसिह, भीलराज तथा बाघसिह के वीर चरित्रो के सभाषण इस सघर्ष को और भी सघन बना देते है। इनसे कथानक मे सघर्ष दिखाने के साथ-साथ पात्रो के चरित्र पर भी प्रकाश पडता है।

'शिवा-साधना' के प्रथम दृश्य मे शिवाजी, तानाजी, बाजी और येसाजी के सम्वाद भावी क्रान्ति की ओर तो इगित करते ही है, साथ ही शिवाजी के चरित्र की महानता के द्योतक भी है—'मेरी साधना का स्वरूप यही है, जिसका चित्र तुम्हारे अन्तर का असन्तोष रात-दिन तुम्हारी आँखो के सामने खीचता रहता है—मेरे शेष जीवन की एकमात्र साधना होगी भारतवर्ष को स्वतत्र करना, दरिद्रता की जड खोदना, ऊँच-नीच की भावना और धार्मिक तथा सामाजिक दोनो प्रकार की क्राति करना।'

'प्रतिशोध' नाटक मे प्राणनाथ प्रभु का कथन—'आह ! वह दिन कब आयेगा जब प्यारा देश स्वतत्र हो सकेगा।' और लाल कुँवरि को अपने पति की सूचना इन शब्दो मे देना—'शत्रु ने उन्हे घेर रखा है, इसलिए वे फूलो के स्थान पर नर-मुडो की माला माँ के चरणो पर चढा रहे हे।' इस प्रकार के वार्तालाप नाटक के सघर्ष को तो व्यक्त करते ही है, साथ ही प्राणनाथ प्रभु के स्वतत्रता-प्रेमी चरित्र और लाल कुँवरि के वीर और साहसी चरित्र पर भी प्रकाश डालते हे।

'आहुति' मे जो सघर्ष, शरणागतवत्सलता और कूटनीति है, उसके दर्शन भी आरम्भ से ही होने लगते है। अलाउद्दीन का एकान्तकथन भावी घटनाओ की ओर तो सकेत करता ही है, साथ ही अलाउद्दीन के चरित्र पर भी प्रकाश डालता है—'बहादुर मीर महिमा ! तुम्हे जिन्दा छोडकर मैने तुम पर दया नही की। राजपूती घमड मे कोई न-कोई राजा तुम्हे जगह देगा और मुझे उसका मुल्क अपनी हुकूमत मे शामिल करने का मौका मिलेगा। एक तीर से दो निशाने मारे है। दिल्ली के अमीरो मे महिमा की इज्जत और रोष बहुत बढ गया था। न जाने किस दिन ये मिलकर मेरे ही खिलाफ उठ खडे होते। चलो, एक काँटा तो साफ हुआ।' प्राय सभी नाटको मे इसी प्रकार सावधानी बरती गई है।

प्रेमीजी के कथोपकथनो की एक और विशेषता है, युद्ध, करुणा आदि के प्रसगो की सूचना भी वे किसी पात्र के कथोपकथनो द्वारा दिलाते है, इससे इन प्रसगो की भयावहता और साघातिकता कम हो जाती है। 'विषपान' की कृष्णा के वैधव्यपूर्ण जीवन की साघातिकता को आरम्भ मे कम करने की चेष्टा की गई है। कृष्णा के वार्तालाप भावी सूचना की अशुभता के लिए पहले ही पाठक या दर्शक को सचेत कर देते है —'सचमुच माँ, मेरा भी जी चाहता है कि कोयल बनकर उस आम की सबसे ऊँची फुनगी पर बैठकर मधुर गीतो से सारे उपवन को गुँजा दूँ। पक्षी बनकर ऊपर नीले आकाश मे उडती ही चली जाऊँ। सागर की लहर बनकर नाचूँ। सूर्य की किरण बनकर फूलो का मुँह चूमूँ। मैं सर्वथा स्वतन्त्र और स्वच्छन्द रहना चाहती हूँ।'

'स्वप्न-भग' मे दारा की दयनीय दशा और उसके करुण अन्त के शब्द-चित्र को प्रकाश, वीणा और जहाँनारा के कथोपकथनो द्वारा बडी कुशलता से अकित किया गया है। मृत्यु की सूचना जहाँनारा के कथोपकथन द्वारा दिलाई है। नादिरा की मृत्यु का समाचार प्रकाश द्वारा मिलता है। 'साँपो की सृष्टि' मे तो सभी क्रूर-कर्मों की चर्चा पात्रो के सम्वादो द्वारा होती है।

पात्रो के कथोपकथनो के माध्यम से प्रेमीजी ने अपनी विचारधारा को भी अभिव्यक्ति दी है। साहित्य मे लेखक का व्यक्तित्व, उसके विचार प्रतिध्वनित हुआ ही करते है। महात्मा गाँधी की मृत्यु से देश विचलित हो उठा था, सुधी विचारको

ने गाधीजी के बलिदान पर अपने विचार व्यक्त किये थे। प्रेमीजी ने 'स्वप्न-भग' मे गाँधीजी के बलिदान के प्रति दारा की मृत्यु पर प्रकाश से जो कहलवाया है, वह स्वय उनकी अपनी वाणी कही जा सकती है —'आज एक महान् स्वप्न भग हो गया। क्या राष्ट्रीय एकता के लिए एक महात्मा का बलिदान व्यर्थ जायगा ? क्या भारत की भावी पीढियाँ इस महान् बलिदान को भूल जायँगी हिन्दुस्तान ! क्या तू इस आवाज को सुनेगा ? सुनकर कुछ करेगा ?'

कला और साहित्य के सम्बन्ध मे प्रेमीजी ने अपने विचार पात्रो के सम्वादो के माध्यम से व्यक्त किये है। 'उद्धार' की मालती कहती है—'कला अपने आपमे निर्दोष है, इसे जिस प्रकार के हृदय-प्याले मे रखोगे, वैसे ही यह दिखाई देगी।' प्रेमीजी की जेबुनिन्सा कहती है—'मनुष्य अपनी खुशी और अपनी व्यथा व्यक्त किए बिना नही रह सकता। यही अपनी भावनाओ को व्यक्त करना तो कला है। 'शपथ' मे कला के सम्बन्ध मे कचनी और वत्स के विचार प्रेमीजी के ही विचार है। वत्स कहता है –'साहित्य और कला ही अमृतफल है। साहित्य-सृष्टा और कलाकार मरता नही। काल भी उसे मार नही सकता।' साहित्य की सोद्देश्यता पर प्रकाश डालता हुआ 'वत्स' कहता है—' मैंने सोचा है कि स्वाधीनता-प्रेम, देशभक्ति और वीरत्त्व की भावनाओ से ओत-प्रोत नाटको के अभिनय द्वारा जन-मन के यौवन को जाग्रत किया जाय।' और यही कारण है कि प्रेमीजी के नाटको के कथोपकथन उद्देश्यपूर्ण है। नाटको के उद्देश्य की चर्चा आगे की जायेगी। कथोप-कथनो मे जो नाटकीयता होनी चाहिए, उसकी चर्चा अभिनेयता के प्रसग मे की जा चुकी है।

४ **देशकाल** — पात्रो के व्यक्तित्व मे स्पष्टता तथा वास्तविकता लाने के लिए, पात्रो के चारो ओर की परिस्थितियो, वातावरण तथा देशकालिक विधान के वर्णन की विशेष आवश्यकता पडती है। नाटक मे देशकाल की समस्या पर विचार करते हुए ग्रीक आचार्यो ने स्थल, कार्य और काल की एकता पर जोर दिया था। किन्तु, सकलनत्रय की प्राचीन व्याख्या को मान्यता नही दी जाती। काल-सकलन से आज यही अथ लिया जाता है कि चाहे घटनाओ के घटित होने मे कितना ही समय क्यो न लगता हो, उसको रगमच पर घटित होते हुए इस प्रकार प्रदर्शित किया जाय कि दैनिक घटनाओ के बीच मे जो समय व्यतीत हो उस पर दर्शक का ध्यान न जाय। कार्य की एकता का अर्थ है कथावस्तु की अविच्छिन्नता तथा एकरसता। घटनाओ का पूर्वापर रूप इस भाति स्थिर किया जाना चाहिए कि बीच की साधारण बातो पर लोगो का ध्यान ही न जाय और साथ ही कथानक की सम्पूर्णता भी नष्ट न हो।

असल मे देशकाल की अन्विति का अर्थ है कि नाटको मे जो दृश्य दिखलाये जा रहे है उनमे 'यथार्थ' पात्र के जीवन-व्यापार का सामजस्य, स्थान और समय के विचार से अघटनीय-सा न लगे। तीन-चार घटे के अभिनय मे विभिन्न स्थलो मे घटित वर्षो की घटनाओ को इस कलात्मक रूप से प्रत्यक्ष करना कि दर्शक को मालूम होता रहे कि हम उतने ही दिनो की घटना को प्रत्यक्ष देख रहे है, देशकाल की अन्विति कहलाता है। इसलिए कई अको मे प्रमुख घटनाओ को दिखाकर यवनिका गिरा दी जाती है, जिससे काल के अध्यवमान के साथ-साथ तत्कालीन घटनाओ का भी सक्षिप्त बोध हो जाता है। वास्तव मे देशकाल के सकलन का अनुभव लेखक इतना नही करता जितना कि दर्शक अपने सामान्य ज्ञान द्वारा कर लेते है। प्रेमीजी अपने नाटको मे जो दृश्यपरिवर्तन और अको का विभाजन रखते है, उससे देशकाल का सरक्षण स्वत हो जाता है। दृश्य विधान भी उनका इतना परस्पर सम्बद्ध है कि स्थल की एकता बनी रहती है। कथा की शृ खला तो प्रेमीजी कही टूटने नही देते।

जहाँ तक देशकाल का सम्बन्ध तत्कालीन परिस्थितियो से है, प्रेमीजी को इसमे भी सफलता प्राप्त हुई है। प्रेमीजी के नाटक प्राय ऐतिहासिक है, और उन्होने इतिहास के वातावरण की पूर्ण रक्षा करने का प्रयत्न किया है। राजपूत जाति विलासप्रिय, रूढि की उपासक, आन की पक्की और अदूरदर्शी रही है। प्रेमीजी के नाटको मे यह राजपूती वातावरण भली प्रकार अभिव्यक्त हुआ है। परस्पर की कलह, ईर्ष्या-द्वेष, ऊँच-नीच का भेद भाव आदि दुष्प्रवृत्तियाँ इतिहास की भाँति ही चित्रित की गई है।

"प्रेमीजी ने अपने नाटको की कथावस्तु मे सम्बन्धित ऐतिहासिक युग की राजनीतिक स्थिति का चित्रण करने के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए विविध सामाजिक कुरीतियो और दोषो की विवेचना कर अपने चिन्तन की गहनता का भी उपयुक्त परिचय दिया है। उन्होने अपने नाटको मे राजस्थान के तत्कालीन राजप्रासादो मे नारी-जीवन की विवशताओ की ओर भी मार्मिक सकेत किये है। उस समय के राजाओ एव समाजो की विलास-स्थिति चित्रण करना भी उन्हे अभीष्ट रहा है, किन्तु उनके नाटको मे इसकी अधिक व्याप्ति नही हुई है।"[१]

'रक्षाबन्धन' मे तत्कालीन विलास को विक्रम के दरबार मे नर्तकी के नृत्य द्वारा व्यक्त किया गया है। राजपूत त्यौहार मनाने मे भी प्रवीण रहे है। रक्षा-बन्धन का त्यौहार नाटक मे धार्मिक वातावरण को अकित करता है। धनदास के द्वारा तत्कालीन अर्थ लोलुपता की ओर भी सकेत किया गया है। तत्कालीन

१ सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ७५७

राजनैतिक क्षेत्र मे साम्प्रदायिक वातावरण को समाप्त कर देने की जो भावना धीरे-धीरे उभरने लगी थी, उसकी ओर भी विक्रम के द्वारा हल्का-सा इशारा कर दिया है —'हिन्दू और मुसलमान, ये दोनो ही नाम धोखा है, हमे अलग करनेवाली दीवारे है।' हुमायूँ तो एकता का प्रतीक ही है।

'प्रतिशोध' मे आन्तरिक कलह और ईर्ष्या-द्वेष का वातावरण हीरादेवी के द्वारा व्यक्त किया गया है। 'आहुति' मे राजपूतनियो के जौहर-व्रत की धार्मिक कट्टरता का जिसका राजनीति से सीधा सम्बन्ध है, चित्रण किया गया है। 'विषपान' राजपूतो की पारस्परिक कलह की कहानी है। नाटक मे राजपूतो की प्रभुता की प्यास का चित्रण किया गया है। ऊँच-नीच के भेद-भाव को भी चित्रित किया गया है। 'उद्धार' मे तत्कालीन लम्पटता और स्वार्थ का, आन-रक्षा के लिए त्याग और बलिदान का अच्छा चित्रण मिलता है। 'शपथ' मे प्रेमीजी ने भाव और भाषा दोनो का आश्रय लेकर सास्कृतिक वातावरण उत्पन्न करने की चेष्टा की है। हूणो के आतक का, विष्णुवर्धन के शौर्य का सुन्दर चित्रण सघर्ष, वीरता और युद्ध के वातावरण को तीव्रता प्रदान करता है। कचनी के सहयोग से जहाँ एक ओर राजनीति बदली दिखाई देती है वहाँ तत्कालीन विलासी राजाओ का चित्र भी सामने आ जाता है। कला और साहित्य देश के जागरण मे हाथ-बँटाते थे, इसका भी पताच लता है।

'भग्न-प्राचीर' मे तत्कालीन हिन्दू और मुसलमानो की मनोदशा का चित्रण है। दोनो जातियाँ परस्पर ईर्ष्या और घृणा से भरे हृदय लिये हुए थी। नाटक से पता चलता है कि तत्कालीन देश का धार्मिक, सामाजिक और सास्कृतिक जीवन बडा दयनीय और विकलाग था। जातिधर्म के नाम पर लडाइयाँ होती थी। राष्ट्रीयता का अभाव था। स्त्रियाँ भी राजकाज मे हाथबँटाती थी। व्यापारी और किसानो की दशा अच्छी न थी, वे भयभीत थे।

'प्रकाश-स्तम्भ' से पता चलता है कि अत्याचारी शासन के विरुद्ध लोग सिर उठाने लगे थे और प्रजातन्त्र की भावनाएँ उभरने लगी थी। बाप्पा रावल जन-जागरण का अग्रदूत है, जो कि नाटक का नायक है। महिलाओ मे महत्त्वाकाक्षा और स्वाभिमान की भावना थी। धीरे-धीरे राष्ट्र-भावना उत्पन्न होने लगी थी और जाति-भेद की सकुचित सीमाओ को तोडने के प्रयत्न होने लगे थे।

'कीर्ति-स्तम्भ' मे राजपूतो की आपस की फूट, तुच्छ स्वार्थ के लिये विरोधियो से मिल जाना, षड्यत्रो से काम निकालना, देश का छोटे-छोटे राज्यो मे विभाजित होना, राजनीति मे पुरोहितो से परामर्श, युद्ध मे नारियो का सैनिक वेश मे भाग लेना, स्वार्थान्धता आदि बाते तत्कालीन परिस्थितियो पर प्रभाव डालती है। युद्धो के कारण जीवन अस्थिर था, नारी-सम्मान था, समाज मे ऊँच-नीच की

भावना थी, सेठ लोग राज्य-भक्त थे आदि सामाजिक दशा का पता भी इस नाटक से चलता है। भगवान् शिव और शक्ति के प्रति आस्था थी, जैसा कि प्राय नाटको मे दिखाया गया है। आत्मा की अमरता, तीर्थस्थान आदि पर विश्वास तत्कालीन धार्मिक विचारधारा का पता देते है।

'सरक्षक' मे देश का गृह-कलह, पारस्परिक सघष, राजपूती आतक का वातावरण प्रस्तुत किया गया है। नाटक से यह भी पता चलता है कि किस प्रकार अग्रेजो ने उस समय भारतीय राज्यो मे सरक्षक सेना रखने के लिए सधियाँ करने की नीति चालू कर रखी थी।

'विदा' मे बताया गया है कि किस प्रकार औरगजेब-कालीन भारत मे धर्म और जाति के नाम पर नासमझ लोग पारस्परिक सघर्ष मे जूझकर राष्ट्रीय एकता को खडित करते थे। नाटक मे बताया गया है कि औरगजेब ने किस प्रकार राज-सत्ता को इस्लाम धर्म को फैलाने का साधन बनाया और हिन्दू-धम पर खुले आघात किये। छत्रपति शिवाजी और महाराणा राजसिह ने उसका विरोध किया लेकिन उसने नही माना। सारा देश आतकित हो उठा। नाटक से यह भी पता चलता है कि किस प्रकार औरगज़ेब के सगे-सम्बन्धी भी इस बात को अनुभव करने लगे थे कि उसकी आक्रामक नीति के कारण भले ही मुगल साम्राज्य की सीमाओ का विस्तार हो रहा है, लेकिन यह भीतर से खोखला होता जा रहा है। औरगज़ेब के पुत्र अकबर और पुत्री जेबुन्निसा ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। दुर्गादास ने मिलकर अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाई।

'सवत्-प्रवर्तन' से पता चलता है कि किस प्रकार देश का विलासी वातावरण विद्रोहियो को अत्याचार के लिए प्रोत्साहन देता था। ऊँच-नीच की भावना ने देश को खडित कर दिया था। राजा लोग कितने स्वेच्छाचारी और चरित्र के गिरे हुए थे, यह भी नाटक से पता चलता है। राजपुत्र होने पर भी दासी का पुत्र होने के कारण लडका राज्याधिकारी नही होता था। नाटक मे यह भी बताया गया है कि उस समय लोगो के मन मे धर्म तथा जातिवाद के नाम पर सुरलतापूर्वक क्रान्ति पैदा की जा सकती थी। धर्म के नाम पर वे सगठित हो सकते थे। जैन धर्म का बहुत प्रचार था। नारियो की स्थिति यद्यपि शोचनीय थी, किन्तु वे देशोद्धार मे सहायक होती थी। राष्ट्र-भावना उभरने लगी थी, जिसके फलस्वरूप राजा लोग अपने विलास का त्यागकर देश की रक्षा के लिए युद्धभूमि मे उतर आते थे।

'साँपो की सृष्टि' मे अलाउद्दीन खिलजी का पूरा युग मुखरित हुआ है। उसके काल की सम्पूर्ण क्रूरता, अग्निकाड, हत्याएँ, नृशसताएँ, निरकुशताएँ, षड्यत्र प्रतिफलित हुए है अलाउद्दीन खिलजी के अन्तिम दिनो को बडी ही कुशलता से चित्रित किया गया है। उसका गृहस्थ दु खी जीवन, चारो ओर प्रताडनाओ के

जाल बडी खूबी से दिखाये गये हैं। मलिक काफूर के सारे प्रभावो को सक्षिप्त कलेवर मे रखकर तत्कालीन स्वार्थपरता को व्यक्त किया गया है।

प्रसगवश अलाउद्दीन के जीवन की सभी घटनाएँ, भारत की उस समय की राजनीतिक स्थिति, भारतीय समाज की वे दुर्बलताए, जिनके कारण विदेशी यहाँ सफलता पा सके और विदेशियो के द्वारा किये गये नृशस अत्याचारो की झाँकियाँ कही-न-कही आ ही गई है।

ऐतिहासिक नाटको की भाँति ही सामाजिक नाटको मे वातावरण की यथार्थता दी गई है। वतमानकालीन शोषण, आर्थिक दुरवस्था, नैतिक पतन आदि चारित्रिक त्रुटियो की ओर लेखक ने ध्यान दिया है। 'बन्धन', 'छाया' और 'ममता' के पढने से आज का विषम वातावरण आँखो के आगे नाचने लगता है। आज अहिसा और गाधीवादी दशन का हमारे विचारो पर अधिक प्रभाव है। 'बन्धन' मे लेखक ने इसी का चित्रण किया है। 'बन्धन' सन् १६४१ मे लिखा गया था, तब भारत स्वतत्र नही हुआ था एव महायुद्ध की ज्वाला मे इसे जलना पड रहा था। 'बन्धन' के कथानक मे जहा-तहा उस समय की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति की झलक मिलती है। 'छाया' मे पाश्चात्य कामविज्ञान की झाँकी दी गई है, जिससे वतमान भारतीय युवको का मन-मस्तिष्क प्रभावित है। शकर से रजनीकान्त ने उसके मन की दशा का वर्णन किया है। साहित्यिक जगत् मे प्रकाशक और लेखक की जो समस्या बनी रही है, उसका भी अच्छा चित्रण हुआ है। आर्थिक विषमता और दुष्प्रवृत्तियो के शिकार परिवार किस प्रकार अपनी बहू-बेटियो को व्यभिचार के लिए विवश कर देते रहे है, आज की इस ज्वलन्त किन्तु दु खद समस्या का चित्र भी प्रस्तुत किया गया है, 'ममता' मे आज के जीवन मे जो प्रेम, कर्त्तव्य और वासना का द्वन्द्व चल रहा है उसकी झाँकी दिखाई गई है। इस प्रकार प्रेमीजी देशकाल का सरक्षण निरन्तर करते रहे हैं।

हाँ, एक बात अवश्य देखी जाती है कि प्रेमीजी के नाटको मे राजनैतिक वातावरण जितने विस्तार से चित्रित है, धार्मिक उतने विस्तार से नही। सामाजिक वातावरण राजनैतिक वातावरण की छाया मे ही चित्रित हुआ है। वास्तव मे धार्मिक वातावरण जितना छिन्न-भिन्न और विश्रृखलित था, उतना तो चित्रित किया ही गया है। प्रेमीजी ने जिस कालखड की घटनाओ को नाटको मे लिखा है, उनमे इससे अधिक और कुछ था भी नही।

५ **उद्देश्य**—नाटक के उद्देश्य से अभिप्राय उसके परिणाम-सकेत से है। असल मे नाटक का आरभ ही दूसरो के सम्मुख किसी वस्तु या व्यापार के प्रभावकारी अनुकरण से हुआ है। एक ओर जहा नाटक का उद्देश्य समाज-जैसा है वैसा ही रखकर उसकी विशेषताओ से उत्पन्न प्रश्नो को हमारे सामने लाना है, वहाँ दूसरी

इस बहुत बलिदानो के पश्चात् प्राप्त की हुई स्वतत्रता की रक्षा करनी है। अपनी दुर्बलताओ को दूर करना है और देश को सुखी और समृद्ध बनाना है। यह तभी सभव है, जब हम एकता के सूत्र मे बँधकर देश के उत्थान मे जुट पडे। महात्मा गाधी ने देश की एकता की रक्षा रखने के लिए प्राण दे डाले। भारत सब वर्गों, जातियो और धर्मों का है। सबमे भाईचारा होना चाहिए, सबको समान सुविधाएँ और अधिकार प्राप्त होने चाहिएँ, और सब राष्ट्रीयता की भावना से एक सूत्र मे बंधे रहने चाहिएँ, यही गाँधीजी की कामना थी। मैंने अपने कुछ नाटको के द्वारा उनकी इस कामना को सफल बनाने की दिशा मे थोडा-सा योगदान दिया है।' (विदा)

प्रेमीजी के ~~इन शब्दो से स्पष्ट है कि~~ नाटको का उद्देश्य राष्ट्रीय एकता है।

'प्रेमी'जी ने अपने नाटको मे दो भिन्न प्रतीत होती हुई हिन्दू-मुस्लिम सस्कृतियो को सयुक्त करने की चेष्टा की। 'रक्षा-बन्धन', 'शिवा-साधना', 'प्रतिशोध', 'स्वप्नभग', 'आहुति' आदि नाटको से हमे उनका एक दृष्टिकोण यह भी दिखाई पडता है कि राष्ट्रीय एकता सास्कृतिक एकता के बिना नही, और सास्कृतिक एकता तब तक दृढ नही बन सकती जब तक हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्म और सस्कृति का रहस्य उदार दृष्टि से समझने की चेष्टा नही करते। 'प्रेमी'जी ऐतिहासिक नाटको द्वारा यह सिद्ध करना चाहते है कि मुस्लिम-काल मे कई बार सास्कृतिक एकता के प्रयास हुए, किन्तु हर बार कट्टरता सफलता की बाधक बनती रही।'[1] अपने नाटको की भूमिकाओ मे ही नही कथानक के सगठन और पात्रो के कथोपकथनो द्वारा भी उन्होने इसी उद्देश्य की घोषणा की है।

'रक्षाबन्धन' के अन्त मे विक्रम और हुमायूँ का वार्तालाप साम्प्रदायिक एकता और पारस्परिक प्रेम की ओर सकेत करता है —

'हुमायूँ— हिन्दुस्तानी ही नही, इन्सान है। हमे अब दुनिया की हर किस्म की तगदिली के खिलाफ जिहाद करना चाहिए। हमारा काम भाई के गले पर छुरी चलाना नही, भाई को गले लगाना है, भाई को ही नही दुश्मन को भी गले लगाना है। दुनिया के हर एक इन्सान को अपने दिल की मुहब्बत के दरिया मे डुबा लेना है। बहन कर्मवती ने इस दरिया के दो बडे हिस्सो, हिन्दू और मुसलमानो को जिस मुहब्बत के धागे मे बाँध दिया है, वह कभी न टूटे, मैं खुदा से यही चाहता हूँ।

विक्रम— दोनो ही कौमे एक-दूसरे पर शासन करने की अभिलाषा छोडकर प्रेम करना चाहे, आपकी तरह प्रेम करना चाहे, तो यह धागा कभी न टूटेगा।'

'शिवासाधना' के शिवाजी, दिलेरखाँ और रामदास का भी यही लक्ष्य था। 'स्वप्नभग' के दारा का समस्त जीवन राष्ट्रीय एकता के लिए था। इसी एकता

१ डा० दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृष्ठ ४४५

के लिए उसने प्राणो की बलि दी। प्रकाश कहता है —'यहाँ न कोई हिन्दू है न मुसलमान—केवल उस 'एक'—उस खुदा—उस ब्रह्म का अलग-अलग घट मे प्रतिबिम्ब है। हम छाया के लिए लड रहे है, और वास्तव को भूल रहे हे। यही उस पूर्ण पुरुष दारा का सदेश हे।'

'शतरज के खिलाडी' के महबूब, रतनसिह आदि पात्र भी देश को एक सूत्र मे बाधने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हे। रत्नसिह कहता है 'मनुष्य को अपनी पशुता दूर करने का अवसर मिलना चाहिए। भारत की विश्रृखल वीरता एक सूत्र मे बँध जावे तो कितनी अच्छी बात है। यहाँ युद्ध के नगाडो की जगह शाति और प्रेम की बाँसुरी बजनी चाहिए। भारत मे चिरकाल से युद्ध की ज्वाला जल रही है। कला, व्यवसाय, साहित्य और समृद्धि का नाश हो रहा हे। इसलिए हमे सम्पूर्ण देश को एक सूत्र मे बाँधने का यत्न करना चाहिए।' यहाँ प्रेमीजी वतमान युद्धप्रिय देशो का भी मार्ग दर्शन कर गये है।

'विषपान' की कृष्णा ने एकता के लिए प्राणो की आहुति दी। 'उद्धार' की सुधीरा, सुजानसिह भी यही लक्ष्य रखते है। सुधीरा की मनोकामना हे कि उसका हमीर राजा और प्रजा का भेद-भाव मिटाकर मेवाड को गृह-कलह से बचाकर भारत की ढाल बन जाए। सुजानसिह कहता हे—'मेरा स्वप्न है जातियो की सीमाओ को तोडकर मानवता का निर्माण, प्रातीयता की दीवारो को गिराकर राष्ट्रीयता की स्थापना।'

'भग्न-प्राचीर' नाटक तो आदि से अन्त तक राष्ट्रीय एकता की भावना से ओत-प्रोत है। नाटक का नायक सग्रामसिह देश की बिखरी शक्तियो को एकता के सूत्र मे बाँधने का यत्न करता है। 'प्रकाश-स्तभ' का हारीत भी समन्वयवादी वृत्ति का है। कहता है —'उपाय है विभिन्न सस्कृतियो का समन्वय। यह आर्य है, यह द्रविड और यह यवन इस प्रकार सोचने की मनोवृत्ति हमे त्यागनी होगी। हमे किसी पर अपना धर्म, अपने व्यवहार, अपनी परम्पराएँ लादने की अभिलाषा छोडनी होगी, हमे एक-दूसरे से सामाजिक सम्पक बढाने होगे, हमे विजयी और विजित की भावना को नष्ट कर समान बन्धु बनकर रहना होगा। जिस अन्त कलह के दुष्परिणामो से देश खडित हो जाया करता है, उसका विशद चित्र 'कीर्ति-स्तभ' मे खीच कर राष्ट्रीय एकता की प्रेरणा दी गई है। 'सरक्षक' मे भी गृह-सघष के ही दुष्परिणाम दिखाये गये है। 'विदा' के अवसर का लक्ष्य भी राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रबल करना था, वह भी सम्मिलित भारत का निर्माण चाहता था —'दुर्भाग्य है इस देश का जहाँ ऐसे लोग बहुत थोडे है, जो व्यक्तिगत सत्ता और स्वार्थो से ऊपर उठकर अपने देश की सुख-समृद्धि के विषय मे सोचते हो, ऐसा हिन्दुस्तान उनकी कल्पना के बाहर है, जो न हिन्दुओ का हो, न मुसलमानो का, न राजपूतो का, न मराठो का, न किसी अन्य

जाति का, बल्कि सम्मिलित रूप मे सबका हो, जिस भारत मे सबको समान अधिकार प्राप्त हो—शासन मे समान आवाज़ हो।'

राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए प्रेमीजी ने नेताशाही के विरुद्ध प्रजातत्र को श्रेष्ठ माना है। अकबर के उक्त विचार भी इसी के पोषक है। जब तक देश के एक भी व्यक्ति मे कुशासन के प्रति असन्तोष है, तब तक देश की एकता का स्वप्न ही व्यर्थ है। 'शिवा-साधना के शिवाजी भी निरकुश शासक औरगज़ेब का अन्त कर प्रजा का शासन स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे। वे जननायक थे। रामदास भी शिवाजी को यही उपदेश देते रहे। 'प्रकाशस्तभ का बाप्पा, 'शपथ' का विष्णुवर्धन, 'सवत् प्रर्वतन' का विक्रम भी प्रजातत्र के समर्थक है। 'सवत्-प्रवर्तन' का विक्रम कहता है—'असल मे मैं निरकुश राजतत्र के ही विरुद्ध हूँ, जहाँ एक ही व्यक्ति के हाथो मे सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रित हो जाती है।'

राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए प्रेमीजी देश-प्रेम को, देश-भक्ति को, देश के प्रति श्रद्धाभाव को सर्वोपरि और आवश्यक मानते हैं। उनके प्राय सभी नाटको मे देश-भक्ति का स्वर सबसे ऊँचा है। 'प्रकाश-स्तभ' के हारीत के जैसे विचार ही प्रत्येक देशवासी के हो, यही उद्देश्य लेकर प्रेमीजी के नाटकोकी रचना हुई है। हारीत ने ज्वाला को समझाया था—'हमने देश के वास्तविक स्वरूप को नही जाना। हम अनुभव नही करते कि देश हमारी माँ है, हम उसकी गोद मे खेले हैं, उसके अन्न-जल से हमारा शरीर बना है, जिस प्रकार हमारी जननी के शरीर का प्रत्येक अवयव अविभाज्य है, उसी प्रकार हमारे देश का भी। हम उसकी सूची के अग्रभाग जितनी भूमि पर भी किसी विदेशी को प्रभुत्त्व स्थापित नही करने देगे। यही भावना हमे भारत के प्रत्येक धडकनेवाले हृदय मे भर देनी है। देश को माँ समझने की भावना ही वह आधार है, जिसका अवलम्ब लेकर भारत के सम्पूर्ण मानव-समाज को सगठन मे बाँधा जा सकता है।'

देश के नव-निर्माण का उद्देश्य लेकर भी प्रेमीजी के नाटक लिखे गये हैं। इसलिए प्रेमीजी ने बताया है कि हम रूढियो का परित्याग करे, गरीब अमीर की भावना को दूर करे, छुआछूत का भेद मिटावे, और जितने भी दुर्गुण हैं, उनको समाप्त कर डाले तभी देश का नव-निर्माण होगा।

'प्रकाश-स्तभ' का बाप्पा और हारीत वास्तव मे आज के भारत के लिए प्रकाश-स्तभ का काम कर सकते हैं। बाप्पा रूढियो का विरोध करता हुआ कहता है—

'समाज मे वैषम्य को परिपुष्ट करनेवाली परम्पराएँ अति प्राचीन हैं, प्रथम तो यह धारणा ही भ्रम मात्र है, और यदि प्राचीन हो भी तो मानवता के सिद्धान्त के विरुद्ध, अस्वाभाविक और अन्यायपूर्ण परम्पराओ का अन्त करना मानव का कर्त्तव्य

है ।' बिना किसी धर्म, जाति और वर्ण की रेखाएँ खीचे व्यक्तिमात्र को सुविधाएँ दी जायेंगी तभी देश समृद्ध होगा । हारीत कहता है—'प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह किसी धर्म का पालनकर्त्ता हो, राज्य मे समान अधिकार और सुविधा प्राप्त होनी चाहिए तभी यह देश एकता के सूत्र मे बँधकर महान् शक्ति बन सकेगा ।'

छुआछूत की समस्या का अन्त करने की भावना लेकर हारीत कहता है — 'हमारा सम्पूर्ण समाज मानव शरीर की भाँति एक है, उसके प्रत्येक अग को हमे पुष्ट रखना है । उनमे परम्पर प्रतिस्पर्धा, घृणा या वैर नही होना चाहिए बल्कि सहानुभूति होनी चाहिए ।' बाप्पा भी स्पष्ट शब्दो मे कहता है,—'याद रखो, पवित्रता, सच्चरित्रता और वीरता किसी जाति या वर्ण विशेष की धरोहर नही है । यदि अनुकूल शिक्षा और वातावरण मे पोषित हो तो शूद्र मे भी मानवता के वे ही उच्च गुण आ सकते है, जो ब्राह्मण की सतान मे हो सकते है ।'

सीमाओ और मर्यादाओ के नाम पर जो मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद पैदा हो हो गया है, प्रेमीजी उसे भी मिटाना चाहते है । 'साँपो की सृष्टि' नाटक मे कमलावती कहती है —

'ये सीमाएँ ही मनुष्यता की घातक बन जाती हैं । ये मर्यादाएँ हमे दुर्बल बनाती है । मनुष्य मनुष्य मे भेद रखना ही तो हम भारतीयो की सबसे बडी भूल है । हमने ऐसे कठोर दायरे बना रखे है कि उनके बाहर योग्य-से-योग्य व्यक्ति भी नही निकल सकता । प्रतिभाएँ बन्द सीमाओ मे मुरझा जाती है । इस तरह राष्ट्र की शक्ति का अपव्यय होता है । वह घातक बन जाती है ।'

इसी प्रकार माहरू के मुख से छुआछूत के विरुद्ध कहलवाया गया है —'जब तक हिन्दुस्तानी विभाजित रहेंगे, एक-दूसरे के दु ख-दर्द मे शामिल नही होगे—तब तक सारे हिन्दुस्तानी एक जाजम पर बैठकर खाना नही खा सकेंगे—जब तक इनके यहाँ आठ घरो के लिए नौ चूल्हो की जरूरत रहेगी, तब तक अलाउद्दीन के अत्याचारो को कौन रोक सकता है । जो भारतीय विदेशियो से लडते समय भी युद्ध करने की अपेक्षा छूतछात पर ही अधिक ध्यान रखते है, उनका उद्धार कैसे हो सकता है ।'

गाँधीवादी समाजवाद के द्वारा ही देश का नव निर्माण हो सकता है, ऐसा मानकर ही प्रेमीजी ने 'स्वप्न-भग' मे दारा से कहलवाया है —"मैं धनी-निर्धन, विद्वान्-अविद्वान् और छोटे-बडे का भेद मिटाना चाहता हूँ । मैं चाहता हूँ कि ससार एक मजदूर के पुत्र की मत्यु का दु ख भी उतना ही अनुभव करे जितना कि वह शाहजहाँ की पत्नी की मृत्यु का करता है ।" इसके लिए प्रेमीजी अहिंसक क्रान्ति के समर्थक हैं । अपने सामाजिक नाटक 'बन्धन' मे सरला और मोहन अहिंसा पर ही बल देते है ।

नारी-जागरण भी प्रेमीजी के नाटको का उद्देश्य कहा जा सकता है। उनमे जितने भी कुसस्कार हैं, वे उनका अन्त देखना चाहते हैं। विधवा-विवाह, पर्दा-पर्था का अन्त और कायरता की समाप्ति वे चाहते है। किसी भी क्षेत्र मे नारी पीडित क्यो रहे ? बाल-विधवा-विवाह की समस्या पर 'उद्धार' मे विचार व्यक्त किये है। नाटक का नायक हमीर कहता हे —'समाज की मर्यादा ! दुध मुँही बच्चियो का विवाह कर देना और उनके विधवा हो जाने पर उ हे जीवन के सभी सुखो से वचित रखना, इसे तुम समाज की मर्यादा कहती हो ? नही कमला, यह घोर अत्याचार है। हमे समाज के पाखडो के विरुद्ध विद्रोह करना है।'

पर्दा-प्रथा नारी के लिए अभिशाप है। 'स्वप्न-भग' मे रोशनआरा के शब्द पर्दे का दुष्परिणाम दिखाकर पुरुष समाज को इसके लिए विद्रोह करने का सकेत करते है —'जब मेरे प्राण बाहर के ससार से मिलने के लिए रात दिन तडपते है तो मै अनुमान करती हूँ कि आठो पहर बुर्के मे बन्द रहनेवाली मेरी दूसरी बहनो का क्या हाल होगा।' नारी मे शक्ति उत्पन्न हो और वह भी सैनिक बनकर देश-रक्षा के लिए तत्पर हो, इस भावना को व्यक्त करने के लिए चारणी, ताडवी, कचनी, सरस्वती, श्यामा आदि पात्रो की रचना की गई है। नाटको के पुरुष-पात्र नारी को सैनिक वेष मे देखकर सन्तुष्ट होते है।

केवल उक्त आदर्शों की स्थापना के उद्देश्य से ही नही, बल्कि समाज और मानव की यथार्थ तस्वीर प्रस्तुत करने के उद्देश्य से भी आपने नाटक लिखे है। आपके सामाजिक नाटको मे यही चेष्टा दिखाई देती है। 'छाया' मे कवि की समाज द्वारा उपेक्षित स्थिति का मार्मिक चित्रण है। समाज और व्यक्ति के जीवन-विकास को शोषण किस प्रकार रोक देता है, यही 'छाया' नाटक मे दिखाया गया है। व्यक्ति के अन्तर की बेबसी, जीवन के अभाव और बाहरी पाखड तथा कृत्रिम रूप का हाहाकार इस नाटक मे चित्रित है। पूँजीवादी समाज ने व्यक्ति की स्थिति कैसी बना दी है, इसका रूप प्रकाश और माया के जीवन मे मिलता है। प्रकाश से रुपया वसूल करने के लिए जब कुर्कियाँ आती है तो नाटककार कहलवाता है —'रुपयेवालो के दिल नहीं होता। जिन लोगो के घर मे लाखो रुपये पडे है, वे भी दो दिन की मोहलत नही देते, एक पैसे की भी छूट नही देते।'

माया, जो रात को नसीम बनकर, अपने भाइयो को कालेज की शिक्षा और पिता के शानदार विलासी जीवन का क्रम जारी रखने के लिए अपना शरीर बेचती है, आडम्बरी समाज का चित्र इन शब्दो मे प्रस्तुत करती है—'उधर देखो, उस पलग की सफेद चादर पर इस नगर के न जाने कितने रईस युवक और बूढे भी अपने हृदय की कालिमा बिखरा गये है।'

'छाया' मे मानव के आर्थिक और सामाजिक दोनो ही प्रकार के जीवन के उत्थान की चेष्टा है। इसमे प्रेमीजी ने 'मानव' को साध्य या उद्देश्य के रूप मे देखा है, अन्य नाटको मे वह साधन मात्र है। 'छाया' मे आहत उपेक्षित मानव को आश्रय देने के लिए 'काम' का आधार प्रदान करने की भी झाँकी है। वास्तव मे इस नाटक मे समाज के आघातो से प्रताडित मानव के प्रति सहज सहानुभूति का भाव व्यक्त किया गया है।

'छाया' मे आर्थिक शोषण और विषमता का जो घातक रूप व्यक्ति के जीवन का रक्त चूसते हुए दिखाया गया है, 'बन्धन' मे वह और भी व्यापक रूप मे आया है। विषमता का भयानक रूप इसमे दिखाया गया है। इसमे बताया गया है कि पैसे के बल पर किस प्रकार नारी का सतीत्व तक खरीदा जा सकता है। वास्तव मे सामाजिक जीवन की आर्थिक समस्या को सुलझाने का प्रयास ही 'बन्धन' का मुख्य उद्देश्य है। आर्थिक समस्याओ का हल गांधीवादी रीति पर ही सुलझाया गया है। सरला का विचार है—'सत्याग्रह शत्रु का नाश या नुकसान नही करता। वह तो उसकी मरी हुई आत्मा को जीवित करता है।' वह प्रकाश को भी पिता का हृदय प्रेमपूर्वक परिवर्त्तित करने के लिए कहती है। मजदूरो के कष्ट-सहन और अहिंसात्मक रहने तथा मोहन के आदर्श चरित्र, उसके महान् आत्म-त्याग और अहिंसात्मक नेतृत्व के कारण रायसाहब का हृदय परिवर्त्तित हो जाता है। आर्थिक विषमता ही ऊँच-नीच की बुनियाद है। विषमता के दूर होने पर ही मानवता समान स्तर पर आ सकती है। मोहन और मालती का विवाह यही सिद्ध करता है।

इस प्रकार प्रेमीजी के नाटक विविध उद्देश्यो को लक्ष्य मानकर लिखे गये होने पर भी मूल लक्ष्य राष्ट्रीय एकता को लेकर ही रचे गए है।

६ **रस**—भारतीय साहित्य-शास्त्रियो ने रस की प्रतिष्ठा सबसे पहले नाटको मे ही की है। प्राचीन नाटको का मूल प्रयोजन ही रस परिपाक होता था। प्रेमीजी भारतीय पद्धति पर अधिक आग्रह रखते है, ऐसा तो नही कहा जा सकता, किन्तु रस परिपाक की ओर उनका ध्यान बराबर बना रहा है। उनके नाटको मे रस की अभिव्यक्ति नाटको को और भी अधिक प्रभावशाली बनाती है। क्योकि प्रेमीजी के नाटक युद्ध और सघर्ष को ही प्रधान मानकर चले है, अत वीररस तो प्रेमीजी के नाटको का प्रधान रस है, किन्तु प्रसगानुसार रौद्र, वीभत्स, करुण, शृगार, शान्त, हास्य, अद्भुत आदि रसो की आयोजना भी मिलती है।

वीररस के परिपाक के लिए या तो नाटक का नायक अपने क्रिया-कलापो और सम्वादो से सहायक होता है या फिर लेखक चारणी अथवा ऐसे ही किसी अन्य पात्र की योजना कर लेता है। वह पात्र अपने प्रोत्साहित वचनो या गीतो से वीररस

की अभिव्यक्ति करता है। 'रक्षाबन्धन' में श्यामा निराशा से भरा हृदय लिये गा रही होती है कि चारणी आकर उसके हृदय को उत्साह से भर देती है। वह कहती है ' तुम्ही सोचो बहन, रण-निमत्रण पर किसी सैनिक का एक क्षण का विलम्ब मेवाड की कीर्ति के अनुकूल हो सकता है? उस मेवाड की जिसकी क्षत्राणियाँ अपने हाथ से पतियो को देश की आन पर कुर्बान होने को सजाकर भेज देती हैं। हमारा देश पुत्र, पिता, भाई, प्रियतम, प्रियतमा, प्राण सभी से बढकर है, इस तथ्य को समझो।' चारणी के ये वचन श्यामा की मोहनिद्रा भग कर देते हैं और वह देश के लिए मर-मिटने का सकल्प कर लेती है। अपने पुत्र को भी जब वह देश के लिए भेज देती है तो पाठको का हृदय भी उत्साह से भर उठता है। कर्मवती तो वीररस की साक्षात् प्रतिमा है। उसका एक-एक शब्द वीर-दर्पपूर्ण है। जिस समय वह क्षत्राणियो को जौहर के लिए और राजपूतो को बलिपथ पर जाने के लिए ललकारती है तो वीररस जैसे हाथ जोडकर उसके आगे खडा हो जाता है। धनदास को लेकर हास्य-रस भी उत्पन्न किया गया है, इसमे व्यग्य भी है।

'शिवा-साधना' मे शिवाजी वीररस के अवतार हैं। रामदास और जीजाबाई के उपदेश उत्साह को और बढाते हैं। इस नाटक मे करुणरस और हास्यरस की भी अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। जीजाबाई की मृत्यु पर शिवाजी का करुण-विलाप दर्शनीय है – 'मेरी आत्मा का प्रकाश, आँखो की ज्योति, अन्तर का बल चला गया, अब शिवाजी एक मिट्टी का पुतला-भर रह गया। माँ माँ तो अब तुम न बोलोगी, सचमुच न बोलोगी! आह! क्या तुम चली गई? सुनो माँ, आज सह्याद्रि की चट्टानें भी आठ-आठ आँसू रो रही हैं। तुम शिवाजी ही की नही, महाराष्ट्र की ही नही, सम्पूर्ण भारत की मा हो! आँखे खोलो। यह क्या विडम्बना है? तुमने परतन्त्र देश की आँखें खोलकर स्वय आँखे बन्द कर ली। हाय माँ!!' तीसरे अक के छठे दृश्य मे मुगल और राजपूत सैनिको के वार्तालाप मे हास्यरस की सृष्टि की गई है।

'प्रतिशोध' मे छत्रसाल वीररस का केन्द्र है। बल-दीवान, प्राणनाथ प्रभु, शिवाजी छत्रसाल को उत्साह देते है। दुर्गा की स्तुतियाँ और भी उत्तेजित करती हैं। 'आहुति' मे वीररस का अच्छा परिपाक हुआ है। हम्मीरसिंह आलम्बन और अलाउद्दीन और उसके प्रयत्न उद्दीपन हैं। हम्मीर के ये वचन—'मेरी तलवार प्यासी है चाचा जी! उसे नर-रक्त चाहिए। नर-रक्त! यह फाल्गुन का महीना है। थोडे दिनो मे होली आनेवाली है। मेरा जी चाहता है, इस बार जी भरकर रक्त की होली खेली जाय'—उत्साह के सूचक है। उसका यह उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। विजय की प्राप्ति वीररस की चरमाभिव्यक्ति है। जौहर उसमे करुण वातावरण देकर उसे और भी प्रज्वलित करता है।

'स्वप्नभग' मे शान्त और करुणरस की अभिव्यक्ति हुई है। नादिरा और दारा के समस्त प्रयत्न शान्ति के लिए है। युद्ध के प्रति वैराग्यपूर्ण उक्तियाँ शान्तरस को बढावा देती है। अन्त मे दारा और नादिरा की मृत्यु करुणरस का परिपाक करती है। 'विपपान' मे कृष्णा का सम्पूर्ण जीवन ही करुणरस का भावोद्रेक है। कृष्णा का विषपान करुणा को भी करुणा करने के लिए कहता है। 'उद्धार' वीररस और हास्यरस को लिये हुए है। कमला का जीवन करुणरस का सचार करता है। कमला और जाल के कथोपकथनो मे हास्यरस की अभिव्यक्ति हुई है। 'शपथ' मे विष्णुवर्धन वीररस का आलम्बन है, हूणो की कायवाहियाँ उद्दीपन है, विष्णु की विजय-यात्रा मे उत्साह का परिपाक हुआ है। वत्स भट्ट, पावती आदि उत्साह की वृद्धि करते है। इस नाटक मे हास्य विनोद की भी अच्छी सृष्टि की गई है। उज्जयिनी की मधुशाला का दृश्य हाम्यरस का श्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है। आपसी बहस में दो शराबी बहस करने लगते है तो कोलाहल सुनकर मधुशाला का स्वामी वहाँ आ जाता है, फिर जो धर्मदास और जयदेव की उससे बातचीत होती है वह हास्यरस की अच्छी सृष्टि करती है—

'**मधु० का स्वामी**—यह कोलाहल कैसा ?

जयदेव—कोलाहल ! कोलाहल ! भैया कोलाहल किस वस्तु की सज्ञा है ?

धर्मदास—कोलाहल हालाहल का भाई है।

मधु०—बस चुल्लू मे उल्लू होगा।

धमदास—तुम मनुष्यो को उल्लू बनाने का व्यवसाय करते हो। अच्छा तो सब प्रकाशित दीपो को बुझा दो।

जयदेव—हाँ, बुझा दो और आकाश मे चन्द्रमा को भी हटा दो।

मधु०—क्यो ?

मधु०—अन्धकार होने पर तुम दिखाई पडे तो हम समझेगे कि हम उल्लू है और नही दिखे तो समझेगे तुम उल्लू हो।

मधु०—अच्छा बाबा उल्लू मै ही हूँ। अब तो घर जाओ।'

'भग्न-प्राचीर' मे वीररस प्रधान है। साथ ही शृगार, करुण और हास्य का भी समावेश हुआ है। नाटक का स्थायी भाव उत्साह है, बाबर आलम्बन है। युद्ध की तैयारियाँ, लोदी की हार आदि उद्दीपन है। राणा सग्रामसिह, भोजराज के प्रसग मे तथा बाबर की महफिल मे शृगाररस की, सीकरी की पराजय मे करुणरस की और बाबर के भिखारी वेशवाले प्रसग मे हास्यरस की झलक है। अन्त मे शान्त-रस का परिपाक हुआ है।

'प्रकाश स्तभ' मे शृगार और वीररस ही मुख्य है। नाटक का आरम्भ बाप्पा, युवतियो तथा चम्पा, पद्मा की हास परिहासमयी बातो से होता है, जिसमे शृगार की झलक है। पद्मा की उत्तेजना वीररस की सृष्टि करती है। बाप्पा जननायक बनकर शक्ति उपार्जित करता है। नाटक का अन्त फिर शृगाररस से होता है। 'शतरज के खिलाडी' मे वीररस का अच्छा परिपाक हुआ है। महाकाल और ताडवी ने वीरो को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक वीर-दर्पपूर्ण उक्तियाँ कही है। पहले अङ्क के तीसरे दृश्य मे न केवल वीररस बल्कि रौद्र और भयानक रसो की भी स्वीकृति है। ताडवी का महाकाल से बाते करना वातावरण को और भी कठोरता प्रदान करता है। किरणमयी की उक्तियाँ तो और भी अधिक वीर-दपपूर्ण है। काली के मदिर मे वह कहती है—'माँ, भवानी, इस भयानक काली रात मे—निराशा के घोर अन्धकार मे तुम्हारे ये तेजपूर्ण नेत्र आशा के दो नक्षत्रो की भाति चमक रहे है। तुम्हारी यह लाल जिह्वा तुम्हारे अनुचरो को आदेश दे रही है—'लाओ—रक्त लाओ—पिलाओ—जी भरकर पिलाओ।' और मा तुम्हारा खप्पर ससार के वीरो को चुनौती दे रहा है—'है कोई ऐसा वीर जो इसे भर दे।'

'कीर्त्ति-स्तम्भ', 'सरक्षक', 'विदा' और 'सवत् प्रवर्तन' मे वीर और शृङ्गार की व्यजना हुई है। 'विदा' मे अपेक्षाकृत करुण और शान्तरस की अधिक व्यजना है। दुर्गादास वीररस का, जेबुन्निसा और अकबर शान्त तथा करुणरस का आलम्बन है। 'सवत्-प्रवतन' मे बिक्रम, गर्दभिल्ल-दर्पण, भर्तृहरि, बेताल, सरस्वती वीररम के परिपाक मे सहायक है।

रस के सम्बन्ध मे एक बात कह देना अनुचित न होगा कि प्रेमीजी किसी शास्त्रीय पद्धति से बँधकर नही चले है, इसलिए उनके नाटको मे रस का विवेचन शास्त्रीय पद्धति पर खोज निकालने की चेष्टा करना उनके साथ अन्याय करना है। करुण, शृङ्गार आदि भी वीररस के लिए पृष्ठभूमि का काम करते दिखाई देते है। चाहे वियोग शृगार हो और चाहे सयोग शृगार, वह आगे चलकर देशभक्ति और बलिदान की भावना मे बदल जाता हैं। वास्तव मे मुख्य रस तो वीर ही है।

अपने सामाजिक नाटको मे प्रेमीजी का लक्ष्य अपने उद्देश्य की ओर ही रहा है, रस परिपाक की ओर नही। फिर भी 'छाया', 'बन्धन' और 'ममता' मे करुणरस की धारा प्रवाहित हो रही है। 'छाया' मे तो आदि से अन्त तक अनेक करुण प्रसग भरे पडे हैं। छाया, माया, ज्योत्स्ना और प्रकाश करुणा के केन्द्र है।

आरम्भ मे शकर ज्योत्स्ना के प्रति करुणा जगाने के लिए प्रकाश से कहता है—'वह फूल सी लडकी इस नराधम के पाले पडी है, इसलिए मैं दुखी हो उठता हूँ। '' वह सुबह बहुत जल्दी उठती है। सारा घर साफ करती है। बर्तन माँजती है।

खाना बनाती है। कपडे साफ करती है और शराबी पति की मार सहती है।' और माया की स्थिति इस प्रकार है कि वह अपने परिवार के लिए अपना देह बेचती और भ्रूण हत्या तक करती है। समाज मे कलकित जीवन बिताती है।

प्रकाश और छाया की स्थिति और भी दयनीय है। छाया के पास इज्जत ढकने के लिए एक धोती तक नही, बच्ची को दूध पिलाने के लिए दाम नही। जब साहित्य-सभा के मत्री प्रकाश को मानपत्र दे रहे थे तो सभा के बाहर कचहरी का प्यादा समन लिये खडा था। 'बन्धन' का आरम्भ भिखारी और बालिका के करुण गीत से होता है। फिर सरला की दयनीय स्थिति उस प्रसग को और भी करुण कर देती है। वह कहती है—'आज हम गरीब हो गये है, हम किसी को कुछ दे नही सकते। गरीब साथियो की सहायता नही कर सकते। हमारे पास केवल आँसुओ की खारी बूदे है, जिनमे हमारा जीवन डूबा जा रहा है।' मज़दूरो की दशा, उन पर अत्याचार, मोहन की गिरफ्तारी आदि सभी प्रसग करुणा को जन्म देते है। 'ममता' मे लता की स्थिति करुणाजनक है और विनोद की स्थिति देखकर मानवता के प्रति ही करुणा आती है कि मानव कितना पतित हो सकता है। यो 'ममता' मे किसी रस को स्वीकार नही किया जा सकता। क्योकि इस नाटक मे प्रेमीजी का लक्ष्य कहानी कहना रहा है, किसी सिद्धान्त या मत का प्रतिपादन करना नही। रगमच की दृष्टि से 'ममता' एक सफल रचना होते हुए भी रस-सचार की दृष्टि से अधिक उत्तम नही।

७ **शैली**—वर्तमान नाटको मे शैली का प्रश्न बडा ही विवादास्पद है। कोई प्राचीन भारतीय पद्धति का समर्थक है तो कोई आधुनिक पाश्चात्य पद्धति का। एक वर्ग दोनो का समन्वय करके चलनेवालो का भी है। भारतेन्दु और प्रसाद ऐसे ही नाटककार थे। हम देखते है कि प्रेमीजी समन्वयवादी पद्धति अपनाकर चले है। प्रेमीजी के नाटको की बाहरी रूप-रेखा तो पाश्चात्य पद्धति पर है, परन्तु आत्मा भारतीय ही है।

प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुसार नाटक का आरम्भ मगलाचरण या नादी-पाठ से हुआ करता था, एक प्रस्तावना होती थी, जिसके प्रमुख पात्र नट और नटी या सूत्रधार होते थे। नाटक का अन्त भरत-वाक्य से होता था। कथानक का विभाजन अवस्थाओ, अर्थप्रकृतियो और सधियो की अपेक्षा रखता था। अर्थोपेक्षक के विष्कभक, चूलिका, अकावतार, प्रवेशक, अकास्य आदि भेदो का उपयोग भी किया जाता था। प्रेमीजी इन सभी जजालो से छूटकर सीधे-सादे मार्ग से चले है। पाश्चात्य शैली के अनुसार केवल कार्य की पाँच अवस्थाओ का ही ध्यान रखा गया है। समष्टि-प्रभाव की ओर ही प्रेमीजी का ध्यान रहा है, शास्त्रीय पक्ष की उलझन की ओर नही।

नायक के सम्बन्ध मे भारतीय दृष्टि ही अपनाई गई है। प्रेमीजी के सभी नाटक आदर्शमूलक है, अत नायक धर्म और गुण के अनुसार धीरोदात्त ही हैं। कही-

कही व्यक्ति-वैचित्र्य के भी दर्शन होते हैं। प्रेमीजी के प्राय सभी नायक भारतीय सस्कृति, व्यक्तित्त्व और चारित्र्य से युक्त हैं, अत शुद्ध भारतीय हैं। सामाजिक नाटको मे भी उनके नायक भारतीय मर्यादा के अनुकूल है, पाश्चात्य प्रभाव से आतकित नही है। रस-सिद्धान्त के सम्बन्ध मे विशेष सावधान न रहने पर भी प्रेमीजी के नाटको मे भारतीय पद्धति के अनुसार ही रस-परिपाक दिखाई देता है। उनके नाटको मे शृङ्गार से पोषित वीररस की प्रधानता है। कही-कही करुणा की अच्छी अभिव्यक्ति है। भारतीय रस-शास्त्रियो ने शृङ्गार, वीर और करुणा को ही प्रधान रस माना है। भारतीय नाट्य-विशारदो ने नाटक की चार वृत्तियाँ मानी हैं। इन वृत्तियो का सम्बन्ध सम्पूर्ण नाटकीय कथावस्तु की गतिविधि से रहता है, और पात्रो की चालढाल भी इन्ही वृत्तियो से रहती है। प्रेमीजी ने अपने नाटको मे सात्त्विक वृत्ति का ही उपयोग किया है। इसके अनुसार नाटको मे वीरोचित कार्यो की प्रधानता है। शौर्य, दान, दया तथा दाक्षिण्य का विशेष वर्णन है। वाणी के ओज का ही प्रदर्शन किया गया है। प्रेमीजी के नाटक वीरोचित कार्यो से सम्बन्धित हैं।

भारतीय पद्धति के अनुसार नाटक सुखान्त होना चाहिए और पाश्चात्य पद्धति के अनुसार दु खान्त। आज पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पडने के कारण दु खान्त नाटक भी हिन्दी मे लिखे जाने लगे है। प्रेमीजी ने भी दु खान्त भावना अपनाई है, परन्तु दार्शनिकता की पुट देकर दु खान्त नाटको को प्रसादान्त बनाने की चेष्टा की गई है। प्रेमीजी कर्तव्य को सर्वोपरि मानते हैं और आत्म-सन्तोष को महत्ता देते हैं। अपने कर्त्तव्य पालन द्वारा जो सन्तोष और शान्ति मिलती है, वह सुख की दाता है, दु ख की नही। चाहे यह शाति प्राण-रक्षा से मिले और चाहे मृत्यु से। प्रेमीजी के अधिकाश नाटक राजपूतो की पराजय दिखाते है, किन्तु कर्त्तव्य पर जीवन उत्सर्ग करनेवाली राजपूत जाति की हार मे भी दर्शक उनकी जीत का अनुभव करते हैं, इसीलिए इन नाटको को प्रसादान्त कहा जायेगा। करुणा मे अन्त किन्तु कर्तव्य की वेदी पर बलिदान का आत्म-सतोष।

'रक्षा-बन्धन', 'आहुति', 'शतरज के खिलाडी', 'विषपान', 'भग्न-प्राचीर', 'कीर्त्ति-स्तम्भ', 'विदा', 'साँपो की सृष्टि' प्रसादान्त या करुण-सुखान्त नाटक हैं। 'प्रतिशोध', 'शिवा-साधना', 'उद्धार', 'बन्धन', 'छाया', 'शपथ', 'प्रकाश-स्तम्भ', 'सवत्-प्रवर्त्तन' सुखान्त नाटक हैं। इस प्रकार सुखान्त और दु खान्त दोनो प्रणालियों को आपने अपनाया है। नाटक चाहे आपके दु खात हो, चाहे सुखात उनमे सस्कृत नाटको का कवित्त्वमय वातावरण बराबर बना रहता है। प्रेमीजी के नाटको मे पाश्चात्य नाट्य-विधान की दृष्टि से यथार्थवादी नाट्यकला चाहे उतनी न हो, रगमच की दृष्टि पाश्चात्य ही है, किन्तु कवित्त्व भारतीय पद्धति पर ही है। वास्तव मे आपके नाटको की शैली प्राचीन और अर्वाचीन नाटक-शैलियो का सामजस्य है। शुक्लजी ने

प्रसादजी से प्रेमीजी की तुलना करते हुए लिखा है कि यह देखकर प्रसन्नता होती है कि हमारे प्रसाद और प्रेमी ऐसे प्रतिभाशाली नाटयकारो ने उस पद्धति का अनुसरण न करके रस-विधान और शील वैचित्र्य, दोनो का सुन्दर सामजस्य रखा है ।

पाश्चात्य पडितो ने सघर्ष, सक्रियता और समष्टि प्रभाव को ही नाटक का सब कुछ माना है । प्रेमीजी का प्रत्येक नाटक एक स्पष्ट और रोचक सघर्ष से पूर्ण है । अधिकाश नाटक युद्ध-प्रधान वातावरण से पूर्ण है, अत उनमे बाह्य-द्वन्द्व तो स्वाभाविक रूप से विद्यमान है, साथ ही पात्रो की मनोदशा के अनुकूल अन्तर्द्वन्द्व भी विद्यमान है । 'रक्षा-बन्धन' का बहादुरशाह दुष्ट पात्र होने पर भी अन्तद्वन्द्व के कारण ही सहानुभूति पाता है । एक ओर तो वह प्रतिहिसा की भावना से जला जाता है और घृणित-से-घृणित कार्य के लिए तत्पर कहता है—"मैं भी चोट खाये हुए खानदान की औलाद हूँ । यही सबब है कि मै इतना बेदर्द रहा हूँ मुझे शैतान भी बनना पडे, तो बनूँगा, पर अपने खानदान के सर पर बेइज्जती का काला निशान मेवाड के राजवश के खून से धोये बिना न मानूँगा ।" किन्तु दूसरी ओर उसका अन्तर्द्वन्द्व यह भी कहता है—"इन्सानियत खानदान की इज्जत से भी बडी चीज है ।" इसी प्रकार 'शिवा-साधना' का औरगजेब महत्त्वाकाक्षा और अधिकार-सुख की प्राप्ति के लिए दुष्ट-से-दुष्ट कार्य करता है, परन्तु जीवन के एकात क्षणो मे वह व्यग्र हो उठता है । कहता है —'औरगज़ेब तू किधर जा रहा है। अजाब के काले समुन्दर मे जिन्दगी की नाव बह पडी है । जहाँनारा, तूने क्या कहा—दिल्ली की सल्तनत मे भी आग लगा दूँ, यह भी शाहजहाँ की निशानी है । सच है, मेरे अजाब दरअसल इस सल्तनत को ले डूबेगे ।'

'प्रतिशोध' की विजया के हृदय मे प्रेम और कर्त्तव्य का द्वन्द्व है । वह बलदीवान से प्रेम करती है, किन्तु देश पर आपत्ति के बादल घिरे देखकर विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर मे आजन्म अविवाहित रहकर देश-सेवा का व्रत लेती है । इस विचित्र सघष मे उसके हृदय का प्रेम विचलित हो उठता है, वह अपने लिए ही समस्या बन जाती है—'हृदय मे जो एक तूफान छिपा है, उसके वेग को राष्ट्र सेवा के बहाव मे बहा देना चाहती हूँ एक क्षण के लिए भी जब मैं एकात पाती हूँ तो अँधेरी रात मे शुक्र नक्षत्र की भाँति किसीका मुख मेरे हृदय मे चमक उठता है ।' इसी प्रकार ज़ेबुन्निसा का शिवाजी के प्रति आकषरण एक विशेष अन्तर्द्वन्द्व को जन्म देता है । ज़ेबुन्निसा सोचती है—'दुनिया की नज़र मे मुझे किस बात की कमी है ? फिर भी ऐसा क्यो जान पडता है कि मुझ-सा कगाल कोई नही है । मै बादशाहज़ादी हूँ—दुनिया के सबसे बडे बादशाह की लडकी हूँ, फिर भी दिल से एक हूक-सी उठकर कहती है कि मैं राह के भिखारी से भी बदत्तर हूँ। सोने के पिजरे मे जैसे किसीने मैना को बन्द कर दिया हो ! इस वीरान ज़िन्दगी के लिए कोई सहारा ही नही रह गया है । वह

दिन भुलाये नही भूलता, जब मैंने बहादुर शिवाजी को देखा था, तब मेरे दिल मे पहली बार तूफान उठा था ।'

'स्वप्न-भग' तो अन्तर्द्वन्द्व का उत्तम उदाहरण है । कासिमखाँ रोशनआरा के कहने मे आकर युद्ध के समय दारा की सेना को धोखा देकर औरगज़ेब की ओर होने का वचन देता है । लेकिन इस दुष्कर्म के प्रति उसे आत्म-ग्लानि होती है । उसके हृदय मे मनुष्यता और धार्मिक कट्टरता, मोहब्बत और जालसाज़ी, कर्म और अधर्म का द्वन्द्व छिडता है —'चाहा था थोडी-सी नीद ले लूँ, लेकिन उसे तो मानो कोई चुरा ले गया है। दारा और औरगजेब, मनुष्यता और धार्मिक कट्टरता, जहाँनारा और रोशनआरा, मोहब्बत और जालसाज़ी ! आज धर्म और अधर्म का द्वन्द्व है। मेरा दिल पूछता है, कासिमखाँ, तुम किसका साथ दोगे ? दारा जैसे भले आदमी को धोखा देना अच्छा नही, लेकिन रोशनआरा, उसकी शराब से ज्यादा मादक आँखे हरघडी कुछ सकेत करती जान पडती है । उसके हाथ का दिया हुआ मदिरा का प्याला आज भी मेरे दिमाग को मदहोश कर रहा है ।'

इसी प्रकार पाप मे फँसी रोशनआरा की आत्मा उसे धिक्कारती है और पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, कोमलता-कठोरता का द्वन्द्व उसके हृदय को झकझोर देता है—'ईर्ष्या की आँधी मे उडकर मैं कहाँ आ गई—मैं नारी हूँ। नारी का अस्तित्व प्रेम करने के लिए है, ससार के निर्मल झरने मे स्नान कराने के लिए है । मैं अपना स्वाभाविक धर्म छोडकर हिंसा का भयानक खेल खेलने चली हूँ । कोई दिल मे बार-बार कहता है, रोशनआरा ज़रा सोच, आगे कदम बढाने के पहले उसके परिणामो पर विचार कर ।' दारा मे भी द्वन्द्व चल रहा है, एक ओर वह साहित्य-सेवा मे तल्लीन है, दूसरी ओर औरगज़ेब की मानवता जगाना चाहता है ।

'विष-पान' मे ईर्ष्या, द्वेष और राजपूती आन का सघर्ष है । क्रिया-प्रतिक्रियाओ से मुक्त इसका सघर्ष बाहरी ही है, अन्तद्वन्द्व यहाँ नही है। अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण हाल ही मे प्रकाशित 'सम्वत्-प्रवर्तन' मे हुआ है। आचार्य कालक और सरस्वती के भीतर प्रतिशोध और कर्त्तव्य का द्वन्द्व चलता रहता है। युद्ध-प्रधान नाटको मे बाह्य द्वन्द्व के साथ अन्तर्द्वन्द्व का सफल प्रयोग करना प्रेमीजी की कुशलता ही कही जायेगी।

सामाजिक नाटको मे भी वे द्वन्द्व और सघर्ष को प्रधानता देकर चले हैं। 'बन्धन' मे मालिक और मज़दूर का, गरीबी और पूँजीवाद का द्वन्द्व है। किन्तु प्रकाश, मालती और मोहन के अन्तर्द्वन्द्व का भी चित्रण किया गया है। मोहन मज़दूरो का नेता है । आदर्श के लिए वह अपना जीवन उत्सर्ग कर चुका है, लेकिन दरिद्रता से पीडित अपनी बहन सरला की कथा उसके हृदय मे द्वन्द्व पैदा करती है —'कितनी बार वैभव प्रलोभन देता है, लेकिन जिस समय तुम्हारी आषाढ़ी आँखो और सूनी

माँग को देखता हूँ, तो अनुभव करता हूँ कि दु ख से डरना कायरता है और सुख के पीछे पागल होना मौत है ।'

'ममता' मे मानवता और पशुता का, कर्त्तव्य और प्रेम का, प्रतिशोध और ममता का सघष है । विनोद की पशुता पर रजनीकात और लता की मानवता विजय पाती है । कत्तव्य और प्रेम के द्वन्द्व ने रजनीकान्त के आदर्श-चरित्र की सृष्टि की है । दूसरे अक के दूसरे दृश्य मे कला ने रजनीकात के सामने अपने हृदय के भीतर चलती आँधी को व्यक्त किया है । लता के प्रति उसके मन मे जो भावना काम कर रही थी, उसे उसने इस प्रकार व्यक्त किया—'मैने तो बहुत पहले ही उसकी आँखो के अक्षर पढ लिये थे । उसको आपका मुझसे और मेरा आपसे मिलना फूटी आँखो भी नही सुहाता था । जिस नारी के लिए मैंने अपना सर्वस्व उजाड लिया वह मेरे प्रति इतनी कृपण हो गई कि आपका दो घडी के लिए मेरा साथ भी उसकी आँखों को खटकने लगा । मेरे प्राणो मे एक युग से ज्वालामुखी सुलग रहा है । आज उसकी कुछ लपटे बाहर निकल पडी हैं, किन्तु इससे भी अन्तर की व्यथा हलकी तो नही होगी ।'

विनोद के अन्तर्द्वन्द्व को तीसरे दृश्य मे रजीकान्त ने मुशीजी के सामने प्रकट किया है । इसी दृश्य के अन्त मे रजनीकान्त अपने भीतर के भाव भी मुशीजी पर प्रकट करता है —'मुझे किसीकी आवश्यकता नही और किसीको मेरी आवश्यकता नही होनी चाहिए । मैं सब तरह के उत्तरदायित्वो को छोडकर बिलकुल हल्का होकर ससार मे विचरण करूँगा । किसी प्रकार का बन्धन स्वीकार नही करूँगा ।' नाटक के अन्तिम दृश्य मे लता ने मुशीजी पर अपने हृदय के उद्गार प्रकट किये है इस प्रकार 'ममता' भी एक द्वन्द्व और सघर्षपूर्ण रचना है ।

प्रेमीजी की शैली की एक बडी विशिष्टता यह है कि वे नाटको के आरम्भ से लेकर अन्त तक अपने प्रभाव की ओर सचेत रहते है । नाटको के पात्र चाहे जैसे हो, चाहे जिस आदर्श की सृष्टि की गई हो, चाहे जितनी समस्याएँ नाटक मे उठाई गई हो, प्रेमीजी बराबर प्रभाव की समष्टि की ओर जागरूक रहते हैं । सम्पूर्ण नाटक अन्त मे एक ही प्रभाव-विशेष दर्शक या पाठक पर छोडता है । विचारो की विशृ-खलता प्रेमीजी के नाटको मे नही है । उनका एक निर्धारित लक्ष्य है, और वे उस लक्ष्य से रच-मात्र भी इधर-उधर नही होते, यही उनकी कला का सबसे बडा कौशल है ।

अनेक लेखको की रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से तो उच्चकोटि की होती है । किन्तु रगमच की उपयोगिता को वे नही पूरा कर पाते । प्रेमीजी का रचना-विधान रगमच की दृष्टि से भी पूर्णतया सफल है । रगमच का पूरा ध्यान रखकर ही उ होने नाटक लिखे हैं । अपनी नाट्य-कला के सम्बन्ध मे प्रेमीजी ने 'शतरज के खिलाडी'

की भूमिका मे कहा है —'नाटक लिखा जाय तो उसे खेला भी जाना चाहिए। खेला जा सके ऐसा ही नाटक लिखा जाना चाहिए। मुझे इस बात का सतोष है कि मेरे नाटक देश के कोने-कोने मे खेले जा चुके हैं। आये दिन नाटक खेलनेवाले ये साधन नही जुटा सकते। उसके लिए तो सेटिंग्स की नाट्य-कला से पदो की नाट्य-कला सरल बैठती है। इसी कारण मैं अधिक लोगो का होकर रहा हूँ। किन्तु सेटिंग्स वाली नाट्य-कला का विरोधी भी नही हूँ।' स्पष्ट है कि प्रेमीजी रगमच की कला से भली प्रकार परिचित है। उनका दृश्य-विधान सुलझा हुआ और सरल है। अपने दृश्य-विधान के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण करते हुए वे 'विष-पान' की भूमिका मे लिखते है —'यदि रगमच का ध्यान न रखा जाय, केवल पढने की चीज़ लिखी जाय तो लेखक प्रत्येक दृश्य को खूब चुस्त रख सकता है। रगमच का ध्यान रखने पर अनेक बन्धन लग जाते है। उदाहरण के लिए एक राजमहल, घर के भीतर अथवा ऐसे ही किसी दृश्य, जिसमे अत्यन्त सजावट करनी पडती है, इसके पश्चात् फिर वैसा ही दृश्य नही लाया जा सकता। एक वस्तु को हटाकर दूसरी को रखने के लिए समय चाहिए। इसीलिए उसके बाद ऐसा दृश्य आना चाहिए, जिसमे कोई सजावट न हो।' प्राय प्रेमीजी ने अपने नाटको मे इस प्रकार का दृश्य-विधान रखा है, जिसकी चर्चा हम रगमचीयता के अध्याय मे कर आये हैं। प्रेमीजी भारतीय रगमच की आवश्यकताओ और मर्यादाओ से भली-भाँति परिचित हैं, अत उन्होने भारतीय पद्धति के अनुसार सदा इस बात का प्रयत्न किया है कि रगमच पर हत्या, मृत्यु, युद्ध, आलिंग्न आदि के दृश्य न दिखाये जाये। जहाँ इस प्रकार की आवश्यकता हुई है, वहाँ प्रेमीजी ने सूच्य वस्तु का ही सहारा लिया है। अत रगमच की दृष्टि से प्रेमीजी के नाटक भारतीय शैली के अनुसार ही है।

अब हम एक बात कहकर इस प्रसग को समाप्त करते हैं। प्रेमीजी के नाटको की भाव-धारा, उद्देश्य, चरित्र-चित्रण, नाट्य-विधान आदि मे प्राय एक-समानता पाई जाती है, विविधता नही। ऐसी स्थिति मे उनका चाहे एक नाटक पढ़ा जाये, चाहे सारे नाटक, बात एक ही है। इस प्रकार का आक्षेप होगा, प्रेमीजी इसे पहले से ही जानते थे, अत उन्होने इसका स्पष्टीकरण 'शतरज के खिलाडी' की भूमिका मे इस प्रकार दिया है —'एक लक्ष्य को सामने रखकर नाटको की रचना करने से मुझे हानि भी हुई है और लाभ भी प्राप्त हुआ है। हानि तो यही हुई कि 'कला कला के लिए' सिद्धान्त के भक्त आलोचक इन रचनाओ से प्रसन्न नहीं हुए, किन्तु मुझे आश्चर्य इस बात का है कि ये बन्धु बर्नार्डशा और इब्सन आदि विदेशी नाटककारो के आगे मस्तक झुकाते है, जो कला को उद्देश्य की सीमा से निर्वासित नही कर सके। विदेश के साहित्यकार के लिए एक कसौटी और अपने देश के साधन-हीन साधक के लिए दूसरी—अधिक तीखी। आखिर क्यो? मैं मानता हूँ, उनकी

समस्याए बहुमुखी हैं—किन्तु क्या हम उनकी रचनाग्रो पर विचार करते हुए उस समाज का अदाजा नही लगा सकते जिसमे लेखक रहता है, जिसके लिए वह लिखता है ? भारतीय साहित्यकार के सामने भारतीय समाज है और इस समाज की आवश्यकता है। यदि वह उससे बँधा हुआ है तो यह उसकी निर्बलता नही है, उसकी ईमानदारी है। अपने घर मे अन्धेरा रखकर सम्पूर्ण ससार मे प्रकाश करने की महानता का श्रेय प्राप्त करने की आकाक्षा मुझे नही है और सीमा ने मुझे लाभ यह पहुँचाया कि जन-मानस ने मुझे अपना लिया।

वास्तव मे प्रेमीजी प्रतिभाशाली कलाकार है। उनके पास सजग कला, गतिशील कल्पना और एक सुन्दर सुरुचिपूर्ण रचना-कौशल है। उनकी कृतियो के रचनाक्रम को देखकर उनकी नाट्य-कला का सहज स्वाभाविक विकास सामने आ जाता है।

बारह

प्रेमीजी की कविता

'प्रेमी'जी की कविता मे गति है, यति नही। शोभा है, शृङ्गार नही। प्यार है, विकार नही। भाव है, भाषा नही। अनुभूति है, अभिव्यक्ति नही। चोट है, प्रहार नही। शिथिलता है, निर्जीवता नही। बेहोशी है, नशा नही। त्याग है, नीरसता नही। क्रम भग है, रस-भग नही। आकषरण है, माया नही। विस्तार है, आडम्बर नही। प्रलाप है, निरथकता नही। ताप है, अभिशाप नही।[1]

'प्रेमी'जी की कविता के सम्बन्ध मे ये शब्द आज से तीस वर्ष पहले कविवर 'मिलिन्द'जी ने कहे थे। तब तो प्रेमीजी की केवल एक ही कविता-पुस्तक सामने थी। आज वे लगभग एक दर्जन कविता पुस्तके हिन्दी-जगत् को प्रदान कर चुके हैं। ऐसी दशा मे तो उनकी काव्य-साधना के सम्बन्ध मे और भी बहुत-कुछ कहा जा सकता है।

आज तक वे हमे आँखो मे, स्वर्ण-विहान, जादूगरनी, अनन्त के पथ पर, अग्नि-गान, रूप-दर्शन, वन्दना के बोल, प्रतिमा, रूप-रेखा और अनेक मुक्तक कविता आदि दे चुके हैं। इनको देखकर कहा जा सकता है कि 'प्रेमी'जी प्रेम और अध्यात्म के, क्रान्ति और शक्ति के, सादगी और सरलता के कवि है। 'आँखो मे', 'अनन्त के पथ पर', 'जादूगरनी' का गायक प्रेम और अध्यात्म का कवि है। 'स्वर्ण विहान', अग्नि गानका गायक, क्रान्ति और शक्ति का कवि है और 'वन्दना के बोल', 'रूपदर्शन' तथा 'रूपरेखा' और 'प्रतिमा' का गायक प्रेम, सादगी और सरलता का कवि है।

'प्रसाद' के 'आँसू' की भाँति 'प्रेमी'जी भी विरह-वेदना लेकर हिन्दी काव्य-क्षेत्र मे आये है। 'आँखो मे' आपकी विरह-वेदना का उमडता सागर है। इस वेदना ने ही ससार की 'जादूगरनी' माया के मार्ग से हटाकर प्रेमीजी को 'अनन्त के पथ पर' लेजाने की सफलता प्राप्त की। किन्तु जीवन के 'स्वर्ण-विहान' ने उनकी दृष्टि मानव की परवशता की ओर भी झुकाई। उन्होने 'अग्नि-गान' मे विद्रोह का शख फूंका और पीडितो एवम् पद दलितो को क्रान्ति का मारू राग सुनाया। 'रूप-दर्शन' से वे फिर प्रेम की ओर मुडे जिससे शाति, सरलता और आत्म-विस्तार को अपनाया।

पहली रचनाओ मे प्रेमीजी जहाँ मधुर, कोमल और गहरी अनुभूति को सरल-तम और स्वाभाविक रूप मे व्यक्त करने मे सफल हुए है, वहाँ दूसरी रचनाओ मे उन्होने ओज और कराह भेट की है। इधर की रचनाओ मे उनका सौजन्य, सरलता और आत्म-विस्तार अभिव्यक्त हुआ है।

---

१ श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' —'आँखों में' की भूमिका में।

प्रेमीजी की पहली पुस्तक है—'आँखो मे'। 'किसी अज्ञात विमल विभूति के प्रति उनका उन्माद, प्रेम, स्मृति, विरह, उपालभ, मनुहार, वेदना, करुणा और न जाने क्या-क्या, इस कृति मे इतने वेग से उमड पडता है कि उसमे साहित्य ससार के सामान्य बन्धनो का अक्षुण्ण रह जाना असभव हो जाता है। फिर भी इस वेग मे कुछ कमी है, कुछ अधूरापन है।' इस कमी और अधूरेपन का कारण शायद पहली रचना हो। जो भी हो मिलिन्दजी के ही शब्दो मे-'जब मै प्रेमी की कविता पढता हूँ, तो मुझे तत्क्षण प्रतीत होता है, मानो कोई पागल झरना बडे वेग से बहा जा रहा है। वह अपने करुण-प्रवाह मे कभी-कभी अपना इतिहास भी भूल जाता है और कभी-कभी अपना भविष्य भी। लोगो के हृदय पर बरबस जादू डालने के लिए अपने सरल स्वर मे अधिक गभीरता, अधिक दार्शनिकता, अधिक रहस्य, अधिक शोभा, अधिक मधु, अधिक मद और अधिक स्थिरता लाने की चिन्ता मे मुँह लटकाकर बैठ रहने का उसे ज़रा भी अभ्यास नही है। वह केवल बहना जानता है। ऊँची-नीची, टेढी-सीधी, मोटी-पतली, जैसी भी हो उसकी धारा कल-कल, छल-छल करती हुई चलती ही जाती है। दर्शक और समालोचक उसे देखा करे, वह उन्हे नही देखती। चलती ही जाती है—बस चलती ही जाती है।'—स्पष्ट है कि स्वाभाविकता और प्रवाह प्रेमीजी की कविता के गुण है और आरम्भ से ही है।

वेदना के कुशल गायक प्रेमीजी ने 'आँखो मे' दुखिया जीवन के पागल पन्नो को सजाया है। दुनिया ने कवि को इतना दुख दिया है, इतना दुख देना चाहा है कि उसे और दुख देने के लिए उसकी एकमात्र पूँजी दुख को खिलौने की तरह तोड देना चाहती है। फलत कवि ने —

> 'मेरा दुख हत्यारे जग का,
> बन जाये न खिलौना-सा!
>
> इस भय से उर की कुजो मे,
> छिपा रखा मृग-छौना-सा।'

आप जानना चाहेगे 'आँखो मे', क्या है? 'आँखो मे' हृदयवाद की कविता है, जिसमे कवि की प्रेम-मिश्रित वेदना शत-शत अभिव्यक्तियो मे फूट पडी है। उसमे कामना की व्यजना है —

> 'आँखो में है मौन निमत्रण,
> आँखों मे नीरव मनुहार।
> आँखों मे प्रियतम का आना,
> और पहनना आँसू हार॥'

उसमे प्रेम की अभिव्यक्ति भी है —

> 'भागे, क्या भागोगे निष्ठुर, पुतली के बन्दी मेरे!
> आँखों मे ताला देकर मै, रक्खूँगा तुमको घेरे।'

और अश्रु-सिक्त करुणा भी है —

'पापी जीवन की घडियों मे
एक सहारा रोना है ।
टूटे-फूटे मुक्ताओ के—
जल से पलकें धोना है ।'

उसमे वेदना से समझौता भी है —

'मत छीनो सुख छलिया,
दुख ही सुख है, रहने दो ।
जीवन की सूनी घडियो मे,
करुण-कहानी कहने दो ॥'

और अन्त मे वेदना का राज्य भी है ।[1]

महादेवी वर्मा की आध्यात्मिक वेदना और परोक्षसत्ता की पर्याय पीडा तथा प्रेमीजी की वेदना और पीडा एक ही वस्तु है । महादेवी का दर्शन ही 'प्रेमीजी' की 'जादूगरनी' का दर्शन है । यही कबीर का दर्शन है । 'जादूगरनी' की भूमिका मे प्रेमीजी लिखते हैं —

'कबीर ने माया को 'महाठगिनी' कहा है । इसी ठगिनी माया को मैंने 'जादूगरनी' कहा है । इसी जादूगरनी के विविध रूपो को शब्दो द्वारा अकित किया है । यही माया प्रत्येक भवन मे नारी बनकर अपनी अभिराम छवि से आलोक करती रहती है ।' इसीलिए कबीर की भावना को अपने नाटको मे कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है —

'एक मनोरजन था विधि का,
जिसने दिया तुझे आकार ।
अपने जाले में मकडी सा,
पर फँस गया स्वय कर्तार ।'

और

'घर-घर में तेरी ही प्रतिछवि,
करती है आलोक अनूप ।
अगणित अणुओं मे बँट जाता,
एक महत्तम नारी रूप ॥'

१ डा० सुधीन्द्र आधुनिक कवि पृष्ठ १५६-१६०

वास्तव मे विश्व के कण-कण मे 'अणो रणीयान् महतो महीयान' वस्तु मे उसी शक्ति की छाया कवि ने देखी है —

'तू चिर-सुन्दर, विश्व विपिन मे
खिलती है, देती मधु दान ।
जो मधुदान जगत की ज्वाला—
को करता है शन्ति प्रदान ।'

सृष्टि के अणु और विराट् क्रिया-व्यापार उसकी प्रेरणा और इगित से गतिशील है —

'रवि के चारों ओर घूमते,
जैसे ग्रह-उपग्रह अविराम ।
तुझे घेरकर घूम रहे है,
जग के प्यासे नयन सकाम ॥'

इसी प्रकार महाकाव्य 'कामायनी' मे प्रसादजी ने भी लिखा है —

'विश्वदेव सविता या पूषा, सोम-मरुत चचल पवमान,
वरुण आदि सब घूम रहे है, किसके शासन मे अम्लान ।
महानील इस परम व्योम मे, अन्तरिक्ष मे ज्योतिर्मान ।
ग्रह-नक्षत्र और विद्युत्कण, किसका करते से सन्धान ।'

उसी विराट् का सकेत इन पक्तियो मे भी मिलता है —

'कण-कण 'चलो-चलो' कह उठता,
क्षण-क्षण लगता काल-समान ।
त्रिभुवन की विराट् वीणा मे,
जब बजता तेरा आह्वान ॥'

उसका रूप-सौन्दर्य जगत् के कण-कण पर सम्मोहन का जाल बिछाता है —

'री सौन्दर्य, मधुरिमा बनती—
तू बन्धन करुणा-धारा ।
फिर भी तेरा रूप जगत् को
लगता है कितना प्यारा ॥'

और कवि ने उस अनन्त सौन्दर्य की जिज्ञासा प्रकट की है —

'कौन देखता पट के पीछे,
दो प्यासे नीरव लोचन ।
एक अन्नत अतृप्त कामना,
एक हृदय, उन्मद यौवन ॥'

कवि को यह रहस्यात्मक अनुभूति होती है कि उसी सत्ता के लीला-विलास से ही सृष्टि के विविध व्यापारो—जन्म और मरण, सृष्टि और विनाश की सघटना होती है। और पृथ्वी और आकाश ससार के पदार्थ उसके प्रेम से अभिभूत रहते है। इस प्रकार 'जादूगरनी' मे विश्व-रहस्य के अद्भुत सकेत है।[1]

'जादूगरनी' के दर्शन ने उन्हे 'अनत के पथ पर' अग्रसर किया। 'अनत के पथ पर' के 'प्रवेश' मे प्रेमीजी लिखते है —

'यह पुस्तक प्रारम्भ से अन्त तक एक ही कल्पना है। ससीम असीम को—या यो कहो आत्मा ब्रह्म को प्राप्त करने को प्रस्थान करती है। मैंने 'आत्मा' की एक स्त्री के रूप मे कल्पना की है। वह एक कुटी मे बैठी हुई है—सध्या का समय है—आकाश लाल है—धीरे-धीरे तारे चमक उठते है। उसका हृदय न जाने क्यो व्याकुल हो उठता है, जैसे कोई उसे बुला रहा है। वह अपनी कुटी छोडकर चल पडती है। मार्ग मे उसे नदी, तालाव, वन, उपवन, समाधि, समाधि का दीपक आदि अनेक वस्तुएँ मिलती है। वे सब मानो उसे कुछ कह रहे हैं। वह 'मुझे कहाँ जाना है, मुझे कहाँ जाना है, सोचती भटकती रहती है। प्रभात के समय एक नाव लेकर सिन्धु मे बह पडती है। अन्त मे उसे ज्ञात होता है कि वह तो इतना दूर नही है कि उसे खोजने कही जाना पडे।'

इस विज्ञप्ति से स्पष्ट है कि प्रेमीजी समकालीन रहस्यवादी भावनाओ से प्रभावित है। 'अनन्त के पथ पर' उनकी अलौकिक प्रेम की व्यजना है। यहाँ कवि की आध्यात्मिक अनुभूति स्पष्ट हो उठती है। श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने लिखा था—'इसमे कविता भी है और आध्यात्मिक ज्ञान भी है।' श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री रामनाथलाल 'सुमन' और श्री मिलिन्दजी के विचार से इस पुस्तक मे उपनिषदो की झलक है, अत्यन्त सरल और सरस।

"विश्वात्मा की प्रणयानुभूति करते हुए प्रेमीजी 'अनन्त के पथ पर' बडी दूर तक गये है। 'अनत के पथ पर' का कवि छायावाद के भाव-लोक से रहस्य की ओर बढा है, उस सीमान्त पर सन्ध्या की नीलाकाश पर छिडकी हुई कुकुम की लालिमा कवि-आत्मा के भाव-प्रवण मानस मे अपने किसी की स्मृति जगा देती है। यह वही अज्ञात अदृश्य प्रियतम है जो रहस्यवादियो का लक्ष्य होता है।" 'स्मृति' किसी ज्वाला को भडका देती है, फिर तो कवि की आँखो मे—

'ब्रह्माड अखिल करता है नर्तन आँखों मे मेरी।
रवि, शशि, तारे देते है, मेरे प्राणों मे फेरी॥'

एक छाया-सी, धुँधलेपन-सी, विस्मय-सी, कौतूहल-सी, कुछ जिज्ञासा, कुछ गूढ पहेली, कुछ खोज, कुछ पागलपन, कुछ कम्पन, कुछ प्रेम-पुलक, कुछ व्याकुलता

---

१ डा० सुधीद्र आधुनिक कवि, पृष्ठ १६२

और विरह-कथा की अनुभूति-सी अन्तर्मन पर छा जाती है। फिर मन की जो दशा होती है वह कवि के शब्दो मे यो है —

"यह हृदय न जाने किसकी सुधि मे बेसुध हो जाता।
छिप-छिपकर कौन हृदय की वीणा के तार बजाता॥"

और नभ के पर्दे के पीछे से कोई सकेत दिखाई-सुनाई देते है —

'नभ के पर्दे के पीछे करता है कौन इशारे ?
सहसा किसने जीवन के खोले है बन्धन सारे ?"

और कवि की आत्मा उस ओर अनुसन्धान के पथ पर चल पडती है। ऐसा जान पडता है कि चिरन्तन प्रेम और प्रणय विस्मृति से स्मृति मे आ जाता हे और अभाव की सृष्टि होने लगती है। फिर स्वप्न आते है, उस प्रिय का देश पुतलियो मे घूमने लगता है—जहाँ इन्द्रधनुष है, भूकम्प है, प्रभजन है, जहाँ सृजन है और सर्वनाश भी है—

'उस पार क्षितिज के मानो प्रियतम का स्वर्ण महल है।
'छलना' से जहाँ मरुस्थल देता न दिखाई जल है।'

फिर कवि का विरह शत-शत धाराओ मे फूट पडता है। परिचित प्रेम की कहानी कानो मे सुनाई देने लगती है —

'परिचित-सा प्रेम हृदय मे जाने क्या-क्या है गाता ?
अन्तर मे जैसे कोई कुछ बीती कथा सुनाता।'

विरह की मार्मिक व्यजना होने लगती है —

'कहता है दीप समुज्ज्वल यो तिल-तिल हृदय जलाना।
फिर कभी-कभी विस्मृति के हाथो क्षण भर बुझ जाना॥'

प्रियतम का घर दूर है। उसके मिलन का अभिसार रहस्यवाद मे सफल नही होता। सफल नही होता यह सत्य है, किन्तु अद्वैत की भावना बनी रहती है —

'इच्छा होती है तोडूँ अब तू मै की दीवारें।
द्रुत तोड द्वैत के गिरि को मिल जावे दोनो धारें।'

स्पष्टतया हम देखते है कि प्रेमीजी का जो रहस्यवाद माधुर्यभाव की धूमिल व्यजना से आरभ हुआ था, दर्शन की भूमि पर जाकर आलोकित होता है।"[1]

किन्तु प्रेमीजी कोरे अध्यात्म को जीवन मे उतारकर चलनेवाले नही है। इस जगत् की विषमताओ ने भी उनकी वेदना को झकझोरा है। 'जिस समय 'प्रेमी' ने लेखनी उठाई, भारतीय रगभूमि पर महात्मा गाँधी द्वारा सचालित असहयोग-आदोलन वेग पर था, राष्ट्रीय-भावना जन-जन के हृदय मे स्पन्दित हो रही थी, बल और बलि के अनुष्ठान हो रहे थे। तब कवि ने युग की प्रेरणा को एक गीति रूपक मे

१. डा० सुधीन्द्र आधुनिक कवि, पृष्ठ १६४-१६५

प्रस्तुत किया। वह गीति रूपक था स्वर्ण-विहान। स्वर्ण-विहान मे एक काल्पनिक कथा है, उसमे असहयोग आन्दोलन के किसान की करुण-कहानी के, जेल-जीवन के मार्मिक चित्र है।'[1]

'स्वर्ण-विहान' की क्रान्ति-भावना 'अग्नि गान' मे जाकर मुखर हो उठी। कवि 'अनन्त पथ पर' से हटकर एकदम 'अग्नि-गान' गाने के लिए अनल-वीणा उठा लेता है। कवि को अपने मध्यमवर्ग की क्षुधा और तृष्णा व्याकुल करने लगी। शोषण के विरुद्ध उसने आवाज तो उठाई लेकिन हिंसक पग नही उठाया। गाँधीवादी दर्शन से वह प्रभावित हुआ और गीता के आदर्श 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे' को मान कर चला अपनी 'अमर-ज्योति' कविता मे कवि ने गाया —

'अमर अनल-पक्षी हूँ मै तो,
मुझको मरने का क्या भय है ?
मेरी राख जी उठे फिर से,
होता जग को क्यों विस्मय हे ?'

कवि ने बलिदान की महत्ता को समझा और अनुभव किया कि बलिदान के आगे शोषण एक दिन स्वय घुटने टेक देगा। इसलिए उसने गाया —

'स्वागत, शीश काटनेवाले, स्वागत मुझे मिटानेवाले !
दे तलवार मुझे, मै भर दूँ अपने ही लोहू से प्याले।
मुझे जलाने को आये हो अपनी आग बुझानेवाले ?
देखो, तन मे नवजीवन पा हँसते शीश चढानेवाले।
दीपक से दीपक जलता है
ज्योति अमर मा के मन्दिर की।
तुम दीपक की ज्योति बढा दो
बत्ती काटो मेरे सिर की ॥'

समाज मे फैली आर्थिक विषमता के विरुद्ध कवि चिनगारी सुलगाना चाहता है। शोषितवर्ग को जागरण का सन्देश देतीं हुई उनकी चिनगारी कहती है —

'जो सुख की शैया पर सोते मुझको उनसे काम नहीं है।
मुझे उन्हीं से कुछ कहना है, जिन्हें प्राप्त धन-धाम नहीं है ॥
मुझे उन्हें आँखें देनी है, निज अभाव जो देख न पाते।
जो जुल्मों को भाग्य समझकर निर्विकार हो सहते जाते ॥
मुझे विभव का क्या करना है—
मै तो उसका नाश करूँगी।
आज तुम्हारे प्राणो मे मै
सर्वनाश का राग भरूँगी ॥'

---

१ डा० सुधीन्द्र आधुनिक कवि, पृष्ठ १५८

समय के प्रति प्रेमीजी ने अपने कर्तव्य को सदा पहचाना है। किन्तु वे उसके ही होकर नही रह गये है। कविता की स्वाभाविक भूमि को उन्होने देखा-भाला है। वे यह बात भली प्रकार जानते है कि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियो के बदलते ही इस प्रकार के साहित्यिक ग्रन्थो के महत्त्व मे कमी आ जाती है। इसलिए उन्होने अपनी कविता की भूमि बडी विस्तृत रखी है। भाँति भाति के उतार-चढाव उनके रागो मे है। रूप, प्रीत और यौवन की अनुभूतियाँ भी वे व्यक्त करते है। 'आँखो मे', 'अनत के पथ पर' और 'जादूगरनी' की रहस्य-भावना के पीछे जो प्रेम की आकुलता थी उसे व्तक्त करने के लिए अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे प्रेमीजी ने पुन प्रयोग आरभ किया। रूप-दशन इसकी गवाही है। इसकी भूमिका मे उन्होने कहा है —

'रूप-दर्शन की रचनाएँ अपनी लाघवता के कारण भी शायद पाठको को पूर्ण सन्तुष्ट न कर पाये, किन्तु यह मेरा एक प्रयोग है। उर्दू की ग़ज़ल और हिन्दी के गीत का सम्मिश्रण मैने इन रचनाओ मे किया है। गीत की प्रत्येक दो पक्तियो का जोडा अपने आपमे पूर्ण है, लेकिन अपूर्ण भी है, क्योकि आगे की पक्तियो मे सबध भी कायम है। मै जानता हूँ कि मैने बचपन किया है, क्योकि प्रत्येक नया प्रयोग बचपन ही होता है—लेकिन मै अपने बचपन से लज्जित नही हूँ, क्योकि अनेक बार बचपन भी अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाओ को जन्म देता है।'

'रूप-दर्शन' मे सरलता, सादगी, स्वाभाविकता और सीधापन है। यह उनकी कविताओ का सग्रह सचित्र भी है। यह कविता-सग्रह प्रेम की सरस अभिव्यक्ति है। प्रेम मूक है, प्रेमी मूक है, प्रेमास्पद मूक है और प्रेम की अभिव्यक्ति मूक है। इस दशन को कवि इन शब्दो मे कहता है —

'किसी से हम नही कहते, किसी को प्यार करते है।
नजर से जब नजर मिलती चमक पडती तड़ित सहसा,
हृदय के तार चिर नीरव मधुर झकार करते है।
किसी छवि के पुजारी है, न मुँह तक बात आ पाई,
मगर दिल मे किसी की हम बहुत मनुहार करते है।
नजर तो पूछ लेती है, हमे दिल मे जगह दोगे,
न वह इकरार करते हैं, न वह इनकार करते हैं।
न इसका भेद खुल पाया, तभी तो रूप प्यारा है,
हटाते है न वह घूँघट, बडा उपकार करते है।'

प्रेमीजी के काव्य की बडी खूबी यह है कि चाहे उन्होने वेदना के गीत गाये हो, चाहे अध्यात्म के और चाहे निर्धनता के, किन्तु निराशा को कही भी अपनाया नही है। प्रायः प्रेम का गीत गानेवाले तो निराशा को कठ से लगाया करते है,

खासकर जब वे उर्दू-कविता से प्रभावित होते है। किन्तु प्रेमीजी गज़ल का प्रभाव लेकर चलने पर भी एक विजयी खिलाडी की भाति आशा और साहस से आगे बढते है —

'चल खिलाडी, बढ़ खिलाडी, दूर होगा यह अँधेरा !
रात-दिन का चक्र चलता है जगत् मे रात-दिन ही,
इस निराशा की निशा के बाद आयेगा सवेरा।
तू अमर है और बन्धन विश्व के अस्थिर अचिर है,
मुक्ति के आकाश मे उड बन्धनो का तोड घेरा।
स्वप्न की दुनिया हुई है राख तो फिर से बसाले,
जिन्दगी मे डालने दे तू निराशा को न डेरा।
विश्व मे मत खोज साथी ढूँढ मत कोई सहारा।
कर भरोसा तू स्वय पर तो बनेगा विश्व तेरा ॥'

'रूप-दर्शन' जीवन की यथार्थता का चित्र है। अनुभूतियाँ गहरी और अभिव्यक्ति सरल, यही तो इस सग्रह की विशेषता है। स्वय कवि के शब्दो मे— 'रूप-दर्शन' के गीत तो केवल रात मे जलकर प्रकाश देनेवाले द्वीप नही है। सामयिकता और उपयोगिता की तराजू से तोलनेवाली बनिया-बुद्धि इनमे शायद कुछ भी न पाय। 'रूप-दर्शन के गीत' रूप (सौन्दर्य) प्रीत और यौवन की वे अनुभूतियाँ है जो मानव-हृदय मे सृष्टि के आदिकाल से झकृत हो रही है और अनन्तकाल तक होती रहेगी, जो एक सम्राट् के हृदय मे नृत्य करती है तो एक भिक्षुक के हृदय मे भी।'

'प्रतिमा' कविता-सग्रह को स्वय कवि ने स्नेह का निर्झर कहकर पुकारा है। प्रेम के सम्बन्ध मे प्रेमीजी ने इसमे अनूठी उक्तियाँ कही है। पहली कविता प्रतिमा मे लिखते है —

'मैं तो स्वय दीप बन जलता, स्वय जला लेता अपने को।
युग-युग से कर रहा प्रकाशित, अमर-स्नेह के मृदु सपने को।
जगत् मुझे भी मान मूर्त्ति ही मुझ पर फूल चढा जाता है।
सच बतलाओ देवि, प्रेम क्या नर को मूर्त्ति बना जाता है ?'

इस सग्रह मे प्रेमी रावरण, छवि का बन्दी, बसी, बेचैनी के प्याले आदि कविताएँ बहुत ही मर्मस्पर्शी है। 'शिकारिन से' कविता तो बहुत ही प्रसिद्ध हुई थी। एक प्रकार से इसमे 'जादूगरनी' का दर्शन साकार हो उठा है। लौकिक और अलौकिक द्वन्द्व इस कविता की विशेषता है। 'अग्नि-गान' की भाँति इसमे भी छ-छ पक्तियो के ग्यारह-ग्यारह पदो की कविताएँ है।

'वन्दना के बोल' मे गाँधीजी और उनके आदर्शो पर आधारित कविताएँ

सग्रहीत है। ये कविताएँ क्यो लिखी गई है, इनके सम्बन्ध मे कवि की सफाई है — 'गाँधी गया, किन्तु उसकी आवश्यकता नही गई, इसलिए कवि के उच्छ्वासो के बादलो ने उसकी तसवीरे खीची है।' प्रेमीजी गाधी-दर्शन के प्रति आरम्भ से ही आस्थावान् रहे है, अत गाधीजी के सम्बन्ध मे कवि की बाँसुरी वन्दना के बोल गाती है तो क्या आश्चर्य ?

कवि ने यमुना को यह पुस्तक समर्पित की है और लिखा है —'जिसकी गोद मे विश्व हृदय का राजा सो रहा है, जिसके वचन वायु मे उड रहे है, और जिसका जीवन जग-जीवन मे बह रहा है।' स्पष्ट है कि इस सग्रह की कविताओ मे गाँधीजी का मानवतावाद और सर्वात्मवाद पृष्ठ-भूमि का काम देता है।

गाधीजी के आविर्भाव के सम्बन्ध मे कवि ने भिन्न भिन्न कविताओ मे इस प्रकार विचार व्यक्त किये है —

'व्याप्त अग जग की रगों मे,
विष हुआ भीषण घृणा का,
कौन मधुमय आ गया तब
प्रीत का प्याला पिलाने ?

× ×

नाश की लपटे लपक ससार को खाने लगीं, तब
ताप हरने आ गया कल्याण पृथ्वी पर उतरकर।'

इस सग्रह मे कही गाधीजी को पारस, कही नवयुग की मुसकान, कही युग-चेतना, कही जग-जीवन, कही मधुर मधुमास और कही जगद्गुरु कहकर पुकारा गया है। 'वन्दना के बोल' मे गाँधीजी का समस्त कृतित्व बोला है। गाधीजी के विभिन्न रूपो की चर्चा कविताओ मे की गई है। सर्वोदय, चर्खा-चक्र, खादी की शक्ति, हरिजन-बन्धु, किसान-बन्धु, मजदूर-मित्र, नारी-उद्धारक आदि कविताएँ गाधीजी के जन-आन्दोलनो को प्रतिध्वनित करती है। जितने नाम-रूपो मे कवि गाधीजी की वन्दना कर सकता था, की है। आप चाहे तो इसे गाधी-सहस्रनाम या गाधी-गीता कह सकते है। दीप-निर्वाण, अमर-जीवन, अन्तिम दृश्य आदि कविताओ मे बापू के महाप्रयाण की चर्चा कर उनकी अमरता का यशोगान किया गया है।

प्रेमीजी ने 'वन्दना के बोल' मे जिस छन्द को अपनाया है वह गीत और गज़ल के सुन्दर सामजस्य को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार की रचनाएँ प्रवाह, प्रभाव, सरलता और लोक-प्रियता की दृष्टि से निश्चय ही उत्तम हुआ करती है।

'वन्दना के बोल' से ही सभवत. प्रेमीजी का झुकाव गज़ल लिखने की ओर गया। 'रूपदर्शन' की गजलो की चर्चा हम पीछे कर आये है। बाद मे जो गज़ले आपने लिखी उनका सग्रह 'रूपरेखा' नाम से है। 'रूपदर्शन' की अपेक्षा 'रूपरेखा'

की गज़लें श्रेष्ठतर है। 'रूप-दर्शन' मे प्रेम की जमुना बहती थी तो 'रूपरेखा' मे परिस्थितियो की विषमताओ से चोट खाये हृदय का आकुल क्रन्दन है। उसमे हृदय का आह्लाद था तो इसमे विषाद और अवसाद है। एक प्रेम का पहला छोर है तो दूसरा उसका अन्तिम छोर। 'रूपरेखा' की गज़लो मे अनुभूति की गहराई है, एक तडप, एक कसक और एक व्यथा है, जैसी 'आँखो मे' के कवि मे थी।

'किसी को प्यार करता हूँ', शीर्षक गजल मे कवि ने प्रेमी-हृदय की स्वाभाविक वृत्तियो और ससार की आलोचक निगाहो का बडा सजीव एव सटीक चित्र उतारा है —

'जवानी फूल-सी खिलती, हृदय अलि-सा मचलता है,
अगर गुजार करता हूँ, बडा अपराध करता हूँ।
छुपकर तुम पियो जीभर नहीं आपत्ति दुनिया को,
मगर स्वीकार करता हूँ बडा अपराध करता हूँ।
किनारो पर जमा आसन तरगें लोग गिनते हैं,
मगर मै पार करता हूँ, बडा अपराध करता हूँ॥'

प्रेमीजी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व इन गज़लो मे उभर गया है। आप चाहे तो इन्हे उनका दर्पण कहले, चाहे तो जीवन अथवा आत्मचरित का काव्य कह ले। बडे-से-बडे तूफानो मे भी वे हँसते-मुसकराते आगे बढते गये है। हर परिस्थिति का उन्होने धैर्य, साहस और सन्तोष के साथ मुकाबला किया है। सकटो को तो वे स्वाभाविक आवरण की भाँति धारण कर लेते है। उनके सकट मे लोग घबरा जाते हैं, प्रश्न करते है, अब क्या होगा ? किन्तु प्रेमीजी है कि चिन्ता नही करते। उनके इसी व्यक्तित्व की झलक इन गजलो मे है। देखिए —

'हाय काले बादलों मे छुप गए नक्षत्र सारे ही,
किन्तु प्राणों ने लगन की ज्योति का वरदान पाया है।
वायु है विपरीत मेरे नाव छोटी डगमगाती है।
पर प्रलय से भी लडे ऐसा हृदय बलवान पाया है।
आज पहली बार ही मैने नहीं देखा अँधेरे को,
यह अँधेरा तो सदा नवप्रात की मुसकान लाया है।
बिजलियो ने गिर गगन से जब महल मेरे गिराये हैं,
घोसले मे बैठ आशा ने खुशी का गान गाया है।'

'रूपरेखा' की रचनाएँ सन् १९५८ के अन्त मे लिखी गई हैं। यह वह समय था जब प्रेमीजी के आस-पास के लोग जालन्धर मे अपने मकान बना रहे थे, स्थायी निवास की योजना बना रहे थे और प्रेमीजी अपनी बडी गृहस्थी का भारी बोझ

अनजाने पथ की ओर भविष्य की अन्धी नौका पर लाद रहे थे। रेडियो की नौकरी छोड दी थी और कोई भी काम हाथ मे लिए बिना।

जगत् की लाछना, अपमान, तिरस्कृति, धिक्कार की कभी उन्होने परवाह नही की। 'चल रहा हूँ' की कुछ पक्तियाँ देखिए —

'कौन जाने भूमि ऊँची या कि है आकाश ऊँचा,
मैं सरो पर चढ रहा हूँ दृष्टियो से गिर रहा हूँ।
प्रीत की ऊँची नजर है, रूप की नीची नजर हे,
मै नजर ऊँची नजर नीची नजर को कर रहा हूँ।'

प्रेमीजी की ये रचनाएँ प्रेम-वेदना और अनुभूति की रचनाओ मे निश्चय ही अपना ऊँचा स्थान बनायेगी।

प्रेमीजी की काव्य सरिता विविध धाराओ और दिशाओ मे होकर बही है। आपने मुक्तछन्द मे भी अनेक रचनाएँ की है, जिन्हे आप फुटकर रूप मे प्रकाशित पा सकते है। ये रचनाएँ लम्बी हे, किन्तु अपने भीतर एक पूरा इतिहास छिपाये हुए है। आपकी मुक्तछन्द मे लिखी रचनाओ मे 'करना है सग्राम', 'बेटी की विदा', 'बहन का विवाह' आदि विशेष उल्लेखनीय है। इन कविताओ मे क्रातिकारी विचार प्रकट किये गए है। ये कविताएँ ऐसे क्षणो मे लिखी गई है, जब भावनाओ का उद्रेक अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया है और छन्दो की नपी-तुली सीमा को सहना कवि के लिए असभव हो गया है। 'बहन का विवाह' से एक उदाहरण लीजिए —

'मै छट-पटा रहा,
जिस भाँति छटपटाता शर खाकर पछी,
जैसे मीन तडपती है पानी के बाहर,
जैसे पतिव्रता नारी,
व्याकुल होती है पति के स्वर्गवास से,
जैसे एक स्वतत्र देश के
सैनिक के प्राणो मे जलती है ज्वाला
जब उसका देश पराधीन होता है,
अपने किसी देशवासी के ही विश्वासघात से,
जैसे राणा सागा व्यथित हुए थे
जीती बाजी हार गये थे
जबकि युद्ध के बीच
ग्वालियर का तोमर राजा
था मिल गया अचानक बाबर से जा।

यह देश हाय रे
धोखेबाजों का है ।'

इसमे काव्य भी हे और इतिहास भी, कवि की आत्मा का विद्रोह भी है और व्यथा भी । 'बहन का विवाह' कविता वास्तव मे हमारे सम्पूर्ण समाज की व्याख्या-पूर्ण गाथा है । कवि के जीवन का विद्रोह, पूरी झुँझलाहट इसमे साकार हुई है । एक ओज, एक आक्रोश, एक ललकार, एक इरादा, एक नेतृत्त्व, एक क्रान्ति, एक ज्वालामुखी, एक आँसुओ का समुद्र आपको इस कविता मे मिलेगा ।

अपने क्रातिकारी विचारो को बडे उद्दाम वेग और प्रवाह तथा प्रभाव के साथ 'बेटी की विदा' मे व्यक्त किया है ।

'नही पुरातन परिपाटी का
पोषक मै, तुम इसे जानतीं
भारत का अभिशाप बना है रूढ़िवाद
हम उसको नष्ट करेंगे
तभी देश आगे जावेगा ।'

तथा

'और चाहता हूँ मैं अब भी
लडना विश्व विषमताओ से ।
इस युग का युग-पुरुष हृदय मै ।
जाने कहा भर गया, कि मुझको
चैन नहीं मिलता है क्षणभर ।
खडी हुई ऊँची दीवारे
मानव से मानव को
करती है जो दूर निरन्तर ।
धर्म, जाति, विश्वास सडे-से,
परम्पराएँ,
मर्यादाएँ,
गर्व रक्त का,
और न जाने क्या-क्या
बाँट रहे मानवता को जो
करना है निर्मूल उन्हे अब,
मानवमात्र एक हों जिससे ।'

'बेटी की विदा' कविता मे 'आँखो मे' की वेदना, 'जादूरनी' और 'अन्नत के पथ पर' का आध्यात्मिक दर्शन, 'अग्नि-गान' की क्रान्ति, 'प्रतिमा' का प्रेम और.

'वन्दना के बोल' का गाँधी-दर्शन, राष्ट्र-प्रेम और सर्वात्मवाद एक साथ साकार हो उठा है। एक उदाहरण देकर इस प्रकरण को समाप्त करता हूँ —

'नश्वर तन का मोह न करना,
इसके सुख के लिए न विचलित
होना अपने कर्त्तव्यो से।
तुम पुत्री हो भारत माँ की
तुम प्रतिनिधि हो मानव की,
भारत का अधिकार तुम्हारे जीवन पर है,
मानवता का कर्ज तुम्हारे जीवन पर है,
तुम्हें नहीं अधिकार कि इससे बचना चाहो।
तन मिट्टी है,
जीव ब्रह्म है,
है मिट्टी का मूल्य तभीतक
जबतक उसमे बसा ब्रह्म है,
जिसका परिचय जग-हित करना।
जग-हित मे ही अपना हित है,
मानवता का यही भेद है।
अपने लिए न करना सग्रह
धन-वैभव का,
करना तो, न्योछावर करना
उनके लिए, अभावों से जो
पीडित हैं, जो तरस रहे है।'

तेरह

प्रेमीजी : विचारक के रूप में

प्रेमीजी केवल नाटककार, कवि और सस्मरण लेखक और हास्य-वार्ता के स्रष्टा ही नही है , वे स्वतत्र विचारक भी है। उन्होने केवल लिखने के लिए नही लिखा है, व्यवसाय या प्रसिद्धि की भावना से भी नही लिखा है, उनका एक निश्चित उद्देश्य है, उस तक पहुँचने के लिए उन्होने शुद्ध बुद्धि से विचार किया है। अपने विचारो को व्यक्त करने के लिए उन्होने पृथक् रूप से कोई निबन्ध नही लिखे है। विचारो की अभिव्यक्ति का माध्यम रहे हैं उनके नाटको के पात्र। स्वतत्र रूप मे उन्होने अपने विचार प्रकट किये हैं अपनी पुस्तको की भूमिकाओ मे। ये विचार कला और साहित्य के सम्बन्ध मे है। इनकी जानकारी भी अपेक्षित है। इनसे एक तो प्रेमीजी के साहित्य को समझने मे सुविधा रहेगी, दूसरे साहित्य-मच पर पग रखनेवाले नवीन साहित्यकारो को दिशा-ज्ञान भी होगा।

यह प्रचार का युग है। कला हो चाहे धर्म, सभी का प्रचार होता है। सभी प्रचार की तुला पर तुलता है। किन्तु प्रेमीजी इस तुला की ओर अधिक ध्यान नही देते। कहते है —

'प्रचार और कला की सीमा को मैं पहचानता हूँ। यदि साहित्यिक श्रेष्ठ विचार नही देता—केवल मनोरजन की भूख मिटाता है तो उसकी सेवाओ का अधिक मूल्य नही है। साहित्यिक की लेखनी की रेखाओ से युग का निर्माण होता है। साहित्य द्वारा समाज के सस्कार बनते है। ललित-साहित्य का सस्कृति के निर्माण मे बडा हाथ है। समाज की विषमताएँ ही तो उनके लिए साहित्य का मसाला देती हैं। ललित साहित्य के द्वारा समाज की जटिल समस्याओ पर प्रकाश पडना चाहिए।'

वर्तमान युग मे यथार्थवाद और प्रगतिवाद की भी बडी धूम रही है। प्रेमीजी ने भी यथार्थवाद को अपनाया है किन्तु इस सम्बन्ध मे उनका कथन है कि यथार्थवाद के नाम पर समाज के गदे अगो का चित्र खीच देना साहित्य का उद्देश्य नही है।

प्रगतिवादियो ने रूढिवाद का अधाधुध विरोध किया और पाश्चात्य साहित्य-परम्परा का अनुगमन किया है। प्रेमीजी ने इस क्षेत्र मे भी स्वतन्त्र विचार से काम लिया। उन्होने कहा —

'प्रगतिवाद के नाम पर प्रत्येक प्राचीन सस्कार के विरुद्ध युद्ध का डका आज के अनेक साहित्य-सेवियो ने बजाया है। मैं प्राचीन कूडे-कर्कट का पोषक नही हूँ।

फिर भी प्राचीन होने के कारण ही कोई चीज बुरी नही है, यह मै मानने को प्रस्तुत नही हूँ। हमे अपने समाज के सब नियम और सस्कार आज की आवश्यकता की कसौटी पर कसने है। जो हमारे राष्ट्र-निर्माण मे सहायक हो, उन्हे स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। प्रत्येक देश की अपनी आवश्यकताएँ होती है। जो वस्तु या विचार यूरोपवासियो के लिए उपयोगी और लाभप्रद है, वह भारत के लिए भी वैसे ही होगे, यह विचार भ्रम से खाली नही है। असगत और उच्छृखल 'भौतिकवाद' यूरोप को भीषण स्वार्थपरता और भयकर हिसावृत्ति की ओर ले गया है। सपूर्ण सासारिक वैभव की प्राप्ति के बाद भी वहाँ सुख-शान्ति नही है। फिर क्यो हम उनका अनुकरण करके अपनी मानसिक कगाली का परिचय दे।

साहित्य को प्रेमीजी एकागी बना देना नही चाहते। वे उसकी व्यापक भूमि के प्रति आग्रहशील है। वे कहते है —'साहित्यकार एकागी हो जाय ऐसा तो मैं नही मानता। उसे प्रत्येक दिशा मे अपनी प्रतिभा का प्रयोग करना चाहिए। बहुत-सा साहित्य कवि अपने ही लिए लिखता है—या कह लो 'स्वान्त सुखाय' लिखता है, किन्तु वह 'स्वान्त सुखाय' कब 'ससार के सुख के लिए' बन जाता है, इसे साहित्य-स्रष्टा स्वय नही जान पाता। केवल कारीगरी प्रदर्शित करके प्रशसको से प्रशसा पाकर निहाल होने के लिए साहित्य-सृजन का युग आज नही है। साहित्य को इतना सकुचित और सीमित बनाना उसके पखो को काट डालना है। कोई एक दिशा मे बहुत ऊँचा उडकर गया है, हमे उसकी भी प्रशसा करनी चाहिए किन्तु जो उस दिशा मे जाते है, जिस दिशा मे जाने को युग की माँग है वे भी प्रशसनीय हैं। हमे उनका भी अभिनदन करना चाहिए।'

साहित्य की रचना के लिए प्रेमीजी दृढ आधार की आवश्यकता पर बल देते हैं —'छज्जो के कगूरे सजानेवाला कलाकार नीव के रोडो को व्यर्थ नहीं कह सकता। बिना दृढ आधार के हमारा समाज, हमारी सस्कृति, हमारी राष्ट्रीयता और हमारी मानवता खडी कैसे रह सकती है।'

साहित्य मे किसी प्रकार की गुटबन्दी या वर्गवाद के आप समथक नही है। लिखते हैं —'साहित्य के क्षेत्र मे भी लघुता और महानता की सीमाएँ आज दिखाई देती हैं। हम अपने समाज की भाँति साहित्य के क्षेत्र मे भी जातियाँ बनाकर उसकी एकरूपता को नष्ट कर देना चाहते है।'

विस्तृत दृष्टिकोण से ही प्रेमीजी ने सोचा है। साहित्य और कला को वे किसी भी दशा मे सकुचित सीमाओ मे रखना नही चाहते। एक बार नही, अनेक बार उन्होंने दुहराया है —

'साहित्य और कला का ध्येय जीवन को प्रकाश देना, बल देना और प्रगति-पथ पर अग्रसर करना है—इस सिद्धान्त को मैं मानता हूँ। किन्तु इतने सीमित क्षेत्र

मे भारती को बन्दी नही रखा जा सकता। स्वजीवन के अतिरिक्त विश्वजीवन भी अन्तर्जगत् के साथ ही बाह्य जगत् भी काव्य और कला के विषय है।'

'कला मे महानाश की ज्वाला प्रज्वलित करने की क्षमता है और अमृत की वर्षा करने की भी। कला आवश्यकता की प्रेरणा से कराला काली बनकर महानाश का ताडव नृत्य भी कर सकती है तो प्रीति की तरगे उठानेवाला लास्य भी।'

'कला मानव-जीवन को समय और परिस्थिति से सघर्ष करने का उत्साह प्रदान करने के लिए अपनी मादक मधुर मुस्कान से आनन्द-विभोर करती है तो वह कल्याणकर ही है।'

'यदि कला नीरस और तप्त मरुस्थल मे अपनी हरीतिमा से कुछ क्षणो के लिए पुलकित और हर्षित कर दे तो क्या यह पाप है ?'

कला और साहित्य मे जिस जीवन की अभिव्यक्ति होती है, इसके सम्बन्ध मे प्रेमीजी के विचार इस प्रकार है —

'जीवन अपने अधिकारो के लिए सघर्ष करने का उत्साह तभी पायेगा जब उसकी साँस के धागो को, जो बराबर बनते ही जा रहे है, कोई रस-सिक्त करता रहे ताकि वे टूट न जाये। ससार मे सरिता के तीर की भी उपयोगिता है तो उसके कल-कल नाद की भी। उपयोगिता के नाम पर विचार और तर्क की भट्टियो पर भावना और कल्पना के नदी-निर्झरो को चढाकर वाष्प बनाकर उडा देना क्या नितान्त आवश्यक है ?'

साहित्य-जगत् और साहित्यिक के जीवन मे उठनेवाली समस्याओ पर भी प्रेमीजी ने ईमानदारी से विचार किया है —

'साहित्यिक का जीवन कितनी बडी कष्ट-साध्य साधना है - यह वही जानता है, जिसने यह जीवन बिताया है। देश को सद्विचार चाहिए—मानसिक स्वास्थ्य चाहिए—आत्मिक भोजन चाहिए—किन्तु जिस व्यक्ति से यह सेवा लेनी है, उसकी कुछ आवश्यकता भी है, इस ओर कौन सोचता है ? यदि कोई वास्तविक साहित्य देना चाहता है तो उसे आठो पहर अध्ययन, निरीक्षण और लेखन मे डूबा रहना आवश्यक है। जीविका के लिए कुछ और धधा करे और थके हुए शरीर और मस्तिष्क से अधूरे अध्ययन-निरीक्षण के आधार पर साहित्य दे, तो उसमे पाठकों को क्या मिलेगा ? जो अपना खून पीकर साहित्य की सेवा कर रहे है —उनमे से कुछ को यश भी मिल जाता है—किन्तु यश से भौतिक शरीर अपनी शक्ति स्थिर नही रख सकता, जिस कार्य के लिए वह ससार मे आया है, उसे पूरे मन से वह नही कर पाता।

आज हम देखते है कि हर कोई व्यक्ति कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, समालोचक सभी कुछ बन जाना चाहता है। इस पर अपने विचार प्रगट करते हुए प्रेमीजी ने लिखा है —

'हमारा हिन्दी-साहित्य उन्नति कर रहा है, इसमे शक ही नही, लेकिन अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। एक एक विषय के अध्ययन और लेखन मे सपूर्ण जीवन लगा देने की आवश्यकता है। लेखक सभी ओर हाथ-पैर दौडाये इसकी अपेक्षा यह अच्छा है कि एक विषय के विशेषज्ञ बने।'

इस प्रकार हम देखते है कि प्रेमीजी केवल सजग साहित्य सृष्टा ही नही, बल्कि वे एक जागरूक, सचेष्ट, स्पष्टवादी और स्वतन्त्रचेता विचारक भी है।

चौदह

प्रेमीजी की हिन्दी-साहित्य को देन

किसी भी साहित्यिक की देन का पता हमे उसकी रचनाओ के परिमाण और उन रचनाओ के स्तर तथा दृष्टिकोणो से चलता है। यह देन वह तभी दे पाता है जब इसके लिए उसमे लगन हो। प्रेमीजी मे यह लगन रही है। अपनी विषम-से-विषम परिस्थिति मे भी वे लिखते ही रहे है। नरक-तुल्य जीवन बिताते हुए भी उन्होने लिखना बन्द नही किया है। 'शिवा-साधना' की भूमिका मे वे लिखते है —

'लोग कहते है स्वर्ग और नरक दोनो इस जगत् मे है—जो आज सुख-शान्ति और वैभव का उपभोग कर रहे है वे स्वर्ग मे रहते है और जो दुख, दारिद्रय और चिन्ता-ज्वाला मे जल रहे है, नरक मे निवास कर रहे है। स्वर्ग की बात मै नही कह सकता, किन्तु जब अपनी वर्तमान परिस्थितियो को देखता हूँ तो ज्ञात होता है कि नरक यही है। वर्तमान परिस्थितियो मे भी मा-हिन्दी के मन्दिर मे यह नवीन नाटक लेकर उपस्थित हो रहा हूँ—यह आश्चर्य की बात है। जिस स्थिति मे दिमाग के पुर्जों को ठीक रखना भी असभव है—मैं कैसे यह पुस्तक लिख सका, यह मेरे लिए भी आश्चर्य की बात है।'

यदि प्रेमीजी लिखते नही है तो उनके दिल पर एक भार बना रहता है। समय और सुविधा के अभाव मे भी वे मा-भारती के चरणो पर अपनी रचनाओ के पुष्प चढ़ाते रहते है। 'बन्धन' की भूमिका मे उन्होने लिखा है —

'नाटक के क्षेत्र मे यह मेरी आठवी भेट है और मैं समझता हूँ कि अभी तो मेरे हृदय का भार लेशमात्र भी हलका नही हो पाया है। जो मैं अनुभव करता हूँ, देखता हूँ, सुनता और सहता हूँ उसे पाठको के सामने रखने को मेरे पास समय और सुविधा का नितान्त अभाव है। मैं तो अपने ही प्राणो मे से साहित्य की किरणे निकालता हूँ।'

अपनी एक कृति को वे अपने प्राणो का एक टुकडा मानते है और अपने आपको पूर्णरूप से साहित्य-जगत् को देने को आकुल रहते हैं —

'यह नाटक आपके सामने है। यह मेरे प्राणो का एक टुकडा है। सम्पूर्ण प्राण नही। इतना समय न जाने कब मुझे मिलेगा, जब मै अपने-आपको पूर्ण रूप से आपके सामने रख सकूँगा।'

'उद्धार' की भूमिका मे भी अपने हृदय की वेदना प्रकट करते हुए अधिकाधिक साहित्य-सेवा करते रहने की उन्होने इच्छा प्रकट की थी —

'एक सुदीर्घ विछोह के पश्चात् फिर 'प्रेमी' एक पुष्प लेकर सरस्वती के मन्दिर मे आया है । 'प्रेमी' की हृदय-वाटिका मे जब वसन्त का आशीर्वाद था, अनेक कलियाँ सुमन बनी थी और चयन करके थाल सजाकर देवी के चरणो मे चढाने वह आ ही रहा था कि भयानक आँधी आई और उस आँधी मे वे पुष्प उड गये ।

पजाब की खूनी-तूफानी घडियो मे मुझे भी अपने कार्य-क्षेत्र पजाब को छोड़ना पडा और मेरी सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति अप्रकाशित पुस्तको की पाडुलिपियाँ भी वही रह गई । मेरा कवि और लेखक तन-से मूर्च्छित-सा पडा हुआ था । सूखी हुई हृदय-वाटिका को फिर से नयन-नीर से सीचकर हरा किया। इसका पहला पुष्प यह 'उद्धार' है । यह पुष्प सरस्वती के मन्दिर मे चढाते समय निरन्तर नवीन पुष्पो-सहित आते रहने की अभिलाषा रखता हूँ ।'

साहित्य को निरन्तर देते रहने की उनकी इस अभिलाषा का ही सत्परिणाम है कि उन्होने आज तक लगभग दो दर्जन नाटक, एक दर्जन कविता-पुस्तकें, आधी दर्जन सगीतिकाएँ अथवा आपेरा भेट किये है । इन ग्रन्थो के अलावा बाल-साहित्य, रेडियो-रूपक, सस्मरण, हास्य व्यग्यपूर्ण वार्ताएँ तथा झलकियाँ भी आपने हिन्दी-ससार को भेट की है। अभी उनकी साहित्य-साधना जारी है । कोई आश्चर्य नही शतायु प्राप्त करने तक वे शताधिक ग्रन्थ हिन्दी-जगत् को दे जाये ।

जो कुछ उन्होने दिया है, उसका अपना एक स्तर है, अपना एक औचित्य है और अपना एक स्थान है । प्रेमीजी के साहित्य ने सम्मान पाया है, छोटे-बडे सभी से । उनकी पुस्तके भारत-भर की भिन्न-भिन्न हिन्दी परीक्षाओ मे पाठ्य-क्रम के रूप मे नियत रही है। भारत सरकार, उत्तर प्रदेश की सरकार, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, बगाल हिन्दी मडल तथा अन्य साहित्य-सस्थाओ द्वारा उन्हे अपनी रचनाओ पर अनेक बार पुरस्कार मिल चुके है ।

उर्दू, गुजराती, तामिल, पजाबी, कन्नड आदि भाषाओ मे उनके नाटको के अनुवाद प्रकाशित हो चुके है । अकेले 'रक्षाबन्धन' नाटक के लगभग ३६ सस्करण निकल चुके है और इस अकेली पुस्तक से प्रेमीजी एक लाख रुपये से ऊपर रायल्टी प्राप्त कर चुके है ।

देश के गण्यमान् विद्वान्, नेता और समालोचको ने प्रेमीजी के साहित्य का मोल बहुत ऊँचा आँका है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, मुशी प्रेमचद, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टडन, प० माखनलाल चतुर्वेदी, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', श्री काका कालेलकर, श्री महादेवभाई देसाई, श्री सीमाब आदि आपकी कृतियो की भूरि-भूरि प्रशसा कर चुके है ।

हिन्दी नाट्य-साहित्य मे तो वे सर्वोच्च स्थान के अधिकारी है । आचार्य शुक्ल ने प्रेमीजी को प्रसादजी से भी ऊँचा दर्जा दिया था । हिन्दी नाट्य-साहित्य को

पल्लवित और पुष्पित बनाने मे आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी की ऐतिहासिक नाट्य-साहित्य की परम्परा को प्रेमीजी से बडा बल मिला है।

प्रेमीजी के नाटक जनसाधारण के लिए भी है, उनमे रगमचीयता भी है और साहित्यिक तत्त्वो का सरक्षण भी। चूकि नाटक साधारण समाज की वस्तु होती है, इस दृष्टि से जन-नाटक लिखनेवाले प्रेमीजी एकमात्र लेखक है। प्रेमीजी अपनी नाट्य-साधना मे सर्वथा मौलिक है। आप नाटको की विषम वस्तु और उसकी टेकनीक दोनो मे ही अपना निश्चित आदर्श, अपनी निश्चित मान्यताएँ लेकर चलते है।

लोकप्रियता की दृष्टि से भी प्रेमीजी का स्थान सर्वोच्च है। जन-सस्थाओ, स्कूल-कालेजो आदि द्वारा जितने प्रेमीजी के नाटक रगमच पर लाये गये है, उतने कदाचित्, किसीके नही। हिन्दी के ऐतिहासिक नाटको की परम्परा भारतेन्दुजी से आरम्भ होती है। वर्तमान की समस्याओ के समाधान के लिए, भविष्य के उज्ज्वल निर्माणों के लिए, भारतीय सस्कृति के पुनरुद्धार के लिए, देश के गौरवमय अतीत का चित्रण हमारे ऐतिहासिक नाटको के माध्यम से हुआ। किन्तु भारतेन्दुकालीन नाटको मे कलात्मकता का अभाव था। न तो उनमे पर्याप्त नाटकीय तथ्य ही थे, न रगमचीयता ही। प्रसादजी ने कलात्मकता लाने का सफल प्रयास किया किन्तु वे रगमच की वस्तु उन्हे न बना सके। साहित्यिकता के भार से लदे उनके नाटक वर्ग-विशेष के लिए ही रह गये। वर्तमान नाटककारो मे श्री उदयशकर भट्ट भारतेन्दुकालीन शैली के अनुगामी बने रहे। सेठ गोविन्ददास, प० गोविन्दवल्लभ पन्त, वृन्दावनलाल वर्मा नाटकीय तत्त्वो का भी पूरा ध्यान नही रख पाये और रगमचीयता की ओर भी दृष्टि नही दौडा सके। प० लक्ष्मीनारायण मिश्र भारतीयता के इतने समर्थक हो गये कि उनकी रचनाओ मे पक्षपात की गन्ध आने लगी। इतिहास का वह अनुसन्धान भी उनमे नही है जो प्रेमीजी के नाटको मे। मिश्रजी बुद्धिवादी अधिक हैं।

वस्तुत प्रेमीजी का नाट्यसाहित्य भावगत और शैलीगत दोनो ही दृष्टियो से सफल हैं। कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण, शैली और उद्देश्य सभी दृष्टियो से उनके नाटक उत्कृष्ट है। यदि नाटक के क्षेत्र मे युग का प्रतिनिधि नाटककार किसी को कह सकते है तो प्रेमीजी को ही। राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए जितना दिशा-निर्देश प्रेमीजी ने किया है, उतना शायद ही किसी हिन्दी-सेवी ने किया हो। भूत के भव्य आदर्शों से वर्तमान का सस्कार कर भविष्य को सुखद बनाने का उनका आयोजन निस्सन्देह अभिनन्दन की वस्तु है।

प्रेमीजी की सबसे बडी विशेषता है उनकी मौलिकता। प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा की भाँति उन्होने भी बगला के प्रसिद्ध नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय से ऐतिहासक नाटक लिखने की प्रेरणा ग्रहण की, किन्तु इतिहास को कोरा इतिहास न मान कर अपने प्रभाव और उद्देश्य की दृष्टि से इतिहास को उपयोगी बना दिया। इतिहास की आत्मा की तो उन्होने रक्षा की, किन्तु शरीर और व्यक्तित्त्व अपने उद्देश्य

पन्द्रह

जीवन और व्यक्तित्व

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' का जन्म श्री बालमुकुन्द के घर ग्वालियर के गुना नामक कस्बे मे सवत् १९६५ वि० मे हुआ। पिता आपके परम राष्ट्रभक्त थे, अत बचपन से ही राष्ट्र-प्रेम की भावना प्रेमीजी के सस्कारो मे पलती रही। बड़े भाई श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय ने इस राष्ट्र-भावना को आगे और भी विकसित किया। बडे होकर आपको सम्पर्क मिला श्री क्षेमानन्द राहत, श्री [illegible] 'सुमन', श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा', श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' का। ये सभी स्वतन्त्रता-सग्राम के वीर योद्धा रहे है। प्रेमीजी इनके सम्पर्क मे विकसित हुए देश-प्रेम के भाव से भर उठे फलस्वरूप आपके भीतर बैठे कवि ने राष्ट्र-प्रेम की रचनाओ को ही अपना लक्ष्य बनाया।

राष्ट्र-प्रेम के बाद का दूसरा जीवन है प्रेम-पथ के राही का जीवन। प्रेमी प्रेम-पथ पर क्यो अग्रसर हुए, इसके लिए अपनी 'अनत के पथ पर' पुस्तक की भूमिका मे उन्होने कुछ इस प्रकार प्रकाश डाला है —

'उस समय मैं दो साल का था, जब मेरी जननी मुझे इस पृथ्वी पर पटककर न जाने किस दुनिया मे चली गई। ज्यो-ज्यो मैं बडा होता चला गया, होश सँभालता गया, मेरे हृदय मे इस प्रकार की आकाक्षा तीव्र होती गई कि कोई मुझे खूब प्यार करे। मेरी इस प्यास को कोई शान्त न कर सका।

अनेक निराश क्षणो मे मैने अपने-आपको किसी अदृश्य शक्ति के चरणो मे समर्पित कर दिया है और उससे मुझे बल प्राप्त हुआ है। वह है या नही, यह तो मैं नही जानता। यदि वह नही है तो भी मैं उस 'नही' को आकार देना चाहता हूँ। मेरी माँ मुझे दो वर्ष का छोडकर चली गई थी—तब से आज तक शायद २७ से अधिक वर्ष बीत गये—मैं तो आजतक यही अनुभव करता हूँ कि मै वही दो वर्ष का शिशु हूँ। मुझे इस कल्पना से सुख मिलता है कि कोई 'अदृश्य' मुझे अपनी गोद मे लिये बैठा है। उस समय मुझे माँ का दूध चाहिये था—इस समय भगवान् का प्रेम। वह मुझमे बैठकर, या मेरे चारो ओर व्याप्त होकर माँ के दूध की तरह, अनन्त प्रेम पिला रहा है, मेरी यह धारणा, चाहे सच हो चाहे गलत, मुझे जीवित रहने का बल देती है।'

यो बचपन के प्रेम के अभाव ने उन्हें परमात्म-प्रेम और परमात्म-प्रेम ने व्यापक-प्रेम की ओर अग्रसर किया। आज तो प्रेम ही प्रेमी का जीवन है। प्रेम कभी

उपलब्ध होता है, कभी नही । कभी उसमे सफलता मिलती है, कभी असफलता । कभी उसमे मिलन पलता है तो कभी उसका पालन वियोग करता है । सयोग से प्रेमीजी का जीवन अभाव, असफलता वियोग का ही आँगन रहा है । फलत वेदना को उन्होने अपने प्राणो मे पाला हे । अपने जीवन की दु खद घडियो की चर्चा करते हुए वे लिखते है —

"मेरे इस छोटे-से जीवन-काल मे कई बार ऐसे क्षण आये है, जब मुझे अपना अस्तित्व असह्य ज्ञात हुआ है । जब मै उसे भूल जाता हूँ तो मुझे अपना भार सँभालना असभव हो जाता है और अपने ही हाथ से अपना गला घोट देने की इच्छा होती है ।"

वास्तव मे प्रेमीजी का जीवन बडे सघर्ष का, बडे उतार-चढाव का जीवन है । उनका जीवन सदा ही आँधी तूफानो की छाती पर सवार होकर चला है । कभी वह उडकर हिमालय के ऊपर पहुँचा है तो कभी समुद्र की गहराइयो मे जा डूबा है । कभी थपेडे खाकर मूर्च्छित भी हो गया है । प्रेमीजी ने जीवन की जलती चट्टान पर बैठकर समाज की उपेक्षा की लपटो मे खेलते हुए अभावो का विष भी पिया है—बेकसी की वेदना का गरल भी वह पचा गया है और प्यार की मदिरा भी उसने पी है—ममता के पालने मे भी वह झूलता रहा है ।[1]

'प्रेमी'जी किशोरावस्था तक अजमेर मे रहे, राष्ट्रीय भावनाओ के वातावरण मे वहाँ भी कभी सुख, कभी दु ख, कभी अपनापन, कभी परायापन, कभी मैत्री, कभी शत्रुता— उनका जीवन झुलाती रही । परन्तु चूँकि उनका यह जीवन किशोर जीवन था, वे पत्रकार का जीवन जी रहे थे । 'त्यागभूमि' के सन्यासियो के बीच पल रहे थे, अत सभी झटके झेलते चले गये । जवानी आई तो वे चले आये लाहौर । लाहौर मे कभी वे सम्पादक बने, कभी प्रकाशक और कभी प्रेस के मालिक । किस-किसने उनके साथ क्या-क्या किया, वह सब कहानी बडी विषादमय है, साथ ही लज्जाजनक भी । लज्जाजनक उनके लिए जो अपने बनकर उन्हे ठगते रहे, धोखा देते रहे और शोषण के विरुद्ध इस लडनेवाले वीर का चुपचाप शोषण करते रहे । यदि लाहौर के उनके इस जीवन की चर्चा करूँगा तो कई उन लोगो की कलई खुलेगी जो आज जहाँ-तहाँ उच्च पदो पर आसीन है । अत यही कहना पर्याप्त होगा कि प्रेमीजी ने वहाँ काफी व्यथा भोगी थी ।

राष्ट्र-प्रेम तो था ही, क्रान्तिकारियो के आश्रयदाता भी थे । फलत पुलिस ने भी काफी परेशान किया । कभी नज़रबन्द किया तो कभी आपत्तिजनक साहित्य छापने के अभियोग मे प्रेस मे ताला डाल दिया । रोटियो के लाले पड गये । प्रेमीजी ने अधिकाश जीवन ऐसा ही जिया है, परन्तु हार कभी नही मानी है । कई बार बम्बई जाकर फिल्म कम्पनी चलाने की धुन मे पल्ले की पूँजी गँवाई है । युवावस्था के

१ श्री जयनाथ 'नलिन' हिन्दी के नाटककार (पृष्ठ १२१)

आरभिक चरण मे भी वे बम्बई गये थे, और अन्तिम चरण मे भी। पजाब के विभाजन के बाद लाहौर छोडकर वे बम्बई मे फिल्म-निर्माण मे ही लगे रहे। अनुभव कमाया और रुपया गँवाया। आकाशवाणी जालन्धर मे हिन्दी निर्देशक भी तीन साल रहे। यहाँ दिया ही अधिक, लिया प्राय कुछ नही, वेतन के सिवाय।

माता की मृत्यु बचपन मे, पुत्री प्रेमलता की मृत्यु यौवन के आरम्भ मे और मित्रो-परिचितो की कूटनीति, छलना सम्पूर्ण जीवन मे व्याप्त रही तो प्रेमीजी का जीवन वेदनामय हो गया। मिलिन्दजी तो उन्हें वेदनावतार कहकर ही पुकारते रहे हैं। 'वेदना मे प्राण मेरे, वेदना मेरी न छीनो' गानेवाला कवि स्वय वेदनामय है, किन्तु दूसरो को वेदना देना उसने नही सीखा। जितनी आपत्तियाँ आती गई, उतना ही उसका जीवन-प्रसून मुसकराता गया। दुनिया की क्रूरता ने उसमे सदयता भरी है, कूटनीति ने उसके जीवन की नैतिकता के स्तर को ऊँचा उठाया है।

प्रेमी का साहित्यिक और भौतिक व्यक्तित्त्व अत्यन्त भोला, मधुर, आकर्षक और स्वच्छ है। उसके व्यक्तित्त्व मे मूर्त्तिमान कवि का दर्शन होता है। प्रमी ने व्यक्ति और कलाकार, दोनो के रूप मे विश्व को प्यार किया है—उससे मिलनेवाले कटु-मधु रस के घूँट वह भावुकता-भरी पुतलियो और मुसकाते ओठो से पी गया है। प्रेमी के कवि की नाडियों मे प्रेम की मधुर वेदना की कम्पन बजती है, उसके हृदय मे मानवता की धडकन बोलती है।[1]

किसीसे कडुवा बोलते, किसीको कठोर शब्द कहते, किसीको धोखा देते हमने उन्हे कभी नही देखा। भोले इतने है कि स्वय धोखा खा जाते हैं। आपत्तिकाल मे उन्होने जिनकी हर प्रकार से सहायता की उन्होने भी प्रेमीजी को डक मारा। फिर भी प्रेमीजी मे प्रतिशोध नही जागा। बदला लेना तो वे जानते ही नही। क्षमा की मूर्त्ति उन्हे कहूँ तो अत्युक्ति न होगी।

सरल और सादे इतने कि अधिकार पाकर भी नम्रता। ज़मीन मिली तो ज़मीन पर, स्टूल मिला तो स्टूल पर ही बैठ गये। उच्चासन की कभी कामना नही। कवि की कोमल सुहृदयता, नम्रता, तन्मयता और निश्छलता उनके व्यक्तित्व मे है। 'वे केवल कविता लिखते समय ही नही, आठो पहर कवि रहते हैं और सच्चे कवि रहते हैं। कविता को अपने जीवन का सर्वव्यापक और स्थायी अग बना लेनेवाले कवियो मे प्रेमी का अलग स्थान है। कौन जानता है कि उन्हें कविता से इतने अभिन्न होने के कारण ही क्या-क्या न सहना पडा है।'[2]

१ श्री जयनाथ 'नलिन' हिंदी के नाटककार (पृष्ठ १२१)

२ श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' 'आँखों में' का परिचय।

कवि प्रेमी के व्यक्तित्व का वर्णन श्री मिलिन्दजी ने इस प्रकार किया है —

'वेदनावाद के कँटीले पथ के नवजात पागल पथिक 'प्रेमी' को अपने पागलपन के पीछे घर मे ही निर्वासित होना पडा। कभी-कभी पागलपन को प्यार करनेवाले कुछ लोभी भाग्ये उन्हे अपनी कृतियो का सार्वजनिक रसास्वादन कराने को भी बाध्य करते रहे। 'प्रेमी' ने अनमने हृदय से सब-कुछ स्वीकार किया। हृदयवालो के सच्चे आग्रह को टालना तो जैसे उन्होने सीखा ही नही है।'

एक अलमस्ती, एक फक्कडपन, एक लापरवाही उनके व्यक्तित्व के गुण है। ये गुण ही दूसरो के लिए दोष हो जाते है। प्रेमीजी का जीवन इन्ही गुणो ने क्षुब्ध किया। आर्थिक और शारीरिक क्षय हुआ। परन्तु वे जैसे इस सबकी ओर से भी लापरवाह। 'वे अपनी आर्थिक और शारीरिक उन्नति के विषय मे किसी भी स्वजन या गुरुजन का जरा भी उपदेश सुनना पसन्द नही करते।' इसी कारण उनका सांसारिक जीवन जैसा कुछ चलता रहा है, वह उन्ही के सहने की चीज है। सामान्य व्यक्ति वैसे जीवन से विचलित हो जाता है, परन्तु उनके लिए तो वही स्वाभाविक जीवन है।

स्वाभाविकता, सरलता और सादगी को उन्होने कभी भी अपने व्यक्तित्व से अलग नही किया। वही पिडलियो से कुछ ऊपर तक बल खाती धोती, वही बिना प्रैस किया कुर्ता और उसी डिजाइन के पिशावरी चप्पल आज भी उनकी वेशभूषा है जो किशोरावस्था मे थी। न कभी बदली है, न कभी बदलेगी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश मे अंग्रेजियत फैली। लोगो ने धोती-कुर्ता, पाजामा त्यागकर कोट-पैंट, नकटाई लगाई, पर प्रेमीजी ने कुछ न तो त्यागा, न कुछ अपनाया। सदा-सर्वदा एक-रस। यह एकरसता ही तो उनका व्यक्तित्व है। वे जैसे अकृत्रिम, आडम्बरहीन भीतर से है, वैसे ही बाहर से भी है।

प्रत्येक साहित्यिक के व्यक्तित्व की उसके साहित्य पर अवश्य ही छाप रहती है। साहित्य से ही उसके व्यक्तित्व की खोज की जा सकती है। प्रेमीजी के व्यक्तित्व मे तीन बाते विशेष है, वे अत्यन्त उदार हे, जाति-पाति के बधनो से बहुत ऊपर, मानवतावादी। वे अत्यत स्वतत्र वृत्ति के है, न पाबन्दी लादते है, न ही पाबन्दी मानते है। वे बहुत ईमानदार है। देश-जाति के प्रति ईमानदार, मित्रो के प्रति ईमानदार, साहित्य के प्रति ईमानदार और परिवार के प्रति ईमानदार। उनका यह व्यक्तित्व सर्वत्र प्रतिफलित हुआ है। किन्तु पिछले दिनो जब उनका पारिवारिक जीवन बहुत ही अस्त-व्यस्त और दु खद हो उठा तो उन्होने दो नाटको की सृष्टि की। एक 'ममता', दूसरा 'बेडिया'। दोनो ही नाटको मे नायक के स्थान पर वे स्वय विद्यमान् है।

प्रेमीजी का विवाह उनके बचपन मे हो गया था, उनकी इच्छा, उनकी सम्मति और उनके चुनाव का जिस समय कोई मूल्य नही था। पत्नी मिली रुढ़िवादी

विचारो की। प्रेमीजी स्वच्छन्द और प्रगतिशील विचारो के। फलत पग-पग पर गलतफहमियो का जाल। 'बेडियाँ' नाटक प्रेमीजी के जीवन की सच्ची तस्वीर है।

'बेडियाँ' का नायक कवि चातक प्रेमीजी के जीवन पर इस प्रकार प्रकाश डालता है —

'**चातक** —मैं तुम्हारी सेवा की कद्र करता हूँ कमला। तुम्हारी इस सेवा का बदला चुकाने के लिए मै तुम्हारे सम्बन्ध की बेडियाँ को पहने रहा हूँ। मेरे पिताजी ने धनी घर मे सम्बन्ध जोडने के प्रलोभन मे बचपन मे ही मारपीटकर यह विवाह कर डाला।'

'हाँ, इसमे तुम्हारा कोई अपराध नही है, इसीलिए मैंने तुम्हारे ऊपर कोई अत्याचार नही करना चाहा।'

'तुम्हारे सस्कार दूसरे थे—मेरे दूसरे। जब तुमने मेरे उन स्वर्गीय अध्यापकजी की पत्नी के हाथ का पान खाने से इन्कार कर दिया था, जिन्हें मैं माँ की भाँति मानता था तो मुझे यह मर्मातक वेदना हुई थी। तुमने कहा था—मैं कायस्थ के हाथ का पान नही खा सकती। मै तो सब तरह की छूतछात और ऊँच-नीच को मनुष्यता के लिए कलक समझता रहा हूँ। तुम्हारे इन कुसस्कारो ने मेरे प्राणो को खाक कर डाला था।'

'तुम अपने अध विश्वासो और रूढिवाद के कुसस्कारो से छुटकारा न पा सकी। जितना ही मैने तुम्हे उनसे दूर करने का यत्न किया, उतनी ही तुम उनसे चिपट गई।'

'इसमे तो सदेह नही कि मैं कवि हूँ और सौन्दर्य से मुझे प्यार है, लेकिन फिर भी मैंने तुम्हारे प्रति ईमानदार रहने का प्रयत्न किया है। वे भी दिन थे जब मैंने यौवन की सीढियो पर कदम रखा था, उस समय भी हजारो नर-नारी, युवक-युवतियाँ मेरी रचनाएँ सुन-सुनकर झूम उठते थे, लडकियाँ हस्ताक्षर लेने के लिए झुड-की-झुड आगे आती थी, कितनी ही लडकियो ने कविता लिखना सीखने के बहाने मुझमे सम्पर्क बढाया था। क्या मैं उनमे से एक भी ऐसी साथिन नही पा सकता था जो केवल रोटियाँ पकाने और बच्चे पैदा करने को ही नारी का परम कर्त्तव्य न समझकर मेरे काव्य की प्रेरणा भी बनती ? लेकिन तुम जो मेरे पैरो मे बेडियो की तरह पडी हुई थी। मैं फिर भी तुम्हारे प्रति ईमानदार रहना चाहता था।'

'मै तुम्हारे प्रति कर्त्तव्य का पालन करता रहा हूँ और नीता के प्रति समवेदनाशील रहना चाहता हूँ। उसने मुझ पर विश्वास किया है, वह अपने जीवन का एकान्त दूर करना चाहती है, उसके प्रति मुझे ही नही, तुम्हे भी स्नेहशील होना चाहिए।'

प्रेमीजी के गुण कवि चातक के गुण है। चातक मे प्रमीजी का जीवन और व्यक्तित्व दोनो ही बोलते है। प्रेमीजी आरम्भ से ही कवि चातक की भाँति रूढियों

और अन्ध-विश्वासो के विरोधी रहे हैं। छूतछात के प्रति विद्रोह की भावना उनमे आरम्भ से ही थी। अपने एक सस्मरण 'वह जाग जाएगी' मे प्रेमीजी लिखते है—"मैं और मेरी पत्नी उस समय अपने परिवार एवम् समाज से सर्वथा कट गये थे। मेरे भाई साहब श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय और मैंने जातिवालो को चुनौती देकर भगी के हाथ का भोजन खाया था—कथनी और करनी की एकता प्रदर्शित करने के लिए। इस भयकर अपराध के लिए हम जाति च्युत कर दिये गये थे। न हमारे पिताजी हमे अपने घर पर आने देने का साहस करते थे, न हमारी पत्नियो के माता-पिता। हमे बुलाने पर या आने देने पर उन्हे भी जाति से बहिष्कृत होना पडता तब उनके बाल-बच्चो के विवाह कहाँ होते ?'

प्रेमीजी को रूढियो का विरोध करने के लिए घर भी सघर्ष करना पडा और बाहर भी। पत्नी का पर्दा छुड़ाने के लिए काफी समय तक सघर्ष चलता रहा। प्रेमीजी का सहानुभूतिशील हृदय केवल मानवता को देखता है, जाति-पाँति को नही। इसी-लिए एक बार उन्हें अपने पिता से भी सम्बन्ध-विच्छेद कर अलग हो जाना पडा। १४-१५ वर्षीया एक लडकी को जोकि सास-ससुर द्वारा तिरस्कृत तथा प्रताडित थी, आश्रय देकर माता-पिता का विरोध मोल लिया। 'बहन का विवाह' कविता मे कवि ने इसकी अच्छी अभिव्यक्ति की है। यह कविता उनके जीवन का एक सस्मरण ही है।

मानवता की, नारी जाति की दुर्दशा ने जो विद्रोह की आग प्रेमीजी मे जगाई थी वह देश-प्रेम के रूप मे फूट पडी। जैसाकि मैं पहले लिख चुका हूँ, प्रेमीजी राष्ट्रीय-भावना से ओत-प्रोत जीवन लिये चले है। आपके विचार आरभ मे बडे ही क्रान्तिकारी थे। 'बेटी की विदा' कविता मे आपने क्रान्तिकारी विचारो को प्रगट किया है। लिखते है—

'खडी हुई ऊँची दीवारें
मानव से मानव को
करती हैं जो दूर निरन्तर।
धर्म, जाति, विश्वास सडे-से,
परम्पराएँ,
मर्यादाएँ,
गर्व रक्त का,
और न जाने क्या-क्या
बाँट रहे मानवता को जो,
करना है निर्मूल उन्हें अब
मानव-मात्र एक हों जिससे।'

राजनीतिक कार्यों मे तो प्रेमीजी बचपन से ही जुटे रहते थे। राजनैतिक मचो पर जाकर ज़ोरदार भाषण देना तो उन्हें बहुत ही प्रिय था। दस साल की उम्र मे ही आपके भाषण ओजस्वी होते थे। आपकी भाषण-कला से प्रभावित होकर ही आपके ससुर ने आपसे अपनी कन्या के विवाह का निर्णय किया। बडे भाई से आपको राष्ट्र-प्रेम की प्रेरणा मिली। राजनीति मे आप सदा ही सक्रिय कार्यकर्ता रहे, किन्तु यह एक मानोवाली बात है कि प्रेमीजी की साहित्य-वृत्ति पर राजनीति कभी हावी नही हुई। साहित्य-सेवा ही उनके जीवन का ध्येय बना रहा। आपने एक स्थान पर लिखा है —'मैं भी कभी-कभी बरसाती नाले की तरह उमड-उमड पडता था और राजनीति के रगमच पर दहाडने लगता था, किन्तु मेरे प्राणो मे जो नया-नया तरुण कवि, नया-नया उमग-भरा साहित्यकार बसता था, वह राजनीति के क्षेत्र के लिए समय थोडा ही देता था, इसलिए एक लम्बे अर्से तक मैं जेल जाने से बचा रहा। सभाओ मे भाषण भी कम दे पाता था, फिर भी सभाओ मे जाता था, जीवन की एकरसता और विरसता को दूर करने।'

प्रेमीजी पहले-पहल सन् १९३० मे जेल गये। आपने 'स्वर्ण-विहान' नामक क्रातिकारी गीतिका लिखी, फलस्वरूप सरकार ने उसे ज़ब्त कर लिया। सन् १९४२ मे आप लाहौर मे बन्दी बना लिये गये। कारागर से छूटे तो आपको अनारकली की सीमाओ मे ही रहने की आज्ञा मिली। तभी आपका प्रेस भी ज़ब्त हुआ।

लाहौर मे प्रेमीजी का जीवन राजनीतिक कम, साहित्यिक अधिक था। आपका कृष्णनगरवाला घर साहित्यिक लोगो की धर्मशाला बना हुआ था। देश के भिन्न-भिन्न कोनो के साहित्यिक-बन्धु आकर वहाँ आश्रय पाते थे। प्रेमीजी उनका स्वागत सत्कार करते और उनके लिए आजीविका भी जुटाते। कितने ही साहित्यकारो को आपने प्रेरणा दी, उनके जीवन को भी सजाया-सँवारा। वही आपने कवि समाज, साहित्य-समाज आदि की स्थापना भी की। लाहौर मे इस प्रकार के साहित्य-सगठन ने पजाब मे हिन्दी की चेतना फूँकी। जब आप पहले पहल लाहौर आये तो आपने आने के थोडे समय बाद ही 'भारती' पत्रिका का प्रकाशन किया। यह सन् १९३१-३२ की बात है। इस पत्रिका ने अच्छी ख्याति पाई थी। भारत के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य विधुशेखर भट्टाचार्य और काका कालेलकर प्रभृति विद्वान् इसके स्थायी लेखक थे। सभी प्रान्तीय भाषाओ के लेखको की रचनाएँ इस पत्रिका मे स्थान पाती थी। आज के प्रसिद्ध नेता और उच्च पदस्थ अधिकारी डा० सम्पूर्णानन्द तथा श्री श्रीप्रकाश जैसे व्यक्ति इसके स्थायी लेखक रहे है। पजाब के अनेक लेखक इसी पत्रिका से लिखना आरम्भ करके बाद मे अखिल भारतीय ख्याति के लेखक बने।

प्रेमीजी ने लाहौर मे सामयिक साहित्य-सदन नाम से एक प्रकाशन-सस्था चलाई। चोटी के लेखक श्री जैनेन्द्रकुमार जैन, श्री इलाचन्द्र जोशी आदि की पुस्तकें

यहाँ से ही छपी। बगाल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री ताराशकर वद्योपाध्याय की रचनाओ का पहले-पहल हिन्दी मे आपने ही प्रकाशन किया।

सन् १९३३-३४ मे बम्बई मे जिस फिल्मी लाइन का अनुभव प्रेमीजी ने प्राप्त किया था, सन् १९४६ मे लाहौर मे उसे और भी बढाया। अपना निजी प्रेस, प्रकाशन सस्था के होते हुए, उनका सचालन करते हुए आप पचोली आर्ट पिक्चस के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष रहे। बम्बई मे आपने रूपम आर्ट पिक्चर्स के अन्तर्गत 'बिखरे मोती' नामक एक फिल्म भी बनाई थी, जिसमे कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने अभिनय किया था। उसी समय 'आदर्श चित्र' नाम से गोविन्ददासजी ने भी अपनी फिल्म कम्पनी चलाई। यह सयोग की ही बात थी कि आज के उच्चकोटि के साहित्यकार, उस समय के फिल्म-व्यवसाय के भी साथी थे। सन् १९४६ मे लाहौर की एक फिल्म कम्पनी ने आपकी देख-रेख मे आपकी कहानी लेकर 'रूपरेखा' चित्र का निर्माण किया। विभाजन के कारण उसका वितरण न हो सका। फिर आपने बम्बई आकर मुरारी पिक्चर्स वालो से अपना सम्बन्ध जोडा, जहाँ प्रसिद्ध निर्देशक मोहन सिन्हा ने आपके नाटक 'रक्षाबन्धन' के आधार पर आपकी देख-रेख मे 'चित्तौड-विजय' फिल्म बनाई। उनके लिए आपने तीन-चार और फिल्मी कहानियाँ भी लिखी, जिनकी फिल्मे बनी। मीरा पिक्चर्स के लिए आपने स्वय 'प्रीति का गीत' फिल्म का निर्माण किया। सन् १९५० तक आप बम्बई मे फिल्म-व्यवसाय मे लगे रहे। इस प्रकार प्रेमीजी का जीवन और व्यक्तित्व बहुमुखी रहा है।

प्रेमीजी के व्यक्तित्व की एक बडी खूबी यह है कि वे साहित्य-सेवा से बढकर और किसी भी सम्मान को नही चाहते। उन्हे यदि कभी किसी ने कोई पद या अधिकार देने की बात चलाई तो उन्होने उसे स्वीकार नही किया। डा० कमलेश को उन्होने एक भेट मे एक मजेदार घटना सुनाई थी, जो इस प्रकर है —'उस समय गुना मे आये ग्वालियर राज्य के होम-मिनिस्टर, जो ग्वालियर के स्वर्गीय महाराज के निकट के नातेदार—उस समय के देवास के महाराजा के भाई थे (बाद मे स्वय देवास के महाराजा भी रहे) उन्हे कविताएँ सुनने का शौक था। गुना के सूबा (कलक्टर) ने उनके मनोरजन का प्रबन्ध किया। मुझे भी बुलाया गया। मैने वही एक कविता लिख डाली--साराश था —

'मुझसे गले मिलो तुम आकर
मुझसे ही भिक्षुक बनकर।'

कवि-सम्मेलन समाप्त होने पर मुझे तलब किया गया। मेरी धृष्टता के के बदले उन्होने पूछा—'तुम्हारी क्या सेवा की जाय?' मुझे तुरन्त तहसीलदार बनाने को वह तत्पर हुए, किन्तु मैंने अस्वीकार कर दिया।'

अन्त मे मैं डा० रामचरण महेन्द्र के शब्दो का उल्लेख कर इस अध्याय को समाप्त करता हुआ भगवान् से प्रेमीजी की दीर्घायु की कामना करता हूँ। डा० महेन्द्र ने लिखा है —

'प्रेमीजी के स्वभाव की जो बात मुझे सर्वाधिक रुचिकर प्रतीत हुई, वह है उनकी मिलनसारी, उनकी निरभिमानता और अहङ्शून्यता। वे व्यस्त-से-व्यस्त होते हुए भी साहित्यकारो से मिलने, बातचीत करने, अपना दृष्टिकोण समझाने को सदैव प्रस्तुत रहते है। रुचिकर बातचीत करने मे वे विनम्र हैं। उनके समक्ष कोई एक क्षण को भी विरस अनुभव नही करता।

उनसे बाते कीजिए, जैसे एक विस्तृत ज्ञान-कोष आपके समक्ष खुल गया। और ज्ञान भी कैसा ? शुष्क पुस्तको द्वारा सचित ज्ञान नही, जगत् की कठोर चट्टानो से जूझकर प्राप्त किया हुआ अनुभव ज्ञान।'